ॐ श्री श्री महापुरुष अरक्षित दासाय नमः

संत अरक्षित दास

महीमण्डल गीता

ॐ

अनुवादक - पद्मश्री डा. श्रीनिवास उद्‌गाता, विद्या वाचस्पति

- वर्ण-मार्जन सहयोग -
बिजयलक्ष्मी सामल

- प्रस्तावक -
सेक् मतलुव् अल्ली

- मुख्य सम्पादक -
सुशान्त कुमार दास

- सम्पादक -
शरणारबिन्द

- प्रकाशक -
नवकिशोर सामल

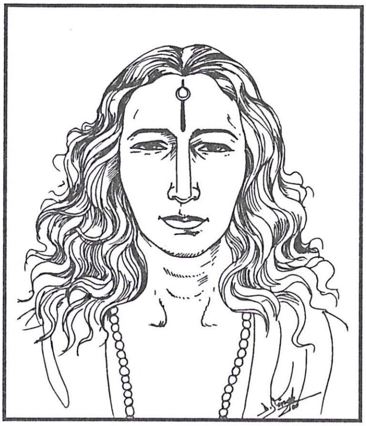

ॐ श्री श्री महापुरुष अरक्षित दासाय नमः

गंजाम जिल्ला बडखेमुण्डि राजवंश के युवराज वीरभद्र देव शक्ति साधना तथा ॐकार क्षेत्र ओलाशुणी गुफा के आराध्य देवता महापुरुष अरक्षित दास के आत्मजिवनी पवित्र महिमंडल गीता के हिन्दी अनुवादक पद्म श्री डॉ. श्रीनिवास उद्‌गाता को सपने में दर्शन दिया था उक्त रुप को उद्‌गाता महाशय खुद् चित्रण कर के ओलाशुणी गुफा प्रचार प्रसार कमिटि के मुख्य उपदेष्ठा मंडली सदस्य श्री शरणारविन्द ओझा एवं साधारण सम्पादक श्री नवकिशोर सामल को ता २२ सेप्टेम्बर २०२२, रिख में प्रदान किया था ।

ॐ

संत अरक्षित दास विरचित

महीमण्डल गीता

- काव्यान्तरण -

पद्म श्री सम्मानालंकृत

डॉ. श्रीनिवास उद्‌गाता, विद्यावाचस्पति

- वर्ण-मार्जन सहयोग -

विजयलक्ष्मी सामल

- प्रकाशक -

ओलाशुणी गुम्फा प्रचार प्रसार कमिटि

संत अरक्षित दास विरचित

महीमण्डल गीता

- काव्यान्तरण -

पद्म श्री सम्भानालंकृत

डॉ. श्रीनिवास उद्‌गाता, विद्यावाचस्पति.

-प्रकाशक -

ओलाशुणी गुम्फा (पीठ) प्रचार प्रसार कमिटि

आद्य प्रकाशन....

Price Rs. 500/-

मुखबन्ध

संत अरक्षित दास की जीवनी और धर्म दर्शन

उत्कलीय धर्माकाश के एक देदीप्यमान नक्षत्र है संत अरक्षित दास। आपकी महा समाधि की तिथि है माघ कृष्णा एकादशी साल १२४५ सन् १७८८ ई, गजपति महाराज रामचन्द्र देव (१) का प्रथम अंक। आज से २१२ वर्ष से महापुरुष की महासमाधि या महाप्रयाण पर्व ओलासुणी पहाड़ पर स्थित समाधिपीठ दर प्रतिवर्ष मनाया जाता रहा है। यह ऐतिहासिक पहाड़ विख्यात ललितगिर बौद्धविहार के समीप पूर्व दिशा पर अवस्थित है। तलहटी में प्रवाहित है गोवरी नदी। गांव पलेई के मालगुजारी इलाके के अन्तर्गत स्थित है पहाड़। पहले यह केन्दापडा के स्वनामधन्य धार्मिक दानशील जमींदार राधेश्याम नरेन्द्रदेव के शासनाधीन था। लोकोक्ति है – स्वर्ग में इन्द्र मर्त्ये नरेन्द। वाणीकण्ठ निमाई हरिचन्दन, गोकुल श्रीचन्दन आप के प्रपौत्र है। नरेन्द्र देव से अनुमति प्राप्त हो महापुरुष अरक्षित इसी पहाड के प्राचीन अनन्त गुफे में अवस्थान करते थे। इस आख्यान की वर्णना महापुरुष ने अपनी रचना महीमण्डल गुप्त टीका में की है। संत संध्या के समय केन्द्रापड़ा राज भवन पहुंचे जिस समय राधेश्याम नरेन्द्र संध्यापूजा कर रहे थे। दरवान ने उन्हें सूचना देकर इन्तजार करने को कहा। महापुरुष ने तब कहा देखो राजा का मन संध्यापूजा में है नहीं, वे तो कटक से काले सफेद घोडों

की जाडी खरीदने की शोच में रमे हुए हैं। दरवान ने चलकर राजा साहब से कहा तो नरेन्द्रदेव ने साधु को भीतर बुलवाया तो महापुरुष ने मना करते हुए उन्हें ही बाहर आ मिलने की खबर भिजवायी। तब नरेन्द्र महात्मा को पहचान कर उन से बाहर आ मिले। संत के ओलाशुणी पहाड़ के पीठास्थान को स्वीकार करते हुए राजा ने इकरारनामा देकर तीन दिन में उपरान्त नरेन्द्र पहाडी पर पहुंच कर महात्मा का दर्शन कर आए।

जिस अनन्त गुफा में महापुरुष निवास करते थे वह अब भी सुरक्षित है। एक लंबा तराशा हुआ पत्थर उनकी शय्या थी। वह अद्यपि विद्यमान है। मंदिर की मुखशाला सम्पूर्ण बन नहीं पायी है। महापुरुष के समय का कटहल का दरखत अब भी है। फलता भी है, पर पहले की भांति विशाल काय नहीं। महापुरुष के केश उनके भक्त ललितगिरि निवासी कम्बु महारणा के प्रपितामह के समय से उनके आवास पर सुरक्षित है। जटा के रूप में कहा, उस केश की वृद्धि हो ती है।

महापुरुष जिस समय ओलाशुणी पहाड़ पर थे तब उसके आस पास के क्षेत्रों में अनेक अलौकिक कार्य करे गये हैं। उनमें से दृष्टान्ततः गारद गांव के हरिचन्दन नाम से उनके एक भक्त की पत्नी कई दिनो से पीड़ित हो शय्याशायिनी थी। पत्नी की मृत्यु की आशंका करके उसने महापुरुष को घर लिये चलते समय पत्नी की मृत्यु हो गयी। महापुरुष ने महाशून्यवासी ब्रह्म की प्रार्थना करके उस महिला का जीवनदान किया

था। यह आख्यान का उल्लेख श्री गोलकचन्द्र प्रधान ने अपनी रचना महापुरुष अरक्षित दास ग्रंथ में किया है। और इसकी सूचना महीमण्डल गीता के नौवें अध्याय में है बता कर दो पदों की उद्धृति दी है, किन्तु यथार्थ में इस प्रकार विवरण और पद नवम अध्याय में नहीं है।

एक और कथा इस अंचल में किंवदंती के रूप में सर्वतो प्रचलित है। वह है कि महापुरुष सब को समभाव से देखा करते थे। उनमें जाति वर्ण धर्म आदि का कोई भेद नहीं था। किसी के घर पर विना कोई परहेज चलकर भोजन करने में उनमें कोई कुण्ठा नहीं थी। उसी से एक दिन ओलाशुणी के समीप अगरपड़ा के विशिष्ट मुसलमान जमींदार ने मिर्जा मुसलमान जनोचित भोजन तैयार करके कपड़े में लपेट कर ला अर्पण किया। महापुरुष ने मीर्जा को एकसाथ भोजन करने को कहकर ओढ़ाए कपडा हटाते ही गोमांस कहीं अन्तर्हित होकर वो सात्विक मिष्टान्नादि में परिवर्तित हो गया था। सेख कर मीर्जा जमींदार ने महापुरुष से क्षमा मांगी। अब भी मुसलमान भक्त गण समाधि पीठ पर नैवेद्य समर्पण किया करते हैं, उपासना करते हैं और जलच्छत्र की व्यवस्था श्रद्धापूर्बक करते हैं।

महापुरुष ने कोई शिष्य परंपरा की संरचना न करने के बावजूद उनके आश्रित भक्तो के द्वार अब तक सात महन्त विविध काल में पीठ की परिचालना करते आ रहे हैं। वे हैं –

१.	महन्त रामचन्द्र दास	साल. १२४५ से १२९७ – ५२ वर्ष। ईसा (ख्री) सन् १८३७ से १८८९
२.	महन्त वैरागी दास	साल. १२१७ से १३२३ – २६ वर्ष। ईसा (ख्री) सन् १८८१ से १९१५
३.	महन्त प्रयाग दास	साल. १३२३ से १३३२ – १० वर्ष। ईसा (ख्री) सन् १९१५ से १९२५
४.	महन्त बांछानिधि दास	साल. १३३२ से १३४५ – १३ वर्ष। ईसा (ख्री) सन् १९२५ से १९३८
५.	महन्त योगेन्द्र दास	साल. १३४५ से १३५९ – १४ वर्ष। ईसा (ख्री) सन् १९३८ से १९५२
६.	महन्त लछ्मन दास	साल. १३५९ से १३९६ – ३७ वर्ष। ईसा (ख्री) सन् १९५३ से १९९०
७.	महन्त पर्शुराम दास	साल. १३९७ से अबतक ई. १९९० से

महापुरुष के महाप्रयाण के समय से अबतक जिन महन्तगण गद्दीनसीन हुए हैं, अनुमान लगाया जा सकता है कि महन्त रामचन्द्र दास के पश्चात उनके चार शिष्य, एक के विभुलीन होने के उपरान्त चार शिष्यों ने क्रमश: पदभार संभालते हुए पीठ की परिचालना की है। तदनन्तर द्वितीय महन्त वैरागी दास के ५ शिष्यों में वे एक के बाद एक चार गद्दीनसीन हुए हैं। अर्थात् एक के बाद शिष्य के मठाधीश न बनकर गुरु भाई या पितामह परमगुरु अपनी दक्षता तथा वरिष्ठता से गद्दीनसीन हुए हैं। यह निम्न सारणी से प्रतिपादित हो जाएगा।

महन्तगण	शिष्यगण
१. महन्त रामचन्द्र दास	१.वैरागी २.प्रयाग ३.नित्यान्त और ४. वीणाकर
२. महन्त वैरागी दास	१. वांछानिधि २.चक्रधर ३.पीतांवर ४. नरसिंह ५.वीरकिशोर
३. महन्त पतरयाग दास	१. लछमन दास
४. महन्त नित्यानन्द दास	१. योगेन्द्र दास
५. महन्त वांछानिधि दास	१. परीक्षित दास
६. महन्त चक्रधर दास	१. भावग्राही २.गणेश्वर
७. महन्त पीतांवर दास	१. वैकुण्ठ
८. महन्त नरसिंह दास	१. सुरेश
९. महन्त योगेन्द्र दास	१. गोविन्द २.एकादशी
१०.महन्त एकादशी दास	१. चैतन्य २.अरक्षित
११.महन्त भावग्राही दास	१. पर्शुराम दास
१२.महन्त लछमन दास	१.रमाकान्त २.गोवर्द्धन ३. शुकदेव ४. भगवान
१३. महन्त पर्शुराम दास	१.नीमानन्द, २. जगन्नाथ

संत अरक्षित दास की वंशलता और जीवनी

बड़खेमण्डी राजवंश चन्दवंश आत्रेय गोत्री के रूप में ख्यात है। ये गंगवंशी अत: अनङ्गभीमदेव उपाधि विभूषित हुए थे। किंवदंती के अनुसार गजपति कपिलेन्द्र देव के अठारह पुत्रों में से उन्होंने अपने कनिष्ठ पुत्र पुरुषोत्तमदेव को श्रीजगन्नाथ के निर्द्देश से युवराज पदाभिषिक्त किया था। उससे अन्य पुत्रोने दैवी निर्द्देश पर अविश्वास करके एक अभिनव

उपाय से परीक्षा लेने की इच्छा कि और उन्होंने पुरुषोत्तम देव पर कुन्त निक्षेप किया परन्तु सभी भाले लक्षभ्रष्ट हुए। तत्पश्चात् वे पलायन करके अपनेलिये एक एक सामन्त राज्य की प्रतिष्ठा की। ज्येष्ठपुत्र ने खेमण्डी वंश की प्रतिष्ठा की। ऐतिहासिक प्रत्नतात्विक सत्यनारायण राजगुरु ने अपने सांस्कृतिक इतिहास चतुर्थ खण्ड के ४६वे पृष्ट पर इस घटना पर अविश्वास व्यक्त करते हुए सन् १९७५ झङ्कार के ११वें संख्या में श्री अनन्तचरण दास के सुलोचना माधव महाकाव्य की आलोचना की है। तथा हरेकृष्ण महताब ने अपने ओडिशा इतिहास में भी इसे स्वीकारा नहीं है और सानखेमण्डी के राजमाता अनङ्गमंजरी देवी के सौजन्य से प्राप्त खेमण्डी राजवंश और संत अरक्षित दास की जीवनी और वंशलता इस प्रकार होगी।

बड़खेमण्डी राज वंश (संत अरक्षित दास)

१. श्री पद्मनाभ अनङ्गभीमदेव ने सन् १६८२ से १७०३ तक राज किया था।

    और उनके पुत्र

२. पीतांवर अनङ्ग भीमदेव ने सन् १७०४ से १७२६ तक राजा थे।

३. पुत्र श्री वासुदेव अनङ्गभीमदेव उर्फ भीमदेव मात्र तीन महीनों के राजा थे (सन् १७.२७)

४. पुत्र पुरुषोत्तम अनङ्गभीमदेव उर्फ भीम देव सन् १७२७ से १७७३

५. पुत्र पद्मनाभ देव, चैतन्य देव नारिकृष्ण देव जगन्नाथ देव (सन १७७४ से १८०५) बलभद्र देव, चैतन्य देव १८०६ से १८२८)

अरक्षित दास - सन्यासी

६. श्री चैतन्य देव १८०६ से १८२७

७. श्री पीतांवर देव १८२९ से १८४०

८. श्री लक्ष्मीनारायण देव १८५१ से १८९२

९. श्री कृपामय देव १८९३ से १९२२

१०. श्री रामचन्द्र देव (१९२३- पत्नी श्रीमती अनङ्गमंजरी)

११. श्री मारिकाश्वरी देव (वकील) और अन्य पांच भाई चार बहनें है

वंशलता के अनुसार इस वंश की पांवीं पीढ़ी के पद्मनाभ देव (१७७४ से १८०५ तक) बड़खेमण्डी राज्य के राजा थे। १८०३ से अंग्रेजों ने ओढ़िशा अधिकार किया। पद्मनाभ देव प्रतिराधी संग्राम करके वन्दी हुए। वन्दी को रूप में उनका देहान्त हुआ। उनकी एक राणीने सती बन चितारोहरण किया था। अंग्रेजों के अत्याचार से राज्य तथा राजभवन ध्वस्त हो गया। अत: उसके पश्चात यह वंश राजधानी विजयनगर गढ़ परित्याग करके दिगपहण्डी स्थित अपने कचहरी भवन में आकर अवस्थान करने लगे। पद्मनाभ देव के पुत्र है हमारे आलोच्य युवराज बलभद्र देव (संत अरक्षित दास)। बलभद्र देव के पश्चात् उनके भाई चैतन्यदेव ने सिंहासनारूढ़ हुए। इसी कचहरी भवन से बलभद्र देव उर्फ संत अरक्षित दास वैशाख शुक्लाष्टमी गुरुवार निशार्द्ध में सन्यास व्रत धारण करके गृहत्यागी हुए। वे घर से केराण्डीमाल पर्सत को चले आए। सवाल तो यह उठता है कि संत ने पिताश्री का रहते या उनके देहान्त के पश्चात, कब गृहत्यागी बन! यदि देहान्त के बात तो कितने समय के

उपरान्त! उनके जीवित रहते उनके चाचा चैतन्यदेव किस प्रकार सिंहासनारूढ़ हुए? यह अरक्षित नाम पहले से था या सन्यास का! उनके सन्यास के दीक्षागुरु कौन हैं?

सन्यास व्रत धारण के उपरान्त ना के आद्याक्षर लेकर नूतन नामकरण की प्रथा है (*नहीं है - होता तो शाक्यसिंह बुद्धदेव नहीं होते – अनेक सन्यासी मेरे मित्र बान्धव है। उनके पूर्व नामों की घोषणा करदेना उचित नहीं होगा अनुवादक*) तदनुसार बलभद्र का आद्याक्षर है ब। अत: लगता है अरक्षित नाम सन्यास का पूर्वनाम है। (नहीं, राज वंशीय देव हो सकते हैं दास नहीं - अनुवदक)। इस सम्बन्ध में उनके विरचित कहाजानेवाली दो पुस्तकों में प्रमाण का अनुमान लगाया जा सकता है।

अनाथ हुआ नहीं सुत। मैं भी नहीं हूँ सामरथ।।३ ३।
महाशून्य से आज्ञा हुई। पुत्रेक पाओ वाणी हुई।।३४।
अरक्ष के रक्षक कर दिये। रक्षित पुत्र उसे दिये।।३५।
उसी में वीते कई दिन। जनमा एक वह नन्दन।।३ ६।
अरक्ष रक्षा हुई मानों। उसीसे अरक्षित नाम।।३७।

फिर शकाबकद में है –

पत्र कहीं भी नहीं पाकर। ब्राहणी की बारी में आकर।।९ ६।
पत्र काटे दशेक मैंने। रोष त्रास किया जब वह सुने।।९७।
चीखी वह जोर भीतर से। कौन वह चोर बगीचे में घुसे।।९८।
इतना साहस है भी तेरा। कि पत्र घुसे काटता है मेरा।।९९।
चीख उसकी सुन मैंने कहा! अरक्षित मैं पत्ते लूंगा कहा!!१००।

अत: युवराज बलभद्र देव का नाम भी अर्क्षित था।

संत अरक्षित दास ने महीमण्डलगीता में लिखा है, वे जब पुरी पहुंचे तब उनकी आयु उन्नीस वर्ष थी। घर पर दो वर्ष के लिए भगवत नामकीर्तन मग्न थे। पुरी चलकर श्री जगन्नाथ के दर्शन न पाकर अठरनला में सत्रह दिनों तक उपवासी रहे। और चाण्डाल के हाथों से मार खाकर उन्हें अपने पूर्व वैभव का स्मरण हो आया है। महीमण्डल गीता के ७०वें अध्याय अठारहवे से पच्चीसवें पदों में लिखा है –

दो सालों तक घर पर। पिता खोए मैं निरन्तर।।

(२५वाँ अध्याय ७० महीमण्डल गीता)

इससे अनुमान होता है कि पिता पद्मनाभ देव के देहान्त के उपरान्त वे दो साल घर पर थे।

आयु थी तब उन्नीस। विधाता ने किया मेरा नाश।।२८।

(७० वाँ अध्याय, म.गीता)

इससे प्रतिपादित होता है कि उन्होंने १९ साल के आयु में गृहत्याग किया था। १७ में नहीं।

सत्रह की आयु हुई उपनीत। सुबुद्धि हुई मेरी जागरित।।२६।।

दो सालों तक में घर पर। तुम्हारी भावना में मग्न निरन्तर।।२७।।

तुममें चित्त मैं रमाए। रातदिन क्या जान न पाए।।२८।।
सोचा घर पर न कोई काम। अरण्यवास करुँ अविराम!!२९।।
(महीमण्डल गीता ७० वाँ अध्याय)

अत: अरक्षितदास सम्भवत: सन् १७८८ में धरावतरित हुए थे। पिता के देहान्त के उपरान्त पितृत्व चैतन्य देव अंग्रेजों की सहायता से राजगद्दी हथिया कर राजा बने और (१८०७) और उसके दो वर्ष पश्चात् बलभद्र देव उर्फ संत अरक्षित दास ने गृहत्याग किया।

सन्यासी जीवन: मही मण्डल गीता के ६७वें अध्याय से संत ने अपने गृहत्याग के विवरण का उल्लेख करते हैं। दिगपहण्डी कचहरी भवन से वैशाख आठवीं चान्द के अस्त जाने के पश्चात उन्होंने कौपुनी धारण करके गृहत्याग किया। चलते समय घर को लिखित सूचना दे दी –

कर में कौपुनी धारण। लेख यह करता प्रेरण।।३३।।
देखो खोजना मुझे नहीं। तलाशो पाओगे ही नहीं।।३४।।
(६७ अध्याय - महीमण्डल गीता)

संत अरक्षित दास के सन्यासी के रूप में गृहत्याग करते समय माता-पिता जीवित होते तो निश्चित तलाशते परन्तु उन्हें किसी ने भी खोजा नहीं। उस समय उनका यात्रापथ था खल्लिकोट, वाणपुर, ब्रह्मगिरि होते हुए पुरी राजपथ।

घर से निकलते ही झंझा तुफान वर्षा का प्रारंभ हो गया। चलेंगे या रुके रहेंगे इस असमंजस्य में दृढ़ मनोबल से गृहत्याग करके अरण्य पथ में भालू देखा। पर भालू पथ पर से हटकर कहीं और चला गया। और भोर तक संत केराण्डिमाल पर्वत तक पहुंच गये थे। उन्होंने वहाँ टिक कर भक्ति साधना करने की इच्छा तो की किन्तु अन्नकष्ट जलकष्ट के विचार से निकटस्थ ग्राम को अभिमुख चलकर शबरपल्ली पहुँचे। वहाँ लोगोंने उन्हें गांव में रूक कर बच्चों के कहने पर उन्हें विद्यादान करने को कहा। परन्तु संत ने वे पुरी से लौट कर अवश्य रुकने का वायदा किया। लोगों ने उनके लिए खाना पकाने के सामान जुटा देने मको कहा, पर संत ने वे पकाना जानते नहीं है कहा। और उनके जात बतलाने पर कुछ अन्न और अधपका आम खाने को दिया। चार पांच कौर लेकर वहां से विदा लेकर चलपड़े। एक और गांव में प्रवेश करने पर वहां लडकों ने उन्हें पागल मान कर पत्थर मारने लगे तो वे चलकर एक उजड़ी झोपड़ी में छिप गये। तब एक ब्राह्मण ने उन्हें घर बुलाकर भोजन कराए। विधवा उसकी कम उम्र की बेटी। उसने संत को उपदेश देते हुए कहा कि घर लौट चलें। घर संसार करें। सन्यास पथ अति दुर्गम। ब्राह्मणी के उपदेश कुछ हद तक भया, बावजूद उसके उन्होंने सोचा, क्या मुंह लेकर घर वापस जाएँ। गाँव के भीतर चलें तो लोग पागल कहकर पत्थर बरसाएँगे उन्हें अन्न जन की भिक्षा करना भी तो नहीं आता! गुजरान किस भांति हो? यही चिन्ता मन में समाने लगी, फिरभी वे अड़िग लक्ष्यपथ पर बढ़ते चले।

चलकर राह में अभुक्त दिन गुजारते रहे। राह पर एक केवट मिला, वह उन्हें बुलाकर घर लेचला और भोजन कराया। भोजनोंपरान्त सोरड़ा गाँव में संध्या हुई। उसके बाद एक ब्राह्मणने उन्हें भोजन कराए और दूसरा गाँव को चलने को कहा तो वे एक ब्राह्मण शासन गांव में पहुंचे। (*शासन - गजपति महाराजाओं के द्वारा दान में राजगुरु, राजपुराहित तथा अन्य पंडितों को प्रदत्त निष्कर गांव। जैसे मेरा अपना नीलशैल ख्यात, पंडितराज कविराज जगन्नाथ मिश्र (संगीतज्ञ तथा रचनाकार रसरत्नाकर) की पावन भूमि। राजगुरु परंपरा में गोदावरी वर्द्धन राजगुरु, लक्ष्मीपरमगुरु, जमेश्वर रायगुरु, कपिल रागयुरु आदि की भूमि दिव्यसिंहपुर शासन, माणिकागोडा के समीप* - अनुवादक) वहाँ उन ब्राह्मणों ने भोजनकराए नहीं साथ ही वहाँ टिकने नहीं दिया तो वे आकर नटीकाल ग्राम्य जंगल में आसरा लिया। वहाँ कीडे मकोडे मच्छरों के तीव्र दंशन असहनीय था। तब उन्हें उस विधवा ब्राह्मणी की हिदायत याद ओ आयी। स्थिति जो भी हो वे सुदृढ़ मन से गन्तव्य पथ पर ब्रह्मगिरि होते हुए पुरी सिंहद्वार माटिकिणा द्वार (अर्गल द्वार) पर आ उपस्थित हुए। परन्तु द्वार रक्षक ने उन्हें भीतर जाने न दिया। फिर अठरनला (श्रीक्षेत्र प्रवेश पर आद्य माता वाटमंगला का मंदिर, तत् पश्चात् अठरनला (एक छोटा-सा नाला जिसपर बना प्राचीन पुल जिसके नाले हैं अठारह - अनुवादक) तक लौट जाने को कहा, क्यों कि उस समय अंग्रेज सरकार का कडा आदेश था कि वहा दर्शनार्थी यात्रकर (शुल्क) की रकम अदा किये विना कोई मंदिर दर्शन कर नहीं पाएगा।

उसी से द्वार रक्षक ने उन्हें भीतर जाने नहीं दिया। पांच दिन वकुल तले अभुक्त वीताने के वाद देव दर्शन की आशा तज कर वे सत्यवादी की ओर चल पडे परन्तु, दिशाभ्रमित होकर फिर लौट आए। उसी बकुल के तले फिर सात दिन उपासी रहे। दिशा मैदान के लिए उसी उसी नटीकाल बाग में चलकर शौच हो आते समय नरीयल बाग रक्षक बाउरी (हरिजन) ने देखा और उन्हें नरीयल चोर समझ कर उन्हें खुब पीटा। उसे पीटते देख एक ब्राह्मण बुढ़िया ने उस बाउरी को खूब धमकाते हुए कहा – मैं देख रही हूँ ये आठ दिनों से इसी बकुल तले पडा है। पानी पीने हो सकता है तेरे बगीचे में आया हो, और तु उसे बेरहमी से मार रहा है! राजा को पता चले तो तुझे हरिकाठ से दण्ड देंगे। सुन कर बाउरी भाग निकला। अरक्षित फिर मार खाए कष्ट से उसी बकुल तले टिके प्रभु से पिण्ड से ले चलो प्रभु की गुहार लगाइी है। सुबह होने पर उनमें शारीरिक कोई पीडा ही नहीं थी। द्वारी के कृपा कर छोडने से पुरी शहर के अन्दर दाखिल हुए। सिंहद्वार के आगे भीड़ ठेलम ठेल के कारण देवर के भीतर न जा पाने के कारण पांच दिन और उपासी रहकर वे लौट आए। तब तक साकार उपासना से उनका भरोसा ही हट चुका था। अरूप निराकार रूप में प्रभु सर्वत्र विद्यमान हैं, यही विचार करने लगे।

एसा मन में किया विचार। पांच दिन वहीं पर रुक कर।।५०।।
बोला प्रभु, तुम्हरी नहीं दया। नाहक पडा रहूँगा मैं क्या।।५१।।

अन्न जल भी तो मिला ही नहीं। भूख प्यास से बेहाल हूँ कहीं।।५२।।
मन ही मन मैंने सोच लिया। अठरनला पार हो आया।।५४।।
(मही मण्डल गीता ७०वां अध्याय)

उसके बाद आते हुए जोर हवा वर्षा से आक्रान्त होकर बरगत के तन को जकड़े रहे। दो घड़ी के बाद हवा बारिश थम गयी। शाम हुई तो उनमें अन्न कष्ट से चलपाना सम्भव नहीं हुआ। उसी बरगद तले रात वीतायी। तब पूर्व भोग विलास बेहद याद करते रहे। तत् पश्चात सत्रह दिन अन्न कष्ट से गुजार कर ओषणा बरपदा ब्राह्मण शासन के मंदिर में रात वीताने के पश्चात दूवरे दिना एक ब्राह्मण ने कृपा कर भोजन कराया। उसके बाद ड़िआग्राम बीच गली में रात वीता कर फिर मंदिर में आए। वहां उनके यही विश्वाबसु पूजित नीलमाधव हैं की आस्था जागी।

नीलमाधव देव वहां! पर्वत पर हैं जहां।।२१।।
पहले जगन्नाथ यहां। शबर पूजता था यहां।।२२।।
यहां ब्राह्मण को दीखाया। उसने राजा को बताया।।२३।।
त्रन्द्रद्युम्न ने देख लिया। देर न कर लिवालिया।।२४।
लेकर नीलकन्दर पर। प्रतिष्ठा करवायी सत्वर।।२५।

दशपल्ला मणिभद्रा मांनदी के तट पर रात्रीयापन करके ठण्ड हवा की पीड़ा झेल कर वे खण्डगिरी लौट आए। फिर खण्डगिरि तज कर बालकाटी, प्राची तट होते हुए हरिहरपुर समन्दर तट में पहुंचे (शायद बलिकुदा-अधुना नाम हरीश पुर)। वहाँ महादेव के माली पूजक ने दही

पखाल का नैवेद्य समर्पण किया। पर मांगने पर भी दीया नहीं। उन्होंने जीवन में किसीसे मांगा नहीं था। आज पूजक को मांग कर मनही मन अपने आप को धिक्कारा। फिर महादेव से याजना की। उन्होंने भी नहीं सुनी तो उन पर से भी उनकी आस्था टूट गयी।

यह तो पत्थर ही है। ये महादेव भी नहीं हैं।।६३।
महीमण्डल गीता ७६वां अध्याय)

उसके पश्चात् झंकड होते हुए पाराद्वीप के पथ पर निकल पडे। राह पर शारला मंदिर में पूजक ने शारला के आदेश से प्रसाद सेवन कराए। वे पाराद्वीप में २२ दिन टिके रहे। मठ पर पूजक ने अपने भाग के प्रसाद के मोटा अन्न प्रसाद देते रहे। राजा से अनुरोध करने पर उन्होंने टिकने की कोई व्यवस्था न करके कही और जाओ कह कर इनकार ही किया। कुजंग षण्ढराजा में बैल तक का ज्ञान नहीं है, यही मतपोषण किया है संत अरक्षित दास ने। कुजंग राजा अधर्मी, यहाँ लोगों में धर्म कर्म भी है नहीं। यहाँ तक कि वहाँ कोई न चले - यही परामर्श है संत का।

सुजन सुने मैंने कही। पाराद्वीप न चलें कोई।।३१।
धर्म कर्म कुछ है नहीं यहाँ। उसी से मैंने तुम्हें कहा।।३२।
(महीमण्डल गीता ७९वां अध्याय)

तत् पश्चात् संत ने कन्दरापारि (आधुनिक केन्द्रापडा) आए। वहां यदुपुर में प्रसन्न मन में अवस्थान किया। केन्द्रापडा में सुख सुविधा से चार

महीने व्यतीत करके भाद्रव चतुर्दशी मंगलवार को नांव पर ओलाशुणी गुफा में पहुँचे। इसी पर्वत पर उन्हों ने महानिर्वाण तक अवस्थान किया था।

राजर्षि संत अरक्षित दास ने कभी किसीसे कुछ मांगा नहीं है। सदा अरण्य में भक्ति साधना की इच्छा की है। अन्त में उन्हें अपनी मनमाफिक जगह मिलगयी। वह है ओलाशुणी पहाड़ पर स्थित अनन्त गुफा।

मही मण्डल गीता राजर्षि अरक्षित दास की आद्य सर्वश्रेष्ठ रचना है। उनकी जीवनी इसमें ६७ वें अध्याय से ९१ तक में समावेशित है।

संत अरक्षित दास का धर्म दर्शन -

महापुरुष बलराम, जगन्नाथ, अनन्त, यशोवन्त और अच्यतानन्द के तिरोधान के पश्चात उत्कल में धर्म की अवस्था प्रायत: शोचनीय हो गयी। दीर्घ काल के अन्तराल में संत अरक्षित ने अन्तर्निष्ठा आत्मज्ञान की प्रतिष्ठा के लिए अरण्य पर्वत में आश्रय लेकर धर्म प्रचारव्रती हुए। सामाजिक तथा आध्यात्मिक संकट के निराकरण हेतु अत्य, संयम, आदर्श पर आपने गुरुत्वारोपित किया। समाज से जात-पात के अभिमान, दूर कर के समानता एकता की प्रतिष्ठा तथश मूर्तिपूजा को निरर्थक ज्ञान कर कें अद्वय परमात्मा के प्रति आस्था स्थापन हेतु संत अरक्षित की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा प्रशंसनीय है। वे ,क साधक, योगी तथा भक्त थे। भक्तियोग में सिद्धिप्राप्त होकर वे परमात्मा के श्रीचरणों में अपने

को पूर्ण रूप से समर्पित करके सम्पूर्ण उत्सर्गीकृत थे। यौवनावस्था में सन्यास ग्रहण करके नैतिक आदर्श, तथा सद्‌गुणों का उन ऋषि प्रतिम संत कवि में परिपूर्ण था, वह आपके व्यक्तित्व की एक महनीय दिशा है। जाति धर्म वर्ण निर्विशेष से आप हर घर में भिक्षा ग्रहण करते थे। प्रत्येक दारी के प्रकृतिरूपिणी माता तथा पुरुष को परम प्रतीक ज्ञान करते थे। वेदान्त सिद्धान्त तो यही है, कि आत्मा न स्त्री है न पुरुष। जिस प्रकार शरीर में आत्मा का अवतरण होता है आत्मा का विवेचन उसी स्वरूप होता है।

संतों के आचरित मार्ग में बौद्धधर्म का शून्यवाद किंवा वैष्णवीय द्वेतवाद उनके सिद्धान्त में प्रत्यक्षित नहीं होता। सामान्य संकेत द्वैताद्वैतवाद के होने पर भी प्रतिमा पूजा उनके विचार में निषिद्ध है।

काष्ठ पाषाण पुतली जिसे देवता मान पूजू उसे भी।
वह गति मुक्ति देगा कभी मूढ़ जीव न जाने कभी।
(मही मण्डल गीता)

अरक्षित के शिष्यवर्ग नाम फलक धारण करके परंब्रह्म की निरामय आराधना करने को श्रेय मानते हैं। वे निःसङ्ग निर्लिप्त होकर अपने सुख स्वच्छन्द के प्रति उदासीन हो केवल महाशून्य तथा नाम ब्रह्म के एकनिष्ठ ध्यान निमग्न रहते हैं। उनके मतानुसार नाम ही सत् जगत मिथ्या। मोक्ष पथ पर नियन्ता जिस की अनन्त महिमा है।

वह नाम है ब्रह्माण्ड घेरे। है वह निरत चिन्तन में मेरे।।

नाम जल स्थल अनल। कोई न पाए कभी थल।।

वह नाम सभी जीवों में है। करो चिन्तन कुछ भय ही नहीं है।।

(महीमण्डल गीता)

संत अरक्षित दास ने ज्ञान की महत्ता तो स्वकारा है फिरभी वे भगवत् प्राप्ति हेतु भक्ति को श्रेष्ठमार्ग मानते हैं। श्रीमद् भागवत महापुराण में कैवल्य को ही सात्विक ज्ञान के रूप में अभिहित किया गया है। फिरभी इस ज्ञान में संशय तथा अहंकार आता है मान कर संतवर्ग वासनाशून्य होकर फलत्यागी बन समस्त कर्मफल ईश्वर को समर्पित कर देते है। वह ही प्रपत्ति भाव और शरणागत है। शङ्करगीता, शाण्डिल्य भक्ति सूत्र आदि ग्रन्थों में भक्ति की श्रेष्ठता को स्वीकार किया गया है। संत बलराम, संत भीमभोइ भी भक्तिभाव के विना सद्ज्ञान का उदय होना जीवन के लिए सम्भव नहीं है, घोषणा की है।

विना भक्ति के प्रापत न होए सद्ज्ञान (भीमभोइ भजनमाला)

६०० वर्ष पूर्व महापुरुष अच्युतानन्द ने कहा है कि मैं भीम भोइ के रूप में अवतारित होऊँगा। सिद्ध साधक, अलौकिक कवि, भक्त दार्शनिक, अलौकिक विस्मयकर रूप में एक साथ चार शिष्यों से लिपिबद्ध कराए विशाल सारस्वत रचना सम्भार पोथि के रूपमें भव्यसमृद्ध खलिआपालि साधना पीठ संग्रहालय में सुरक्षित है। सब ग्रन्थावली के रूप में प्रकाशित भी है। उनकी विस्मयकर जीवनगाथा अध्ययन मनन के विना

बोध प्राप्त होना सम्भव नहीं है। जिज्ञासु श्रद्धावान पाठकों से यही निवेदन है कि वाचन वे अपनी महत् जिज्ञासा शान्त करें। परमचक्षुष्मान थे संत भक्त कवि भिमभोई। चर्मचक्षु नहीं था पर दिव्य अन्तर्चक्षु से अनन्त एकात्मता से वे अरूप अनआकार, अव्यक्त, अजन्मा, असीम, अनन्त, अव्यय महाशून्य में परिपूर्ण परम पुरुष से मिला करते, बतियाते से जगत के आगामी संकट काल तक की सूचना तक दिया करते थे। कहते - प्रभु, तुम सब जानते हो। फिर भी बाद में मुझे उलाहना देकर कहोगे तुम देख देख कर चूप कैसा रहे! इसे और पल्लवित नहीं करुंगा।

मैने संत भक्त कवि भीम भोइ की स्तुति चिन्तामणि का टीका के समान समीक्षात्मक गद्य रूपान्तरण किया है। उसे पथिक प्रकाशनी भुवनेश्वर ने प्रकाशित किया है (२०१५)। उसी संस्था से २०१६ में समूल पद्यानुवाद कवीर दोहावली भी प्रकाशित हुई है।

अब मैं अपनी अबोध, अविज्ञ, अज्ञमता के संबंध में कहदेना समीचीन होगा मानता हूँ। अब आयु चैयाशी चल रही है। नेत्रज्योति काल समर्पित होने लगी है। यवकांच से वर्ण पहचानता हूँ और कम्प्यूटर में अक्षर जूम करके कोई ड्राफ्ट के विना परमपुरुष श्यामसखा ने जो अन्तस्थल में संजोए रख दिया है उसीसे जो करताहूँ करताहूँ। प्रकाशित ग्रंथ हुए ३०३। नियमित कुछ न कुछ अवश्य लिखता हूँ। किन्तु शारीरिक शिथिलता के कारण एक घंटे का काम दिन भर में पूरा हो नहीं पाता।

तब मेरे पास सहृदय भाई. शे. मतलुब अली की प्रेरणा से ओलाशुणी से भाई नव किशोर सामल, शिल्पी, एकनाथ महारणा और सूचना पाकर अब बलांगीर में अवस्थापित इंजिनीयर श्री सुदाम चरण पृष्टि जी आश्रम से प्रसाद, कुछेक शोभन सामग्री। देवार्पित 'महीमण्डल गीता की एक प्रति देते हुए ग्रंथ को हिन्दी में प्रस्तुत कर देने को कहा। मैंने अपनी सारी असुविधाएँ दर्शाते हुए अस्विकार करता रहा किन्तु वह कार्य मैं ही करुंगा, किसी और से होगा नहीं कहते रहे। सामान्य प्राथमिक व्यय के लिए अर्थव्यवस्था भरदी, जो होसकता है मुझे ऋणी करदे, मैं कहता रहा पर वे माने नहीं।

पता नहीं किस प्रेरणा से मैंने दूसरे दिन सुबह कार्यारंभ करदेने के बाद से मैं अननुभूत एक अपूर्व अनुभव से रोमांचित हो रहा हूँ। मानों वह सारस्वत कर्म ही एक योग समाधि है। मानों संत अरक्षित दास मेरे पास विद्यमान हैं। परम पुरुष श्यामसखा की करुणा से महापुरुष अरक्षित दास अपना काम स्वयं कर रहे हैं। मैं निमित्त मात्र हूँ।

ये दिव्यात्म योगी निराकार पुरुषोत्तम के प्रतिनिधि होते हैं। प्रभुकी इच्छा से जगतकल्याण हेतु प्रेरित। जिस प्रकार नर ने नारायण से कहा - प्रभु यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि। पार्थ के समान ये योगी भी सर्व समर्थ होते हैं, सर्वज्ञ, त्रिकालज्ञ होते हैं फिरभी .... बुझे गर्व है कि श्यामसखा की करुणा से काम किया महापुरुष ने पर नाम होगा मेरा – अनुवादक)

संत अरक्षित की रचनावली में भी उसी दर्शन की पुनरावृत्ति देखी जा सकती है।

भगति योग तु साधे तो। बने रहोगे युग युगान्ते।।
अजर अमर तु होगा। यदि यह योग तु साधेगा।।
(महि मण्डल गीता)

पंचसखा के पिता ब्रह्माण्ड तत्त्व तथा संत अरक्षित के पिण्ड ब्रह्माण्ड तत्व प्रायत: एक समान है।

संत अरक्षित दास के दार्शनिक तत्व विवेचना में और जिन प्रसंगों की अवतारणा की गयी है उनमें सृष्टि प्रक्रिया ॐकार महिमा स्वीकार्य है। सृष्टि की प्रक्रिया में आपने प्रमुखत: शून्य को परम कारण के रूप में निर्देशित किया है। ॐकार महिमा में जिस प्रकार अनिर्देश्य अव्यक्त ॐ अरूप ब्रह्म के दर्शन तत्व का प्रतिफलन है।

इन पंचभूतों के साथ देह। मिलाए आनन्द से रहो।।
तब अमर होगा जानों। तेरी पृथ्वी रहेगी सदादिन।।
(महीमण्डल गीता)

यथार्थ में वे ब्रह्मविद् थे। श्री श्री जगन्नाथ दर्शन वंचित होकर प्रत्यावर्तन करने समय उनके कंठ से वज्र निर्घोष नाद से निनादित हुआ था – **बोला मैं यहां कोई कार्य नहीं। ब्रह्माण्ड में है परिपूर्ण वही** (महीमण्डल गीता)

गीता की यह परमवाणी संत के चित्त में सदा गुंजित होती थी। सत्य की साधना के व्रतधारी होकर वैराग्य वरण करके आपने जन समाज के कल्याण निमित्त अपने आप को नौछावर कर दिया था। उनका कोई चीता तिलक नहीं था। या आपने किसी गुरु से दीक्षा ली थी, उसका भी किसी ग्रंथ में उल्लेख नहीं है। वे अवधूत थे। आपने पंचसखा के तत्वों का अनुसरण किया था उसका उल्लेख है। अच्युतानन्द ने कई शत वर्ष पहले अरक्षित दास के आगमन की सूचना छयालिश पटल ग्रंथ में दी है।

ओलाशुणी पर्वत पर साधु सभा गोही।
अरक्षित के द्वारा एकाक्षर परीक्षा भी होगी।।
अनेक अनेक भक्त सम्मिलित होंगे।
अरक्षित से कोई मुकर न चलेंगे।।
अरक्षित दास है मेरा लाड़ला सपुत।
मेरे आगे वह करेगा मालिका चालित।।

तत्व बोधिनी टीका ग्रन्थ में भी महापुरुष अच्युतानन्द ने कहा है –

एक और कथा सुनों रे राम।
अरक्षित है भगत सकत महान।।
हज समाधि का वह करेगा साधन।
क्षेत्र मिलेगा देह को कर मगन।।
सजीव देह में वह रखागर कीरति।
बडी होगी जगत में ख्याति।।

इससे संत अरक्षित की निर्विकल्प समाधि के संबंध में विचार किया जा सकता है। यथार्थ में वे एक सिद्ध योगी थे। वे मुक्तात्मा न होते तो उनकी महिमा ३०० वर्ष पूर्व अच्युतानन्द निपिबद्ध कर न जाते। महापुरुष के आचरित मार्ग में बौद्ध शून्यवास या वैष्णवीय द्वेतवाद परिलक्षित नहीं होता। द्वेताद्वेत वाद की सूचना मात्र है फिरभी मूर्त्तिपूजा का निषेध है।

काष्ठ पाषाण पुतली जिसे देवता मान पूजू उसे भी।
वह गति मुक्ति देगा कभी मुढ़ जीव न जाने कभी।
(मही मण्डल गीता)

राम कृष्र आदि के अवतार तथा देवी देवताओं की सभा के ब्रह्मांशस्वरूप गृहीत होने पर भी इसे प्रमुखतः स्वीकार नही किया गया है। वैष्णवों की भांति राम कृष्ण हरि जाप करने की कोई आवश्यकता नहीं है। आत्मा को न जान कर माला लेकर जाप करना निरर्थक है, वंत का यही मत है।

माला तुमहरी खण्डखण्ड भजना भी खण्ड।
आत्मा को जो न चीह्ले मन का वह भाण्ड।।
(भक्तिटीका द्वितीय अध्याय)

अतः संत योगीअरक्षित दास के अनुयायी नाम फलक लेकर परमब्रह्म की निरामय आराधना को समीचीन मानते हैं। वे निरासक्त हो

अपने सुख स्वाच्छन्द्य के प्रति उदासीन रहते हैं। केवल महाशून्य और नाम ब्रह्म के ध्यान में निमज्जित रहते हैं। उनके मत और आस्था के अनुसार वह नाम ही सत्य और जगत मिथ्या। मोक्ष के पथ पर नियत इस नाम की महिमा अनन्त है। अरक्षि आज्ञाधर्म के अन्यतम प्रवर्तक हैं। सारी सृष्टि विश्व के मूलाधार परंब्रह्म में परिचालित है। आज्ञा के अर्थ में भगवान का आदेश, महिमा महत्व, यश, पशशस्ति, गौरव ख्याति आदि आदि बहुतों को स्वीकारा जा सकता है। संत बइरी दास, हाड़ि दास आदि के रचित ग्रंथों में यही आज्ञाधर्म उद्घोषित महीमण्डल गीता के विभिन्न अध्यायों में विदित है।

सागर बालू गिना जाए। आज्ञा महिमा को ठौराये।।

आज्ञा महिमा भाव में रस। कहते अरक्षित दास।।

सत्य-सन्धानव्रती होकर वैराग्य लेकर संतजन अपने आप को समाज के कल्याण साधन हेतु नौछावर किया था।

संत की रचनावली :

महीमण्डल गीता की रचना का प्रारंभ संत अरक्षित दास के खण्डगिरी अवस्थान के समय हुआथा और अन्त में ओलाशुणी पर्वत में समाप्त हुआ। अवश्य इसका कोई सारस्वत मूल्य न होने पर भी आध्यात्मिक मूल्य है। इसके अलावा अनेकों ने अर्क्षित विरचित रचनाओं को संत की रचनाओं में सम्मिलित कर दिये है यदकवपि वह उनकी रचना नहीं है या उनमें उनके आदर्शों का प्रतिफलन है

नहीं। श्री रत्नाकर साहू जी के द्वारा संकलित अरक्षित दास ग्रंथाबली में स्थानित प्रथम भजनाबली है शून्यगुरु महिमा मेरू त्राहिमां भवसागर अलेख धर्म का जनप्रिय भजन है और प्रत्येक अलेख धर्मी का कंठस्थ है। कारण भजनाबली ग्रंथ में १५ वां और ५३ पृष्ठ पर वह लिपिबद्ध है। उसी प्रकार वह महागुप्त पद्मकल्प अर्क्षित दास नामसे रचित, उल्लेख है। यद्यपि इसी नाम से अच्युत प्रणीत है अच्युत के प्रत्येक गीत राम नाम से कथित है। इस पुस्तक में यही राम प्रश्न के रूप में कथित है। अत: यह संत की रचना नहीं है इसके अतिरेक महीमण्डल गुप्त टीका, महाकवच मोक्ष उपाधि, शकाब्द, भक्तिटीका, अवधूत संहिता बाल्यबोध अर्क्षित दास की रचनाएँ है, नजर आती हैं। इन ग्रंथों में कुछेक माही मण्डल गीता धर्म प्रसंगादर्शों की विरुद्धत्मक टिप्पणी भी है। उन पर अधिकतर गभीर सोचविचार न हो तो ये रचनाएं संत अर्क्षित दास की हैं कहा नहीं जा सकता।

संत कवि के भक्तिमार्ग दर्शन उत्कलीय प्राणस्पन्दन मात्र है। पंचसखाओं के धर्म दर्शन को केतेकांश अरक्षित दास ने स्वीकारा है।

अत: महापुरुष अरक्षित दास एक समाज संस्कारक, अस्पृश्यता निवारक, अवधूत धर्म प्रचारक और आज्ञाधर्म प्रचलकारी संत थे।

मही मण्डल गीता का इक्कीस अध्यय विशिष्ट पुस्तक पहले प्रिटिङ्ग कंपनी के मार्फत प्रकाशित हुई थी। वही अब धर्मग्रंथ स्टोर कतृक प्रकाशित

है। खण्डगिरि पादुकाश्रम के द्वारा इसका प्रकाशन १९७० में हुआ था। १९७८ में महन्त लछमन दास के द्वारा और १९९५ में फिर महन्त पर्शराम दास ने कराया। ओड़िशा म्युजीयम में भी इस की पांडुलिपि है।

अध्यापक श्री विश्वजित केशरी विश्वाल
एम्‌एस्‌सी और एम्‌ए तथा एल्‌एल्‌बी
उत्कल विश्वविद्यालय
तलमूल कॉलेज, अनुगोल

भक्तियोग के सिद्धयोगी महापुरुष संत अरक्षित दास की प्रशस्ति सर्वभारतीय हो, इस अभिलाषा महीमण्डल गीता को बृहत्तम सारस्वत मञ्च प्रदान करने हेतु राष्ट्भाषा हिन्दी में काव्यान्तरित करके अब प्रचार प्रसार कमिटि की और से प्रत्येक उपादेय सूचना सन्निवेशित करना आवश्यक मान कर मर्मक्ष विद्वान बोधदर्शी प्राध्यापक श्री विश्वजित केशरी विश्वाल भी की भूमिका के आश्रित होना एक प्रकार अनिवार्य था। उनके प्रति अशेष आभार मानता हूँ। प्रभु उन्हें सुखी, यशश्वी करे, प्रार्थना करता हूँ। यह कोई व्येंपारिक कर्म नहीं है, उपासना है। मैंने इस के काव्यान्तरण के समय अनेक बार महापुरुष की सख्य सन्निधि पायी है, रोमांचित हुआ हूँ। काव्यान्तरण के मध्य अनेकत्र भाव पल्लवन के विचार से व्याख्यायित करदेने की चेष्टा की है। आशा करता हूँ अन्वषी पाठक-पाशिकाएँ लाभान्वित होंगे।

अनुवादक

महीमण्डल गीता

प्रथम अध्याय (१)

पंचभूत महिमा वर्णन (क्षिति)

(यह पूर्र रूप से भाषान्तरित त न होकर मूल रचना जिस प्रकार है उसे ही
लिप्यन्तरित करदेने की बाध्यता आयी है।
समझने में कोई दिक्कत होगी नहीं।
हिन्दी के मर्मज्ञ पाठक भी मेरी उस वाध्यता
का हृद्बोध करलेंगे, आशा है।)

महाशून्य आकाश जन्मितं। आकाश सेपवन सम्भवं।।
पवन से अग्नि जन्मितं। अग्नि से जल सम्भवं।।
जल सेपृथ्वी जन्मितं। क्रीड़न्ति संसार सागरं।।
लीला होते पंचभूतों में। सब आ मिलते हैं ब्रह्म में।।
पृथ्वी भूते सर्व स्थितं। सचराचर व्यापितं।।
पृथ्वी के विना सब होते हत। शून्य ब्रह्म में मिलित।।
जल भूत में सभी जीव। जनमते हैं सचराचर।।
जल हैत सर्व नाशं। जल से पृथ्वी सम्भवं।।
अग्नि भूते सर्व जीव। जीते हैं सचराचर।।
अग्नि हैते सर्व नाश। अग्नि से जल सम्भवित।।
पवन भूतं सर्व जीवे। विहरे सचराचरम्।।
पवन हैते सर्व नाशं। पवनु अग्नि जन्मितं।।

आकाश से सर्व जिन्मतं। उसके गर्भ में सचराचरम्।।
आकाश हैते सर्व नाशं। महाशून्य में सर्व मिश्रितं।।
महाशून्य अंधकारं। एकत्रित रूप सर्व मिश्रितं।।
आदिशक्ति अर्द्ध मात्रा। ॐकार रूपमें व्यपितं।।
(महापुरुष ने उपधा मिलन तक किया नहीं है)
नामब्रह्म, नामब्रह्म नामब्रह्म, सार जो भजते नर।।
क्षय नं होते पृथ्वके नाश पर भी युगयुग रहते अमर।।
अमर जो नामब्रह्म न भजते मूढ़ नर।
अतः स्वल्प नाश जाते, जो भजते वे अमर।।
मन चैतन को देखकर। अति आनन्दित हो कर।।
इस मही मण्डल मे मैं ही। तुम्हें तलाश न पायी।।
क्यों कि थी तुम्हंरी दया। सो तुमने दरशन दिया।।
अब मारे सारे दुःक गया। तुम्हारे दरशन जो मिलगया।।
मैं कहूं बात एक अब। बताना वह कृपामय।।
महीमण्डल गीता कहो। मन से मिटाओ संशय।।
जो इस मही स्थिति के अकूपार। शुन कर पाऊँ मैं निस्तार।।
प्रकृति के साथ मैं भटकता। सेवा तुम्ही कर नहीं पाता।।
हे प्रभु मरे प्राणपति। तुम विन नहीं अन्य गति।।
नमस्ते गुरु सर्व दाता। नमस्ते गुरु जग करता।।
नमस्ते गुरु सर्वदेही। तुम विन नहीं ओर कोई।।
नमस्ते गुरु सर्वदेव। बनाए रखो वदाभाव।।
नमस्ते गुरु मायाधर। मुझ से माया न आचरो।।

नमस्ते गुरु अन्तर्यामी। तेरी माया न कोई जानी।।
नमेस्त गुरु दया हो जिसपर। लगे न माया उस पर।।
नहीं तो कौन जा, माया से उबर। ब्रह्मादि देवा सुर नर।।
नमस्ते गुरु सर्व देही। तुम्हारे रूप वर्ष नहीं।।
नमस्ते गुरु तम अनन्त। नमस्ते गुरु जगत्तार्त।।
नमस्ते सर्व जीव गुरु। नमस्ते वाञ्छा कल्पतरु।।
नमस्ते गुरु मोक्षदाता। नमस्ते गुरु पिता-माता।।
नमस्ते गुरु दया करो। बताऊठ बातेक कृपा करो।।
पञ्चभूतों की कथा कहो। मन से मिटाओ संशय।।
इस दहे में होकर में। पञ्चभूतों को न चीह्नू मैं।।
इस देह में पञ्चभूत हैं कौन। बताना करुणा निधान।।
पृथ्वी किस भांति जान हुई। तुम्हारी माया न जान पायी।।
जब तुम्ही माया होगी मुझपर। पृथ्वी पर होगी वह क्योकर।।
हे देव गुरु त्राहित्राहि। पार करो इस दहे से ही।।
इस देह का नहीं कोई काम। जब तुम्हें न देवूं अविराम।।
मन-मुख से जब यह सुनी। चैतन कहे मंजुवाणी।।
हे मन जान नहीं पाते। पृथ्वी को क्यां कर निन्दते।।
तुमने पंचभूतों की जिज्ञासा। सुनों सुनाऊं मीटे तृषा।।
पृथ्वी की महिमा कहुंगा। तुम्हारा शक मिटाऊंगा।।
पृथ्वी नहोगी तो तुम और मैं। लीला रचेंगे किस प्रकार।।
पृथ्वी न होतो कैसी लीला। दहे गयी तो मीटी खोला।
शून्य में क्या लीला रचेंगे। एकांग होकर रहेंगे।।

वहां है नहीं लीला जानो। पञ्चभूत जो अगणन।।
पञ्चभूत ही इस पृथ्वीकर। लीला रचते संसार पर।।
पृथ्वी नं हो तो लीला नहीं। किससे विहरेगा तूही।।
नानादि भोग तू करेगा। जब धरा संभाले रखेगा।।
नानादि लीला मेरी जितनी। धरती धरे देखो उतनी।।
पृथ्वी न हो तो कहां रहेगा। क्या लिये भोग भी करेगा।।
नानादि तू करेगा भोग। पृथ्वी हो तब आएगा योग
नानादि मेरी लीला जो है। पृथ्वी धरे तू देखता रहे।।
पृथ्वी जाए तो रहेगा कहां। किससे भोग तू करेगा क्या।।
पृथ्वी जाए भी मेरा नाम। करता रहना चिन्तन।।
पृथ्वी तब सब कार्य होगा। नाना कौतूक से विहरेगा।।
पृथ्वी हो तो सेरा सुख। नाना लीलाएँ मेरी देखा।।
नानादि हाव्य तू खाएगा। पलंग सजाए तू सोयेगा।।
नानादि अलंकार जितने। नाना कुसुम हैं कितने।।
नाना वाहनो कर तू चढकर। नाना वस्त्र भी तू पहन कर।।
चूवा चन्दन त्तत्र वारे। कस्तूरी कपूर बहुतरे।।
पृथ्वी हो तब न करेगा भोग। नहोगी तो कहा टिकने का योग।।
स्वर्ग पर वैकुण्ठ पुर। यह देह है भोग सार।।
पृथ्वी है तब धर्म कर्म। पापपुण्य का जानेगा मरम।।
पृथ्वी जाए कुछ चले न पता। पृथ्वी हो तो सब है-सा लगता।।
पृथ्वी को लेकर तू रहेगा। संसार में तू लीला करेगा।।
पृथ्वी को लेकर तू टिका है। संसार में लीला भी करता है।।

हँसता बैठता, सोता है। नाना कौतुक विहरता है।।
देह जाएतो रहेगे कहां। क्या लिय; घूकेगा संसार।।
छप्पन कोटी जीव जितने। करते लीला ही उतने।।
पृथ्वी न हो तो लीला कहां। मनरे अब चेतो तू ही।।
नाम का नित्य चिन्तन कर। धरती तेरी होगी अमर अजर।।
पृथ्वी लिए अमर है रहेगा। सारा ब्रह्माण्ड तू घूमेगा।।
पृथ्वी के संग पृथ्वी बन। सबको देखेगा समान।।
भक्त भाव में रखना चित्त। धरती लिए घूमते रहो।।
पृथ्वी है तो सब है। जाए तो कुछ नहीं रहे।।
पृथ्वी सारे ब्रह्माण्ड भर। घेरी हुई है चराचर।।
जल से जनमी धरती। वूमदे वूतों लीला गीति।।
मेरु आदि जितने पर्वत। पृथिवी पर हैं समस्त।।
काका से करुड़ तक सारे। पृथिवी पर है ये सारे।।
अश्वत्थ से जितने सभी वृक्ष। धरती पर हैं ये प्रत्यक्ष।।
चाण्डाल से ब्रह्म तक फिर सब हैं इसी धरती पर।।
सिंह से कीड़ा तक सारे। धरती पर हैं ये सारे।।
सभी देव इन्द्र से लेकर। सब हैं इसी धरती पर।।
उड़ते, डूबते, चल अचल। ये चार प्रकार सकल।।
पृथ्वी है सो सब हैं। नहीं तो सभी नाश जाएँ।।
सप्त सागर तुम यह जानो। धरती है सो हैं मानो।।
चौदह ब्रह्माण्डों के साथ। सब है, क्यिों कि पृथ्वी है विराजित।।
सप्त पाताल सप्त द्वीप। पृथ्वी को लिए सब हैं देखो।।

पृथ्वी है सो सब हैं। न होती तो कोई न रहते।।
पृथ्वी से सभी हैं जनमते। यह तो कोई न जानते।।
पृथ्वी न होती तो जल कहां। सुनों मैं कहताहूँ यहां।।
पृथ्वी है तो भल भी है। हर जगह पसरता रहता है।।
पृथ्वी से जल लेकर मेघ। पालता ब्रह्माण्ड अमोघ।।
पृथ्वी न होती जल कैसे। कहां से मेघ लाता उसे।।
पृथ्वी है तो भी है जल। नहीं दतो कहां होता जल ?
पृथ्वी न होती तो मेघ कैसे। जल लाता फिर कहां से।।८ ३।
पृथ्वी है तो जल है। पीकर सब जीवित रहते हैं।।
पृथ्वी है तो जल होए। उसीसे सब जात होए।।
छप्पन कोटि जीव समुदाय। निवास करर्त अभय।।
पृथ्वी मे जितने रूप होए। तमहरी देह में हैं भये।।
चेतों तुम, भूतों की कथा सुनकर। मन आनन्द होगा उसपर।।
कहता अरक्षित दास। पृथ्वी भूतों की कथा रस।।
हे सूजनों कहता हूँ याद रहे। पृथ्वी को रखो नाम ध्याये।।
नहीं तो धरती नाश जाएगी। फिर यह देह कां मिलेगी।।
कौन कहे मरने से जनम होए। मिथ्या है सच कदापि नहीं है।।
पृथ्वी भूतों की कथा सुनों। त्रेयानवे पदों में सम्पूर्ण।।९ ३।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता

पञ्चभूत (क्षिति) महिमा वर्णने नामों प्रथमोऽध्याय।।

— o —

द्वितीय अध्याय (२)
पंचभूत महिमा वर्णन (अप)

चैतन्य अब सुनों तम। पृथ्वी महिमा सुना हम।।१।
जल की महिमा कहना। मन से संशय मिटाना।।
मै आया तेरी शरण में। कहो मां न धरे मन में।।
तुम्हारी माया मुझे न हो। मन मेरा तुम में हो।।
करता रहूठ तुम्हारे नाम-चिन्तन। रहूंगा रमाए मैं मन।।
यह दया मुझ पर बनी रहे। तेरी माया न लागे कबहूँ।।
सुनो मन चैतन्यकहे। पूछा जो तुमने वह है।।
जल भूत की कथा कोई। ब्रह्माण्डे जान सके नहीं।।
जल की महिमा किंचित। कहूंगा तुम्हारे अग्रत।।
अग्नि से जल जात होए। यह तो न जानते काय।।
जल की महिमा तुम सुनों। सभी घटों में होता जानों।।
स्वर्ग मर्त्य पाताल होगर। जल सब में है घेर कर।।
सप्त ब्रह्माण्ड सप्त द्वीप। जल है घेरे तुम देखो।।
नवखण्ड पृथ्वी फिर। जल है सब घेर कर।।
आकाश से मही तक समाने। घेरे है कोई नहीं जाने।।
जीव अजीव सब में है। वह सब जात करता है।।
चप्पन कोटि जितने जीव। जलसे जात हुए सब।।
तेतीस करोड़ देव जानों। जल से जात हुए मानों।।
मेरु से लेकर सब पर्वत। जल से हुए सभी जात।।
अश्वत्थ समेत सारे वृक्ष। जल से जात यह प्रत्यक्ष।।
काक सा करुड़ पर्यन्त। जल से जात ये समस्त।।

चाण्डाल से ले महाब्रह्म। जल जात हैं यह प्रमाण।।
सिंह से तुच्छ कीड़ा तक ये। जल ही से जात होए।।
चलन्त चौदह करोड़ जीव। जल से ये सारे सम्भव।।
अचल चौदह करोड़ होए। जल से सब जाता होएँ।।
उड़ते चौदह करोड़ भी हैं। जल से जनमते ये हैं।
डूवन्त चौदह करोध जानो। जल से जात हैं ये मानो।
रे मन तुमने जो पूछा। जल की महिमा तू सुना।।
जल ही सब करता है जात। जल ही करता निपात।।
कीट पतंग तरु तृण। जल जात हैं सब सुनो।।
सोने से हीरा तक जो हैं। जल से जात सब हैं।।
चांदी से लोहा तक सारे। जल से जात सब हैं प्यारे।।
खट्टा से तेज सारे स्वाद। जल जात हैं निर्विवाद।।
नीला से लाल रंग सारे। जल से जात हुए सारे।।
छः ऋतुएँ हैं जल से जात। सुनें सुजन दे कर चित्त।।
नाना सि सुमन जल से जानो। नानादि फल जल पूर्ण।।
नानादि वर्ण जल धरे। उसकी माया को जाने संसारे।।
नानादि आहार जो जल। जात करता ये सफल।।
रक्त मांस जो हड्डी चर्म। ये सारे जल का निर्माण।।
जल सूखे तो हंसा उड़े। महाशूय में मिल जाए।।
जल होए तो हंस खेला। मीन होए जल स्थले।।
जल करे मीन की प्रतीक्षा। करता रहता अपेक्षा।।
पोखर सूखे तो ये तीन। चलते ले अपना गुण।।
जल होता तो सब होते। आनन्द जल में विहरते।।
जल यदि यह सोचता क्योंकर। ये होगें मेरे अभ्यन्तर।।

एसा प्रलय जो करता है। कोई जल में रहते नहीं है।।
चारों मेघ करते हैं वर्षाघो। करते प्रलय वे पृथ्वी पर।।
उनचास मूरत लेकर। बहे पवन तीनों पुर।।
प्रचण्ड घोर नाद करके। अग्नि जलसे तीनों पुरी।।
कारुण्य जल तेज घात से। सबका निपात होता है उसीसे।।
इस प्रकार पृथ्वी नाश जाए। सुनो सुजन मन सही रमाए।।
जल ब सोचे मन में। कि पृथ्वी को धरे रहूंगा मैं।।
पृथ्वी रहेगी सदाकाल। टिकें आनन्द सब चिरकाल।।
नहीं तो यश नहीं जानों। जल के ये सारे हैं गुण।।
जल भूत की कता मैने। कुछही तो मैने कही।।
जल के गुण तीनों पुर। न जाने देवा सुर नर।।
जल के साथ जल बन। तब देखो सब को समान।।
तब अमर होगा जानों। जो मैने कहा वह तुम सुनो।।
सुन कर आनन्द मन होई। बोले करो त्राहि त्राहि।।
कहता अरक्षित दास। जल की महिमा अशेष।।
सारे सुजन तुम सुनो अभी। जल से जात होते सभी।।
उन्हें तुम मन में बसाए रखो। तब पृथ्वी पर नहं दुःख।।
जल भूत की महिमा है यही। त्रेषठ पदों में मैने कही।।७३।।

इति
श्री मन चैतन्य संवादे
महीमण्डल गीता
अपजलभूत महिमा कथने नाम द्वितीयोऽध्याय।।

— o —

तृतीय अध्याय (३)
तेज (अग्नी) महिमा वर्णन

मन कहता प्रभु तुम सुनना। फिर मेरा दोष न धरना।।१ ।।
जल की महिमा सुनकर। मैं हुआ चकित विभोर।।
अग्नि भूत की कता कहो। तब तजूंगा माया मोह।।
अग्नि की महिमा सुनूंगा। तब मैं भरम जो तजूंगा।।
नहीं तों भ्रान्ति ही नजाए। आप हैं जब तक न कही।।
हे प्रभु मैं तुम्हारे किङ्कर। आप दोष मेरा ही न धरो।।
मैं तो हूँ सदा अपराधी। आप तरा करुणा वारिधि।।
हे प्रभु माया तुम ना करो। को अतग्न का समाचार।।
मुझ पर जब होगी दया। बताओगे करके सुदया।।
निर्दय मुझ पर जो रोष बही। क्यों भी कोंगे भावग्राही।।
मन से सुनकरयह बात। कहे चैतन्य ला कोमलता।।
तुम आहार मैं तो साथसाथ। विहरते रात दिन साथ साथ।।
मुझ पर दया है तो तुम्हारी। पर तू मूझे छोड़े पारीपारी।।
अब तुम मेरा नाम धरो। तेरे पृथ्वी होगी अज्ञांवर।।
नहीं तो कभी न रहेगी। करता मन त्राहित्राहि।।
तुम्हारा जब नाम होगा। जब वह नाम को चीन्हेंगा।।
नहीं तो पहचानूंगा मैं क्या। तुम्हारी दया हो सोचूंगा।।
हे प्रभू कृपा करो तुम। करता हूँ महं निवेदन।।
अग्नि भूत की कथा कहो। मुझ पर प्रभु हो सदय।।
हे मन अब सुनो तुमही। अग्नि भूत की कथा यही।।

पवन से आग जात होई। सुनो सुजन मन दियी।।
अग्नि तो सर्व भूत में है पूर्ण। जीवे अजीवे समाचरण।।
सभी जीवों के हृदय में हो स्थित। तेजस्वरूप प्रकाशित।।
उनका तेज न लगे तो। कोई न हो पाए जीवित।।
अग्नि के तेज लगे तो ही। आहार सामग्री का पाक होपायी।।
आहार पाक न हो पाए जब। पृथ्वी न रह पाएगी तब।।
अग्नि जो घटघय में होई। उसके भाव न जाने कोई।।
छप्पन करोड़ जीव जितने। अग्नि विहरता है गोपन में।।
अग्नि के साथ होजा है जल। पर गोप्य हो वह अनल।।
पृथ्वी संग अगनि मिलकर। विहरता है सदाकाल।।
अग्नि के होती है धरती। नहीं तो जल में समाती।।
अग्नी के तेज बल का घात। जल सूखता जाता है त्वरित।।
जल ओ ज्यादा ता आग छिपे। धरती नाश जाए कोपे।।
ये दोनों जब होती समान। पृथ्वी का न हो पाता नाशन।।
इनमें जब होए वाद। पृथ्वी का होजा है विनाश।।
ये दोनों पृथ्वी के कारण। जानते नहीं मूर्ख जन।।
हे मन तुमने की जिज्ञासा। बनाऊँ सुनों मिटे तृषा।।
सभी भूतों में अग्नि होकी। करता जीव-अजीवों में विहार।।
छप्पन कोटि जीव सारे। अग्नि हर तन में विहरे।।
चल अचल जलचर। सब में अग्नि का विहार।।
आकाशचारियों के साथ चार। अग्नि का सब में विहार।।
स्वर्ग मंच पाताल भुबन। अग्नि विहरता जानों मन।।

नवखण्ड यह मही जानों। अग्नि व्याप्त है यह मानो।।
चौदह ब्रह्माण्ड सर्वत्र। विहरे अग्नि सर्व गात्र।।
हे मन अग्नि की महिमा। कोई न जनों वह सीमा।।
इतना उतना कहा भी नजाए। बढ़ाओ बढ़ता होता है।।
स्फूलिंग से भी अग्नि का हो विस्तार। सप्तब्रह्माण्ड सकता है दाह कर।।
बढ़ाओ बढ़ता रहता है। कभी समाप्त न होता है।।
छिपो तो छिप जाए कहीं। देख न सकता है कोई।।
किस जगह बह करता है गमन। जान न पाता है रे मन।।
कहां से आता है वह फिर। कहां होता हे वह रहकर।।
कहांवे वहं कहां जाए। जान न सकता हे कोए।।५४।
एसी है अग्नि की महिमा। कोई न पाए उसकी सीमा।।
एकेला अग्नि नाना तेज। प्रकाशे नाना विध ओज।।
अगनि छप्पन करोड़ों में। प्रकाशित नाना रूपों में।।
हे मन पूछा है तुमने। और बताया है मैने।।
अग्नि सहित मिल कर होना। अजर अमर हो जाता।।
हे मन अग्नि भाव रस। प्रणमें अरक्षित दास।।
अहो पूजनगण सुनो। अग्नि सर्वत्र होता मानों।।
इस हेतु देखना समान। डर कहीं भी न रखना।।
अग्निभुत की महिमा सुनकर। तरना संसार सागर।।
तीनों पुरों में अग्नि का गुण। जाने न संसार में मन।
अग्नि की महिमा सुनोरे मन। पैंषठ पदों में सम्पूर्ण।।६५।।

— o —

चतुर्थ अध्याय (४)
मरुत (पवन) महिमा वर्णन

मन कहता हे चैतन्य। अद्भुत है अग्नि का आख्यान।।१ ।।
अग्नि की ऐसी है महिमा। कोई न पाए वह सीमा।।
लगा यह सम्भव नहीं है। मुझे एक और आप सुनाएँ।
पवन भूत कथा कहें। मुछ पर हे कृपा करें।।
कहां से पवन है जात। मुझे बताना प्राणनाथ।।
पवन भूत की महिमा। आपसे सुनूंगा मैं न ?।।
मन के मुख सेवह सुनें। उसकी महिमा को न जाने ?।।
ब्रह्मादि देवासुर नर। कोई न जाने जग भर।।
जिनका रूप वर्ण नहीं। सो जानेगा उन्हें कोई।।
तुने जो पूछा मुझे मन। कहूंगा उनके कुच गुण।।
पवन भूत कथा मुझसे। सावधान हो सुनों मुझसे।।१ १ ।।
जनमा पवन आकाश से। घेरे रहा वह ब्रह्माण्ड से।।
सकल जीव तन में होकर। करता दिनरात वह विहार।।
छप्पन करोड जीव गण। जनमते पवन बल से जानों।।
होता सबके शरीर में। और खेलता बाहर में।।
सभी जीवों का है कर्ता। पर उसे होती नहीं चिन्ता।।
सकल जीव पिता वही। सोचना मन यह तुमही।।
तीन पृथियी अग्नि जल। पवन से होते गतिशील।।
चांद सूरज व ताराएँ। पवन बल से चलपाएँ।।
चार देव ही चारों बादल। पवन से चलपाते सकल।।

इन्द से लेकर सारे देव। पवन से चल पाते सब।।
मेरु समेत सब पर्वत। पवन सब में है स्थित।।
अश्वत्थ से ले सभी वृक्ष। पवन है सबमें प्रत्यक्ष।।
काक से गरुड़ तक खग। पवन सब में प्रत्यक्ष।।
कीड़ा से लेकर जो शेरा। पवन का सब में बसेरा।।
चाण्डाल से ब्रह्म तक जाने। पवन हर कहीं विद्यमाने।।
स्वावी कीट पतंग ही। जंगम सहित वह कही।।
ये चार प्रकार जीव गण। पवन प्रति तन में जानो।।
पितृ और यम गण सभी। पवन बल से हैं सभी।।
देव गण और राक्षस गण। पवन बल से चलें जानों।।
रुद्रगण और नाग गण। पवन बल से हैं चलमान।।
योग्नी और पितृगण। पवन बल से हैं चलमान।
चलते चौदह करोड़ जीव। चलते पवन-प्रभाव।।
जीव और चौदह कोटि। पवन बल दे पाएँ गति।।
चौदह करोड़ है डूबते। पवन आसरे वे चलते।।
निश्चल है चोदह करोड़। पवन हेतु होएँ दृढ़।।
ऐसे हैं करोड़ छप्पन। पव आसरे पाएं प्राण।।
स्वर्ग और मर्त्य पाताल। टिके रहे हैं सदा काल।।३८।
चौदह भूवन चारों ओर। पवन विहरता है चहुं ओर।।
पृथ्वी नभ जल स्थल। पवन सर्वत्र विचल।।
देखो पवन ब्रह्माण्ड में। बहता सब की देहमें।।
जीव-अजीव में वह पवन। घेरे हैं ब्रह्माण्ड को जानो।।
रेणु तक लिए स्थान नहीं। सप्त ब्रह्माण्ड ठान नहीं।।

षड़ऋतु वह षड़ रस। पवन करता प्रकाश।।
नव रत्न है अष्ट धातु। पवन सर्वत्र है हेतु।।
बारह माह और सात बार। पवन हर जगह सार।।
ग्रीष्म बरषा शीत होगर। पवन बहे हर ठौर।।
पन्द्र तिथिया षोलह घड़ि। पवन है हर जगह जड़ी।।
बारह चन्द्र योग व करण। पवन है हर जगह जानो।।
नक्षत्र नवग्रह कहें। पवन सर्वत्र होता है।।
लीला के लिए जितने जात। सर्वत्र पवन संचित।।
विहरता होता है ब्रह्माण्ड। दृश्य न होए कभी पिण्ड।।
शिर पयर हात कान नहीं। नयन नाशा मुख नहीं।।
हृदय कटि कुछ नहीं। अज्योत अवर्ण है वही।।
रूप व चिह्न ही नहीं। ब्रह्माण्ड घेरे हुए वही।।
इसी देह में वह पवन। विहरता होता निशीदिन।।
गति ताल मिला चलता है वही। एक पल विश्राम भी नहीं।।
रोम रोम विहरता होता है वह। इस प्रकार वह है धरती पर।।
रोए हँसे वह खेलता है। सुलाए जगाए चलाए।।
बैठाए खेलाए उड़ाए। डूबाए, खिलाए पीलाए।।
जितनी व्यधियां है धरापर। फैलाए संचालन कर।।
जब यह देह छोड़ जाए। पृथ्वी अथल में धँस जाए।।
पवन विन पाश के जकड़ कर। चलाए यंत्र कूट कर।।
पवन के बल से आतजात। वही करता सब हत।।
उसीके बल से जनमते। छिपे तो मरते।।
विचित्र कूट माया करके। समस्त है वह सहेज के।।
माया से खेलें सभी जीवन। न माने दिगपाल चतुरानन।।

इस से कोई बड़ा नहीं। उसकी माया कही न जायी।।
पसन भूत कथा जितने। मैं बता सकता कितने।।
उसकी कथा है अगोचर। रूप वर्णन होए गोचर।।
इतना उतना कलना की न जाए। ब्रह्माण्ड वह परिपूर्ण होता है।।
हे मन पवन भूत को। बोला कि चिन्तो हो उसको।।
पवन दहित मिले रहो। तो अजर अमर बने रहो।।
पवन है तो देह है भी। हे मन चेतो अब तुमही।।
मन चैतन्य के मुख से सुन। बोले सोचे मन ही मन।।
पवन भूत का चरित। सुन हुआ मैं आचंभित।।
को उसे जान सकता है। जो पाए कृपा तरता है।।
मैंने तो किया है भरोसा। तारे या मारे उसकी इच्छा।।
हे प्रभु माया करो नाश। बोलता अरक्षित दास।।
आहे सुजन गण सुनो। पवन भावमन में मानों।।
उसका भाव जो चिन्तेगा। घोर संसार से तरेगा।।
नहीं तो कभी न तरेगा। ध्याए वह तर ही जाएगा।।
पवन भूत का चिन्तन। करते रहना रे मन।।
पवन भूत के ये गुण। पंचाशी पदों में सम्पूर्ण।।

इति
श्री मन चैतन्य संवादे
महीमण्डलगीता
मरुत भूत महिमा वर्णने नाम चतुर्थोऽध्याय।

— o —

पञ्चम अध्याय (५)
व्योम (आकाश) महिमा वर्णन

मैं तुम्हें हे ब्रह्म चैतन्य। कहूं अब और एक वचन।।१।

पवन भूत की बात कहे। मन से संशय मिटाए।।

अब आकाश भूत कथा। मन से छूटे मेरी व्यथा।।

आकाश कैसे जात होए। कहो मन न भरमाए।।

आकाश महिमा सुनूंगा। तुम से सुन सच मानूंगा।।५।

आकाश कथा अगोचर। बताओ भ्रम होए दूर।।

हे मन आकाश की महिमा। कहो शेष न होए सीमा।

आकाशभूत कथा सही। कलना कर न पाए कोई।।

को कलना करे उसकी संसार में। सुनो बताऊँ कुछ ही तुझ मैं।।

महाशून्य से वह आकाश। जनमे विपुल अशेष।।

महिमा आकाश भूत की। बोलूंगा भावना उनकी।।

आकाश ब्रह्माण्ड व्याप्त है। सब से निर्लिप्त पर सहेजे हुए है।।

आकाश अन्धकार के समान। सब उसमें हैं विद्यमान।।

स्वर्ग मर्त्य पाताल जानों। गर्भ में उसके हैं सुनों।।

चौदह ब्रह्माण्ड सहित। उसीके गर्भ में समस्त।।

सप्त समुद्र स्वर्ग सप्त। उसीके गर्भमें समस्त।।

सप्त द्वीप नव धरती। उसीमें हैं विराजतीं।।

अग्नि पवन कहें जल। उसी में राजते सकल।।

चारों मेघ और तारागण। उसी में समाए समासीन।।
चारों वेद और षड्ऋतु ही। उसी में आतजात होई।।
चन्द्र सूर्य और दोनों द्वीप। जलते रहते हैं देखो।।
खेलने को यह संसार में। सूर्य चन्द्र है भरमते।।
जल पवन अग्नि जानों। भरमते लीला के कारण।।
आकाश गर्भें करें लीला। रखे हैं सभी को टटोली।।
छप्पन करोड जीव जितने। उसी के गर्भ में उतने।।
इन्द्र से लेकर सभी देव। उसी के गर्भ में हैं सर्व।।
मेरु से जितने परवत। उसी के गर्भे में मस्त।।
तरु जितने अश्वत्थ से लेकर। वब हैं उसी के भीतर।।
चाण्डालों से लेकर ब्राह्मण। उसी में समाहित जानो।।
शेर से नगण्य कीड़ा। उसी में हैं आतजात।।
उड़ा बुड़ा, चल, निश्चल। सब नभ में हैं गतिशील।।
आकाश भूत कथा क्या भी कहें। कहो तो खतम न होए।।
आकाश भूत कथा सुनो। उसी से जन्म मृत्यु जानो।।
महाशून्य से भवित। उसीमें पवन जन्मित।।
पवन से अग्नि होए जात। अग्नि से जल उद्भवित।।
जल रो पृथ्व जनमी है। खेल जग से लगायी है।।
जात हुए ये पंचभूत। महाशून्य से हैं संयुत।।
इससे हैं नही भिन्नाभिन्न। यह तुम सुनों है सुमन।।
लीला का लिए हुए भिन्न। खेल रचाए हो अभिन्न।।

खेल खतम हो तो सब जाते। एक ही अंग में चलते।।

महाशून्य में वे मिलका। फिर अलग बिलग होगर।।

हे मन पंचभूत गुण। को नहीं जानत है यह सुनो।।

क्यों कि तुझपर मेरी कृपा है। पूछा तु से मैंने कहा है।।

भिन्न नहीं हैल तेरा मेरा। उत्तर से दिया है मेरा।।

आकाश भूत साथ घूसो नहीं। तब न तु यश पायी।।

इन पंचभूतों के संग रहे। तब यश से बने रहो।।

तब अमर होगा जानों। तेरी पृथ्वी रहेगी सदा दिन।।

धरती बन धरती से साथ।जलबनना जल का साथ।।

अग्नि से साथ अगनी बनकर। रहना बन निरंतर।।

पवन सहित पवन। मिले रहना यह जानो।।

आकाश के साथ तुम ही। मिले रहना मन तू ही।।

इन पंचभूतों से मिलकर। निशदिन होना निरंतर।।

इन के साथ खेले रहना। महाशून्य को याद रखना।।

तब न रहेगा तेरा भय। अजरअमर होगा काय।।

महाशून्य से अपना नाम। हेतु करके सोचो मन।।

संसार में हैं और जितने नाम। भक्तों ने दिये हैं वह जानो।।

हो मन अपना नाम ब्रह्म। और सब हैं मिथ्या जानो।।

ब्रह्म में पृथ्वी आतजात। लीला संसारे करते हैं।।

ब्रह्म से पंचभूत भिन्न। लीला के लिए भिन्नाभिन्न।।

हे मन ब्रह्म ही से सब। जात होते हैं असम्भव।।

मरण से ब्रह्म से मिलित! आत्मा ब्रह्म में लीन होत।।

पंचभूत से एक भी यदि। न होता लीला नहीं होती।।

आकाश न होतो पवन। कहाँ से जात होता पून:।।

पवन यद्यपि न होए। अग्नि उद्भव नहीं होए।।

अग्नि न होतो जल फिर। कहाँ से जात होता फिर।।

जल न होता तो पृथ्वी कहीं। बताओ जात होता नहीं।।

इन पंचभूतों से एक भी। न होता तो जनमता नहीं कभी।।

इस पंचभूतों से संसार। जात होते हैं चराचर।।

इन पंचभूत भिन्न नहीं। एक अंग हैं सुनों तुमही।।

आकाश से पवन होता जात। पवन से अग्नि उद्भावित।।

अग्नि से जल जात जानों। जल से पृथ्वी का निर्माण।।

पृथ्वी से जल होकर जात। जल से अग्नि सम्भवित।।

अग्नि से पवन जन्मित। पवन से आकाश जन्मित।।

ऐसी है पंचभूत कथा। अति अगोचर है व्यवस्था।।

ये पंचभूत सत्य हैं जानों। और बाकी हैं मिथ्या जानों।।

ये पंचभूत लीला करें। ये पंचभूत ही संहारें।।

संहार कर होते शून्य लीन। शून्य से हाता फिर जन्म।।

इस भांति जन्म मृत्यु होई। यह तो न जानते कोई।।

इस तरह पंचभूत कथन। मन लगाए सुनों मन।।

चैतन्य से सुन कर मन। बोला निस्तार हुआ जानों।।
पंचभूतों की कथा सारे। गुप्त ही कही है विस्तारे।।
दया तुम्हारी थी मुझ पर। सो कही बातें अगोचर।।
मैं तो परम पापी ही हूँ। आपकी कृपा चाहता हूँ।।
मैंने भरोसा सदा किया। भय ने कभी न सताया।।
पाप पूण्य का भय नहीं। क्यों कि आस भरोसा मैंने।।
तारों न तारों ये अधम। भरोसा करता परम।।
कहता अरक्षित दास। निज नाम का ब्रह्मम आस।।
आकाश भूत की महिमा। कहो तो न सरती सीमा।।
हो सुजन गण सुनों। भूतों के सारे गुण।।
एक भूत का अध्याय एक। सुनों सुजन कर विवेक।।
इस प्रकार पांचों के पां अध्याय। भूतों की कथा समुदाय।।
पंचभूतों की यही सीमा। को कह सके गुण सीमा।।
आकाश भूत का चरित। चैरानवे पदों में वर्णित।।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता

आकाश भूत महिमा कथमे नाम पंचम अध्याय।

— o —

षष्ठ अध्याय (६)
विभूति महिमा वर्णन

मन चैतन्य के पैर पड़े। शिर पर ले हाथ जोड़े।।१।

आप हैं प्राण गुरु मेरे। मुझसे क्यों भी माया करें।।२।

इसी देह में मैं होकर। न पाया पहचान कर।।३।

हे प्रभु माया न करो वृथा। बोलूं मैं तुमसे एक कथा।।४।

यह देह कैसे जात हुआ। तुम्हरी माया से न जान पाया।।५।

छप्पन करोड़ जीव कैसे। जनमे बताओ है वेसे।।६।

मनमुख से यह सुनी। चैतन्य कहे हेतु वाणी।।७।

महाशून्य से सर्व जात। मैं तुझे बताए हैं सत्य।।८।

मैं ही हूं छपना कोटि जीव। सुख विहार करते अजब।।९।

लीला के हेतु जात हुआ। मैने ही नाना रूप लिया।।१०।

जीव जन्तु हूँ मैं ही नाना। उसी से नाम मेरे नाना।।११।

चण्डाल से ब्रह्मलोक तक। नाम मेरा होता अनेक।।१२।

इन्द्र से देवताओं तक। नाम मेरा होता अनेक।।१३।

मेरु से लेकर सर्वत्र। नाना नाम लिए सत्य।।१४।

अश्वत्थ से सारे वृक्ष। नाना नाम से हैंह प्रत्यक्ष।।१५।

काक से गरुड़ पर्यन्त। नाना नामों से मुझे चिन्तत।।१६।

सिंह से क्षुद्र कीट तक भये। नाना नाम ही मेरा होए।।१७।

चलते चौदह कोटि जीव। भयाहूँ मैं ही सर्व।।१८।

निश्चल चौदह कोटि जीव। भयाहूँ मैं ही सर्व।।१८।
निश्चल चौदह कोटि जानों। मैं ही सकल हुआ जानों।।१९।
चौदह करोड़ मैं ही। सब कैं ही हूँ वही।।२०।
डूबता चौदह करोड़ हुआ। सब रूप धारण किया।।२१।
छप्पन कोटि जीव मैं ही। नाना नाम भी मेरा है ही।।२२।
मैं दशावतार हुआ। सब मेरा ही नाम हुआ।।२३।
मन कहता प्रभु सुनों। नान बताओ है पुनः।।२४।
संसार में नाम तेरे तमाम। बताना प्रभु सभी नाम।।२५।
मन मुख से यह सुन। चैतन्त कहे मृदुवाणी।।२६।
मैं नाना अवतार होकर। बताता नाम ही मातर।।२७।
मैं ही भक्तवृन्द बन। देता हूँ नाम प्रयोजन।।२८।
कुछ ही नाम मैं बताता हूँ। तेरा संशय मिटाता हूँ।।२९।
ब्रह्म विष्णु व महेश्वर। मैं तुम्हें बताया मातर।।३०।
शंखासुर का हूँ मैं ऐरी। मैं हूँ भी कंस का बइरी।।३१।
कलपतरु मैं ही हुआ। भगवान वह नाम हुआ।।३२।
निरंजन है मेरा नाम। नारायण बना पुनः।।३३।
बासुदेव सुत हूँ मैं ही। हरि नाम भी है मेरा ही।।३५।
मैं बनमाली हूँ जानो। कमला विलास प्रमाण।।३६।
पीतवसन मैं ही हुआ। यादव पति भी कहाया।।३७।
अनन्त नाम मेरा हुआ। वैकुण्ठपति मैं कहाया।।३८।
दैत्यारी अच्युत मेरा नाम। मेरा नाम भी है राम।।३९।

मैं नागदर्पणगंजन हुआ। अर्जुन भंजन कहाया।।४०।
केशीसूदन नाम मेरा। कृपासिन्धु है नाम मेरा।।४१।
चाणुर मर्दन मैं पुनः। जगज्जीवन मैं ही जानो।।४२।
सुपर्ण साईं मैं कहाया। शंखचक्र धारी कहलाया।।४३।
मकुन्द विद्याधार हूँ मैं। पुरुषोत्तम कहाया मैं।।४४।
मैं ही हूँ गरुड़ आसन।मैं ही हूँ पतितपावन।।४५।
परात्परनाथ हुआ। परमानन्द भी कहाया।।४६।
परम पुरुष मैं ही हूँ। नृसिंह आदिमूल भी हूँ।।४७।
मैं हुआ आतङ्कभञ्जन। मैं ही हूँ शकटाभञ्जन।।४८।
राघव दीनबन्धु हुआ। गंगाधर मैं कहलाया।।४९।
अखिलपति घनश्याम। नीलाद्रिचन्द्र मेरा नाम।।५०।
मैं ही हूँ वाञ्छानिधि। मैं कहाऊँ करुणानिधि।।५१।
ठाकुरशिरोमणि होकर। आरतत्राण भी होकर।।५२।
रामचन्द्र है मेरा नाम। मेरा अनन्तशयन नाम।।५३।
बैकुण्ठविहारी है नाम मेरा। श्री जगन्नाथ नाम मेरा।।५४।
श्रीराम नाम मेरा हुआ। नीलाद्रीपति मैं कहाया।।५५।
रघुनाथ मैं ही हूँ जानों। नीलाद्रीनाथ मैं हूँ मानों।।५६।
वैकुण्ठपति मै ही हुआ। वैकुण्ठनाथ भी कहाया।।५७।
मैं हूँ केशव रघुपति। मैं कहाया जगतपति।।५८।
नीलाद्री दाशरथी हुआ। गोवर्द्धन भी मैं कहाया।।५९।
माधव जनार्द्दन मैं हूँ। जगतनाथ भी होता हूँ।।६०।

आतंकनाशन मैं ही हूँ। वनमाली भी कहाता हूँ।।६१।
पुण्डरीकाक्ष मेरा नाम। चिन्तामणि है दिव्यनाम।।६२।
अनादि निराकार हुआ। महिमामेरु मैं कहाया।।६३।
जगतजीवन मैं ही हूँ। जगतपति कहाता हूँ।।६४।
भक्तवत्सल मेरा नाम। बासुदेव हूँ वह प्रमाण।।६५।
श्रीकृष्ण दयानिधि हुआ। महाबाहु भी सो कहाया।।६६।
जगतजीवन जानो। श्रीकृष्ण नाम है प्रमाण।।६७।
श्रीहरि श्रीपति मैं हूँ। श्रीकृष्णचन्द्र मैं कहाऊँ।।६८।
शून्य पुरुष मैं हूँ जानो। आतङ्कनाथ मैं प्रमाण।।६९।
आतङ्कमञ्जन मैं हूं। करुणासागर कहाऊँ।।७०।
मैं चक्रधर हूँ जानो। चक्रधारी हूँ यह जानो।।७१।
कृपाजलधि मैं हुआ। मैंने ही गोपाल कहाया।।७२।
विराट दारुब्रह्म मैं हूँ। मैं ही विश्वेश्वर हूँ।।७३।
परम राधाकान्त जानों। दयासागर मैं प्रमाण।।७४।
ईश्वर आदिकन्द हुआ। परमब्रह्म मैं कहाया।।७५।
गिरिधारी मैंही हूँ जानो। नित्यानन्त हूँ यह मानो।।७६।
मैं सदानन्द वृन्दावन। द्वारकानाथ बना जानो।।७७।
मथुरानाथ मैं हुआ। मैं गङ्गाधर भी कहाया।।७८।
लक्ष्मीवल्लभ मैं हुआ। मैं श्यामाबन्धु भी कहाया।।७९।
मैं पीतांवर चैतन्य। विश्वश्वर कहाया जानो।।८०।
घनश्याम मैं ही हुआ। गोविन्दचन्द्र मैं कहाया।।८१।

मधूसूदन मैं हूँ जानो। गोवर्द्धन भी हुआ मानो।।८२।

कुंजविहारी मैं ही हूँ। सारङ्गधर मैं ही हूँ।।८३।

हंस पुरुष मैं ही हुआ। मैं वेणुधर कहाया।।८४।

मुरलाधर मैं ही हूं। नन्दसुत मैं कहाता हूँ।।८५।

यशोदा सुत मैं ही हुआ। नन्दकाह्ना भी मैं कहाया।।८६।

हृषीकेश है मेरा नाम। अर्जुनभञ्जन मैं जानो।।८७।

मैं मधुरिपु रावणारि। मदन मोहन मुरारी।।८८।

कलाश्रीमुख मेरा नाम। चकाडोला भी हुआ पुनः।।८९।

साकेत पति मैं ही हुआ। श्रीराम नाम मैं कहाया।।९०।

शरण पञ्जर मैं हूँ। ब्रह्माण्डनाथ कहाता हूँ। ९१।

पद्मनाभ है मेरा नाम। हूँ वेणुधर अभिराम।।९२।

देवकी सुत मेरा नाम। दामोदर हूँ यह प्रमाण।।९३।

मैं दीक्षागुरु अवधूत। हूँ चक्रपाणि सत्य।।९४।

शरणसोदर मैं हुआ। दयासागर जो कहाया।।९५।

देव नारायण मैं हूँ। ब्रह्मराशि मैं कहाता हूँ।।९६।

तीनों भुवन पति हुआ। श्याम सुन्दर कहाया।।९७।

अर्यामा ब्रजबन्धु हुआ। मदनसुन्दर कहलाया।।९७।

मैं राधापति विद्याधर। रुक्मणीपति मनोहर।।९९।

मैं सत्यभामापति हुआ। जलधिपीत कहलाया।।१००।

मैं ही जगतनाथ जानो। गोपीवल्लभ मुझे मानो।।१०१।

इन्द्राधिपति मेरा नाम। आकाशपति बना जानो।।१०२।

क्षीरोद सुत मैं ही हुआ। वासुकीपति कहलाया।।१ ० ३।
बालमकुन्द मैं ही जानो। ब्रह्म विवर्त्तन ब्राह्मण।।१ ० ४।
बालकृष्ण भी मैं ही हुआ। कालीमर्द्दन मैं हुआ।।१ ० ५।
कोदण्डधारी मैं ही भया। रघुनन्दन कहलाया।।१ ० ६।
कौशल्यानन्दन मैं हूं। यमुना विहारी मैं हूँ।।१ ० ७।
मैं महाप्रभु शम्भुनाथ। अचिन्तमणि मैं ही सत्य।।१ ० ८।
मैं ब्रजसुन्दर हुआ। पद्मलोचन कहलाया।।१ ० ९।
जगमोहन मेरा नाम। गरुड़ध्वज बना पुनः।।१ १ ०।
मैं ही हू मदनमोहन। मैं ही हूँ विश्वकेशन।।१ १ १।
मैं मनोहर देव ईश। सुन सुमन होओ तोष।।१ १ २।
श्रीकर उपइन्द्र ही मैं। बरज नाम मेरा भी है।।१ १ ३।
चतुर्भुज मैं ही हूँ जानो। कञ्जलोचन मुझे मानो।।१ १ ४।
त्रिविक्रम जो मैं ही हुआ। रामशवरी नाम भया।।१ १ ५।
मैं हुआ श्री नन्दनन्दन। कहाया मैं ही बार दिन।।१ १ ६।
कृपानिधान मेरा नाम। मैं बना श्रीरमारमण।।१ १ ७।
अनाथवन्धु नाम मोर। श्रीवास हरि मैं श्रीकर।।१ १ ८।
कृपालु नाम मेरा हुआ। कदंवधारी कहलाया।।१ १ ९।
करुणावारिधि मैं हुआ। केशीसूदन कहलाया।।१ २ ०।
लक्ष्मणानुज मैं ही हुआ। मैं ही लक्ष्मी कहलाया।।१ २ १।
अइरीधर मैं ही हूँ। गोवर्द्धनधारी कहलाऊँ।।१ २ २।
आनन्द श्रीगर्भ हूँ जानो। कारूण्य कंवुपाणि मानो।।१ २ ३।

किशोरक्षमासिन्दु मैं हूँ। जगत्सोदर कहलाऊँ।।१२४।
शरण सोदर मैं हुआ। गौरांग फिर मैं ही भया।।१२५।
अलाख इष्टदाता मैं ही। नवघन यह नाम बही।।१२६।
कालपुरुष मैं ही हुआ। गर्वगञ्जन कहलाया।।१२७।
कदंवविहारी हूँ मैं ही। शिरिधर यह नाम साही।।१२८।
जगतवल्लभ यह जानो। नन्दिघोषविहारी यह जानो।।१२९।
मैं महेन्द्रपति भया। महेन्द्र नाम मेरा हुआ।।१३०।
पातालपति मैं ही जानो। मैं कल्पदृम हूँ मानो।।१३१।
पद्मलोचन मैं कहाया। अभयचरण मैं भया।।१३२।
अभय पद्मपाद जानो। बलीयार भुज हूँ मानो।।१३३।
गुरुशिष्य भी मैं हुआ। मैं तुम्हे समझाते कहा।।१३४।
मैंने ही अपना नाम दिया। मैंने ही विद्यार्जन किया।।१३५।
तु ने जो पूछा अब मुझे। समझाए कुछ कहा है तुझे।।१३६।
कहते अरक्षित दास। ऐसे ही ये नाम प्रकाश।।१३७।
सुजन जन सब सुनें। अपना नाम न भी जानें।।१३८।

इति
श्री मन चैतन्य संवादे
मही मण्डल गीता कथने नामषष्ठऽध्याय

— o —

सप्तम अध्याय (७)
देहराम विभूति कथन

मन चैतन्य के निरेखा मुक। कहा निस्तार हुआ मेरा श्रीमुख।।१।
इस दह की सारी बात। खुल कपर कहें मेरे अग्रत।।२।
कहे चैतन्य सुनों मन। तुम्हें बताऊँ वह कथन।।३।
मन चैतन्य मैं ही हुआ। और जीव परम कहाया।।४।
नख मुख नासिका बनकर। मैं अस्थि चर्म होकर।।५।
रक्त मांस भी मैंही जानो। मैं षोलह डंबरु प्रमाण।।६।
पांच मन प्रकृति मैं ही। पच्चीस परकृति भयी।।७।
तिगुण त्रिकूट मैं हुआ। फिर षड़गुण भया।।८।
सातसौ बाहत्तर नाड़ियाँ। मुझे में होकर जड़िया।।९।
मै चौषठ रोग भया। मैं नाना व्याधि बन गया।।१०।
एकादश इन्द्रिय मैं हूँ। मैं दश दुआर मनाहूँ।।११।
पंचास पंखुड़ियां जानों। षडचक्र हूँ यह प्रमाण।।१२।
बनाहूँ मैं मूल कमल। कहाताहूँ मैं षड़ दल।।१३।
मैं सत्व रज तम जानों। क्रोध लोभ मैं हू हूँ पूनः।।१४।
कुट कपट हूँ मैं ही। मैं दया शान्ति हूँ ही।।१५।
मैं प्रेम आस्वादन जानों। अच्छा बुरा मैं ही हूँ जानो।।१६।

कुबुद्धि सुबुद्धि हूँ मैं ही। कृपण अहंकार हूँ ही।।१७।
आहार निद्रा मैं ही बना। मैथुनवायु मैं ही बना।।१८।
मैं हूठ गुरुजनों में विश्वास। कहाए पिमेल उदास।।२१।
हानिलाभ हूँ मैं ही जानों। अब मैं कहता हूँ पुनः।।२०।
मैं बना स्त्री और पुरुष। बन योनि लिंग मैं विशेष।।२१।
स्त्री रूप है मेरा जानो। मैं मुझे मोहताहूँ पुनः।।२२।
माता पिता बनाहूँ मैं ही। जात करता सर्वदेही ।।२३।
पति पतनी मैं ही हूँ। पुत्र कन्या भी मैं ही हूँ।।२४।
भतीजा मामा मैं ही हुआ। माइँ भांजा भी मैं ही हूआ।।२५।
दादा नाति बना हूँ मैं ही। दामाद फूफा मैं हूँ ही।।२६।
भाई बहू, चाचा हूँ मैं ही। जेठ शाली मैं बनी हुई।।२७।
नानी मामी मैं ही हुआ। शाश श्वशुर कहलाया।।२८।
अष्टपाटक जात मैं ही। लीला के हेतु भिन्न वे ही।।२९।
अंधा बहरा मैं ही हुआ। गुंगा काना मैं कलाया।।३०।
कुवड़ा लंगड़ा मैं ही जानो। भोगी रोगी हूँ यह प्रमाण।।३१।
राजा प्रजा भी मैं ही हुआ। सेवक सामन्त कहाया।।३२।
ब्रह्मण अच्छव मैं ही जानो। सभी जातियाँ मैं ही मानो।।३३।
तुम इसे अनुभव करो। मेरी माया से पा जाएगा पार।।३४।
तु मुझे पहचान न पाए। यह देह भलेही छूट जाए।।३५।
,क रूप को तोड़ देगा। अरूप होकर रहेगा।।३६।

तु तुझे पहचाने नहीं। यह देह ही रहे नहीं।।३७।

मेरे ही खेल के निमित्त। माया दिखाते रहते नित्य।।३८।

मैं तुझे बेचता खरीदता। मैं तुझे मारता काटता।।३९।

मैं तुझे खिलाता पीलाता। तब तो तुझे शान्ति देता।।४०।

क्रोध हिंसा जो मैंने किया। अपने से ही छल किया।।४१।

अच्छा बुरा वह मैंहूँ जाने। हंसि ठिठौली करूं पुनः।।४२।

मैं ही मुझसे रति करूं। रजवीर्य का रूप धरूं।।४३।

काल अकाल मैं ही हुआ। धर्म अधर्म कहलाया।।४४।

मूँ मुझे खाए शान्त होई। मैं ही अपने से भय पायी।।४५।

मैं अपने ही से डरकर। रखता मुझे बांध कर।।४६।

मैं स्वयं को पालता मारता। स्वयं का आसरा करता।।४७।

मैं हंसता रोता जानो। चिन्ता अचिन्ता करता पुनः।।४८।

दु:ख अदु:ख मैं ही हुआ। सुख असुख मैं कहाया।।४९।

भय निर्भय महं ही हुआ। दया-दिर्दया कहलाया।।५०।

ज्ञान अज्ञान मैं ही हुआ। साधु असाधु कहलाया।।५१।

हेतु अहेतु मैं ही जानों। योगी अयोगी मुझे जानों।।५२।

विकार विकार मैंही। पाप पुण्य भी मैं हूं ही।।५३।

तीर्थ बाहर व्रत हुआ। उपास पर्व कहलाया।।५४।

दानी अदानी मैं ही जानों। कर्म अकर्म हूं मैं पुनः।।५५।

बाद विद्या जो मैं हूं ही। विश्वासघाती तो मैं हूं ही।।५६।

सर्वसमर्थ मैं ही हुआ। शुद्ध अशुद्ध कहलाया।।५७।

तर्क अतर्क मैं ही जानो। सुर असुर मुझे मानो।।५८।

बलवन्त तो मैं ही हुआ। निर्वलवन्त भी कहाया।।५९।

प्रतापी साहसी मैं जानों। अब कहूंगा तुम सुनो।।६०।

भोगी रोगी तो मैं ही जानो। जन्म मरण मैं हूं जानो।।६१।

मैं जीता मरता हूँ। क्षय अक्षय मैं होताहूँ।।६२।

जीव अजीव मैं ही हुआ। रूप अरूप कहलाया।।६३।

जपा अजपा मैं ही जानो। मैं हर्त्ताकर्त्ता तुम सुनो।।६४।

थलअथल मैं ही हुआ। कायाअकाया कहलाया।।६५।

परात्पर हूँ मैं ही जानो। तुम यह हेतु करे मानो।।६७।

इस पर खेलता हूँ जैसे। वह अब कहूँगा तुमसे।।६८।

कहते अरक्षित दास। प्रभु की माया है अशेष।।६९।

सुनो सुजन जन कही। उस माया न जाने कोई।।७०।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम सप्तमोऽध्याय।

— o —

अष्टम अध्याय (८)

आत्माराम रूप विभूति कथन

चैतन्य कहे मन सुन मेरा। तुम हो अर्द्धअंग मेरा।।१।
छप्पन कोटि जीव हुआ। तुझे ले विहरता रहा।।२।
मैं क्यों कि नाना रूप धरी। अत: मैं कई माया करी।।३।
माया को तुमने सत्य माना। अत: तू मुझे न पहचाना।।४।
मैं अब बताऊँगा सुनों। जिन रूपों में हुए गढ़न।।५।
नाना तरू तो मैं ही हुआ। नाना पुष्पों के नाम बहा।।६।
सभी फल भी मैं ही बना। बनकर मैं मूल नाना।।७।
नाना वस्त्र तो मअं ही जानो। नाना जगह जो मैं हू सुनो।।८।
नाना मन्त्र यन्त्र जो महैं हूं। नाना औषधी कहलाऊं।।९।
नाना भजन जो मैं ही हुआ। नाना उपाय कहलाया।।१०।
नाना अमृत मैं ही बना। मैं ही जन्तु नाना।।११।
नाना मछलियां मेरे साधे। बने केंचुए और धोंधे।।१२।
कीड़े मकोड़े मैं ही नाना। जन्तु खग कहलाया नाना।।१३।
कई मक्खी मच्छर बनपड़ा बाध भालू कर रूप धरा।।१४।
हाथी घोड़ा हुआ। गाय भैंष हुआ।।१५।
बराह मृग व मयूर। विड़ाल मूषिक कुकर।।१६।
आदि जीव जन्तु जितने। सबका बीचारों मनमें।।१७।
मैं ही नाना रूप धरा। गंध दुर्गन्ध तन मेरा।।१८।
विष्ठा कृमी मैं ही जानो। वास अवास हुआ पुन:।।१९।
नाना पदार्थ मैं ही हुआ। नाना रंग भी कहलाया।।२०।

खट्टा पीता भी मैं ही हुआ। मधुर कषैला भी हुआ।२१।
क्षार तेज भी मुझे जानो। नाना रूपों में हो निर्माण।।२२।
घर द्वार भी मैंने किया। सुख विहार वहां किया।।२३।
नवरत्न मैं ही हूं जानों। अष्ट धातु हूँ मुझे मानो।।२४।
मैं ही अपना आसरा होता। विविध रूपों में खेलता।।२६।
मैं जितने रूप धरूं अनन्त। को नहीं सके उनका अन्त।।२७।
कीट पतंग तरू तृण। मैं ही हूँ सर्वज्ञान।।२८।
मेरु से लेकर हर पर्वत मैं ही हूँ जानो सत्य।।२९।
काक से गरूड़ पर्यन्त। मैं ही बनाहूं समस्त।।३०।
चाण्डाल से ब्रह्मलोक तक। मैं कहूँ भयाहूँ प्रत्यक्ष।।३१।
इन्द से लेकर सभी देव। जानों मैं ही हूँ सर्व।।३२।
अश्वत्थ से ले सभी वृक्ष। मैं हूँ मानों यह प्रत्यक्ष।।३३।
सिंह से धून कीड़ा तक। मैं ही भयाहूँ प्रत्येक।।३४।
चल अचल मैं ही हुआ। उड़ता डूबता भी भया।।३५।
उप्पन कोटि जीव मैं ही। मुझ विन और कोई नहीं।।३६।
सब को एक ही मानना। किसी से कभी न डरना।।३७।
सब में माने एकत्व तो। रहा युगयुग शोभावन्त।।३८।
तु रहे अक्षय अमर। तुम्हें बातेक करूं में गोचर।।३९।
सर्व देव जो मैं ही जानो। खोले कहूँ मैं गोपन।।४०।
तेतीस कोटी मैं देव देवी। इन्द्र चन्द्रमा तथा रवि।।४१।
कुवेर यम मैं नैरूत। नाम है मेरा ऐरावत।।४२।
वरुण वृहस्पति हुआ। दसविशापाल कहलाया।।४३।
बहता जल मैं पवन। मैं नवग्रह हूँ तुम जानो।।४४।

मैं ही हूं ग्यारह करण। बार चन्द्र हूँ यह जानो।।४५।
नक्षत्र सत्ताईस भया। अप्सरागण कहलाया।।४६।
दुन्दुभी किन्नर कहायी। चारण सुसिद्ध हूँ मैं ही।।४७।
द्वादश विश्वेदेवा जानों। रुद्रगण हूँ यह प्रमाण।।४८।
राक्षसगण मैं ही हुआ। पितृगण मैं कहलाया।।४९।
मैं हूँ मानव गण जानो। गोपिकावृन्द मुझे मानो।।५०।
नागगण मैं ही भया। चराचर मैं कहलाया।।५१।
मंगला दुर्गा मैं ही हुआ। काली कपाली कहलाया।।५२।
चण्डी चामण्डा मैं ही हुआ। भूत प्रेत भी कहलाया।।५३।
डायन डाकिनी मैं ही हूँ। देवादेवी मैं कहलाऊँ।।५४।
वाद्य मृदंग मुझे मानों। ढोल निशान मुझे जानो।।५५।
वीणा नहवत मैं ही हुआ। तरी नगाड़ा मैं ही भया।।५६।
दुन्दुभि वाद्य मैं ही हुआ। नाना शबद कहलाया।।५७।
उन करोड़ वाद्य मैं ही हूँ। नृत्य गीत नाद कहलाऊँ।।५८।
जिसका शबद है जैसा। मैं वहाँ रहता हमेशा।।५९।
मैं ही सर्वत्र किया वास। ध्वनि के रूप में निवास।।६०।
दारु शिला रूप भी हुआ। नाना प्रतिमा कहलाया।।९१।
जो मेरी करे आराधना। मैं करुं कल्याण कामना।।६२।
इसे मन में याद करो। सब मेरी देह में निहारो।।६३।
कहता अरक्षित दास। हे प्रभु माया करो नाश।।६४।

इति
श्री मन चैतन्य संवादे
महीमण्डल गीता कथने नाम अष्टमोऽध्याय।

— ० —

नवम अध्याय (९)
चैतन्य भिन्न रूप कथन

चैतन्य के पदवन्दन करत। कहे मन सब मेरे अग्रत।।१।
पृथ्वी में तेरे रूप सारे। कहो खोल कर आगे मेरे।।२।
मैं तेरे चरण शरण। उद्धार करो भगवान ।।३।
इस देहको संभाले रखना। अपनी माया से निवारना।।४।
कहे चैतन्य सुनों मन। सभी रूपों का करो ज्ञान।।५।
मैं भया समग्र संसार। उसमें करके विहार।।६।
मैं हुं पृथ्वी तुम जानो। माटी मैं बना यह मानो।।७।
बालू कंकड़ मैं ही बना। उसीसे पत्थर भी बना।।८।
ढ़ेर गड्डा भी मैं ही हुआ। मैं नदी नाला कहलाया।।९।
कूँआ पोखर भीमैं ही हुआ। लता वनस्त माना गया।।१०।
चंचल निश्चल भी मैं ही ।उड़ता डूबता भी मैं ही।।११।
तीनों भुवन मैं ही भया। सप्तसागर कहलाया।।१२।
नवखण्ड पृथ्वी मैं हुआ। सप्तद्वीप भी मैं ही भया।।१३।
नवद्वीप हूँ यह जानो। चारों मठ हू यह प्रमाण।।१४।
चारों मेघ मैं ही हुआ। चारों वट मैं कहलाया।।१५।
मैं अष्टकुला नाग हुआ। अष्टगिरि भी मैं ही भया।।१६।
मैं वासुकी नाग हूँ महान। पृथ्वी को करता धारणा।।१७।
मैं हूं बन पर्वत अरू। मैं ही हूं तृण तरु।।१८।
मैं हूं जल और पाषाण। मैं हूं पवन अगन।।१९।

नक्षत्र रोमावली मैं ही। नवग्रह भी हूँ मैं ही।।२०।

चारों द्वार भी मैं ही हुआ। चारों सम्प्रदाय कहाया।।२१।

अनन्त कोटि साधू मैं ही। बावन द्वार हूं भी मैं ही।।२२।

चोरासी सिद्ध मैं ही हुआ। नवनाथ मैं कहलाया।।२३।

चौरासी काडि गंगा मैं ही। चोरासी यंत्र भी हूँ मैं ही।।२४।

चारों धाम ही मैं ही हुआ। मेदमेदा मैं कहलाया।।२५।

मैं बना वेद व पुराण। मैं गीता अर्थ बना पुनः।।२६।

मैं अष्टादस ग्रंथ पुराण। बारह स्कन्ध मैं निदान।।२७।

मैं सात काण्ड रामायण। करना तुम उसे श्रवण।।२८।

मैं षड्खण्ड हरिवंश। मैं वेदविद्या हूँ ज्योतिष।।२९।

पांच भीष्म केशरी। मैंने ही सभी रूप धरी।।३०।

नव नाटक मैं ही हुआ। मैं वाद्य विद्या कहलाया।।३१।

सूत्र शास्त्र सब मुझे जानो। जाप समर्पण मुझे मानो।।३२।

भक्ति प्रेम तो मैं ही हूँ। नवधा भक्ति कहलाऊं।।३३।

बारह महीना मैं ही हुआ। सातों बार मैं कहलाया।।३४।

दिवस रात्री मुझे मानो। कहा जो मैंने सत्य मानो।।३५।

षोलह घड़ियां मैं ही हूँ। धूप वर्षा मैं कहलाऊं।।३६।

शीत ग्रीषम मुझे मानों। मेघ गरजना मुझे जानो।।३८।

भूलोक ब्रह्मलोक पुनः। सुरलोक हूं मुझे मानो।।३९।

जनलोक जो मैं ही हुआ। तपलोक मैं कहलाया।।४०।

मैं हुआ हूँ आकाश शून्य। और बना हूँ महाशून्य।।४१।

चौवन अक्षर मुझे जाने। चौदह ब्रह्माण्ड मुझे मानो।।४२।
अनक्षर जो मैं ही हुआ। एकाक्षर भी कहलाया।।४३।
अक्षर अनक्षर मैं ही हूं। नाम अनाम कहलाऊँ।।४४।
स्थावर जंगम मैं भया। मैं कीट पतङ्ग जो हुआ।।४५।
चलते चौदह कोटि मैं ही। सुनो सुमन कहूं वही।।४६।
निश्चल चौदह करोड़ बना। मैं तुझे गोपन बखाना।।४७।
उड़ते चौदह करोड़ हुआ। सबकुछ जो मैं ही हुआ।।४८।
डूबन्त चौदह करोड़ मैं ही। मैं विहरूं सुख से ही।।४९।
बन छप्पन कोटी जीव मैं ही। नानान लीला करुं मैं ही।।५०।
मैं ही जग में परिपूर्ण। मुझ विन नहीं गति अन्य।।५१।
संसार के सारे विधि मत। पिपण्ड में हैं वे समस्त।।५२।
पिण्ड ब्रह्माण्ड मैं ही हुआ। तुझे गुपत बतलाया।।५३।
तुम अब सुनों मेरा वचन। सबको देखना समाक।।५४।
छप्पन कोटि जीव में हूँ। तू फिर डरता है क्यों।।५५।
अब में कहता हूँ तुम्हें। डर न धरना मनमें।।५६।
संसार देखो एकाकार। तब होगा अजर अमर।।५७।
मन चैतन्य मुख ताके साईं। कहे अब जाना मैं गुसाईं।।५८।
तुम्हारी दया अब होए। मुझसे माया दूर होए।।५९।
ये सप्तविंश ब्रह्माण्ड में। अन्य न कोई है सामने।।६०।
क्यों तुमने मुझसे माया की। पहले मुझे नहीं कही।।६१।
कहे चैतन्य मन तुम्ही। मेरा है खेल रस यही।।६२।

मोह माया में फंसा नहीं। और तुम्हें गुप्त ही में कही।।६३।

अरूप में मैं ब्रह्म हूँ ही। रूप में जीवरूप वही।।६४।

अब मैं तुम्हे कहदूंगा। संशय मोचन करूंगा।।६५।

रखो समानता मनमें। तुम्हें रखूंगा अमर मैं।।६६।

मेरा मन समान होता है। अतः तुम्हें मैं बताया है।।६७।

समान देखो तो रहोगे। नहीं तो अवश्य मरोगे।।६८।

चलोगे छोड़ कर शरीर। पहचान न पाएगा अगर।।६९।

इस देह को तज जाना। मुझमें जा लीन होना।।७०।

तेरी मेरी देह में एकत्व। भिन्न नहीं है कदाचित्।।७१।

मैं तुम्हें जीव आत्मा किया। जग में विहार भी किया।।७२।

चैतन्य कह सुनो मन। अब तु देखेगा समान।।७३।

कहते अरक्षित दास। महीमण्डल गीता रस।।७४।

यह गीता साध जो पाएगा। जगमें अमर होएगा।।७५।

इस विन नहीं अन्य गति। सुनो सुमन दिये मति।।७६।

वको तो इसे साध्य करो। तो होगा अजर अमर।।७७।

सुजन न धरना दोष। मैं तुम्हारा हूँ दासानादास।।७८।

करूं मैं चरण वन्दना। दोष ही क्षमा करदेना!!

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम नवमोऽध्याय।

— o —

दशम अध्याय (१०)
भक्तियोग साधने प्रार्थना

चैतन्य के मुख ताके मन। जयकार करे करता है गान।।१।

नमो नमस्ते योगेश्वर। मेरा अपराध क्षमाकरो।।२।

नमो नमस्ते देवस्वामी। नमोन नमस्ते अन्तर्यामी।।३।

नमों नमस्ते भक्तबन्धु। नमो नमस्ते क्षमासिन्धु।।४।

नमो नमस्ते दीनबन्धु। नमो नमस्ते क्षमासिन्धु।।५।

नमो नमस्ते हे जीवन। नमो नमस्ते है परम।।६।

नमो नमस्ता नारायण। नमो नमस्ते भगवान।।७।

नमो नमस्ते परंब्रह्म। महाशून्य में तव आश्रम।।८।

नमो नमस्ते दइतारी। नमो नमस्ते देव हरि।।९।

नमो नमस्ते है राघव। नमो नमस्ते है माधव।।१०।

नमो नमस्ते दाशरथि। नमो नमस्ते जीवपति।।११।

नमो नमस्ते अर्त्ताकर्त्ता। नमो नमस्ते मोक्षदाता।।१२।

नमो नमस्ते हे मकुन्द। नमो नमस्ते रामचन्द्र।।१३।

नमो नमस्ते हे गोविन्द। नमो नमस्ते कृष्णचन्द्र।।१४।

नमो नमस्ते विष्णुहर। नमो नमस्ते देववर।।१५।

नमो नमस्ते गोवर्द्धन। नमो नमस्ते घनश्याम।।१६।

नमो नमस्ते दामोदर। नमो नमस्ते पीताम्वर।।१७।

नमो नमस्ते चिन्तमणि। नमो नमस्ते चक्रपाणि।।१८।

नमो नमस्ते निरञ्जन। नमो नमस्ते कल्पद्रुम।।१९।

नमो नमस्ते दीक्षागुरु। नमो नमस्ते कल्पतरु।।२०।

नमो नमस्ते वाञ्ञानिधि। मेरी वाञ्छा को दो प्रसिद्धि।।२१।
महाप्रभु है महाभागे। यह देह क्यों कर रखेंगे ?।।२२।
यह देह यद्यपि रखना। भगतियोग मुझे देना।।२३।
अन्य मैं मेरा कार्य नहीं। सत्य मैं कहा हूँ गुसाई।।२४।
भकति योग मैं साधूंगा। अरण्यों में मैं विहरूंगा।।२५।
होऊंगा वन पर्वत में। भकतियोग साधूंगा मैं।।२६।
यही मनमें करके विचार। घर से हुआ मैं बाहर।।२७।
सोच मेरी न रखी तुमही। तो मेरा कोई दोष नहीं।।२८।
तेरी दुदया यदि होती। आत्मा क्यों गां भटकती ?।।२९।
तुमह निर्दय मुझ पर हुए। साधना कर नहीं पाए यह।।३०।
दया होगी यद्यपि मुझपर। साध सकूंगा मैं किंचित्कर।।३१।
प्रभु मेरा दोष न धरो। शरण मैं अबतो विचारो।।३२।
तेरी माया में भ्रमित। भक्ति न साधूं सब वाधित।।३३।
विनति मेरी प्रभु सुनो। उद्धार करो भगवान।।३४।
खण्डगिरि में जाकर टिका। भक्ति साधना कर न सका।।३५।
खण्डगिरि से मुझे लेले। भक्ति साधना करवा ही लो।।३६।
अरण्य पर्वत भटकाओ। मन में शान्ति बरसाओ।।३७।
निद्रा मैथुन आहार। ये सारे हो जाएं बाहर।।३८।
क्षुधा तृष्णा भी होए दूर। करो सुदया अकूपार।।३९।
शीत वरषा व ग्रीषम। जैसे मैं सहलूं भगवान।।४०।
भय तज निर्भय होऊंगा। तब मैं तुम को चीह्नूंगा।।४१।
तुम्हरी सुदया मुझपर हो। ये सारे स्वतः दूर हो।।४२।
सुदया होने पर मुझपर। शीघ्र ये वारे होंगे दूर।।४३।

चैतन्य कहे मन सुनो। समदर्शी तुम तत्काल बनो।।४४।
समान देखो सबको ही। रह नहीं पाएंगे ये कोई।।४५।
यह मेरी माया है मगर। तू डर रहा है क्यों कर।।४६।
अब तु सुन यह वचन। सब को देख तु समान।।४७।
समस्त समान देखता। भय तू कहीं न रखना।।४८।
ग्रीष्म बरषा शीत मैं हूँ। अब तू डरता है क्यों।।४९।
चौषठ रोग मैं हूँ जानों। अब न डरना तू पुनः।।५०।
मुझे जो पहचान न पाता। मेरी माया से वह मरता।।५१।
भगति योग जो साधता। मेरी माया से उबर जाता।।५२।
भगतियो साध्य करो। माया से हो जाएगा पार।।५३।
भगति योग साधे तो। युगयुगान्तर होगा मुक्त।।५४।
अक्षय अमर तू होगा। जब तू यह योग साधेगा।।५५।
योग भी हुआ हूँ मैं नाना। मेरा है अनेक भजना।।५६।
नानान मंत्र यंत्र मैं हूँ। नाना तीर्थ भी कहाता हूँ।।५७।
नाना औषधि मैं ही हुआ। तुझे मैं समझाते कहा।।५८।
इन सबको न मानना सत्य। हैं मेरी माया असत्य।।५९।
ये सब मेरी माया योग। सारतत्व है भक्तियोग।।६०।
नाम मेरा मन में दृढ़ कर। सब देखना एकाकार।।६१।
कहते अरक्षित दास। महीमण्डल गीता रस।।६२।
सुजन जन कहता हूँ। खण्डगिरि में भगरमित हूँ।।६३।

इति
श्री मन चैतन्य संवादे
महीमण्डल गीता कथने नाम दशमोऽध्याय

— ० —

एकादश अध्याय (११)
खण्डगिरि त्याग

है चैतन्य आप सुने। खण्डगिरि में रूका मैंने।।१।
अन्याह काफी मैंने किया। सेवा तुम्हारी छोड़ दिया।।२।
सोचा एकान्त प्राप्त हो गा। मनको सन्तोष मिलेगा।।३।
मन को मेरा हर लिया। माया मोह से नाश किया।।४।
माया में भरमा मैं तेरी। गुफाए बहोत बुहारी।।५।
तरु मैं काटे हैं अनेक। बना अप्राधी अविवेक।।६।
पाषाण अनेक कटाया। लोगों को मैंने कष्ट दिया।।७।
निर्द्दोष जीवों को मैं मारा। तेरी माया में अविचारा।।८।
तेरी ही माया में रहता। संग तुम्हारा न तजता।।९।
अब करो हे दया किंचित। मेरा कुछ नहीं है आयत्त।।१०।
तुम्हारी दया होगी यदि। छोडूंगा खण्डगिरि तभी।।११।
कदापि तज न पाऊंगा। अपराधी बन मैं मरुंगा।।१२।
झूठ सच में सना रहा। क्षुधा ज्वाला ने कष्ट दिया।।१३।
ग्रीषम वरषा शीत मैंने। सह न पाया कभी भी मैं।।१४।
क्षुधा तृषा व निद्रा भय। चौषठ व्याधियों की देह।।१५।
सब ने षड्यन्त्र किया। भक्ति तुम्हारी छुड़ादिया।।१६।
इनके सङ्ग वश हुआ। सेवा तुम्हारी कर न पाया।।१७।
तुमने की माया मुझसे अपार। पाप-पूण्य में जकड़े मार।।१८।
मेरा तो कोई दोष नहीं। निर्दय भये तो तुमही।।१९।
माया की न होती प्रवलता। तो मैं क्यों गांव में टिकता।।२०।

तुमही करते फेशला सारे। सभी प्रकृति बने अपारे।।२१।
तुम विन इस देह में कोई। कोई मुझे बारेक न कही।।२२।
जल पवन आग हुए। रक्त मांस व हाड़ किये।।२३।
ये तीन रिपु सर्व जात। ये तीनों सब करें हत।।२४।
ये तीनों जीते मरते हैं। तीन भुवन भी बने हैं।।२५।
इन तीनों से को मरता। यह कोई न जानता।।२६।
तू दया करता है जिसे। जन्म-मृत्यु से तारे उसे।।२७।
नहीं तो अन्य गति नहीं। पाप पुण्य में मरे वही।।२८।
पाप पुण्य को एक कियो। यह पिण्ष भले नाश न हो।।२९।
पाप पुण्य में आतयात। यह पिण्ड कब न होए हत।।३०।
पाप में इसका जात हुआ। पुण्य जो बाहर रहा।।३१।
पाप का आसरा जो कर। पुण्य को संगत लेकर।।३२।
यह दोनों एक हैं मैं। जानता तेरी माया बनें।।३३।
इन दोनों को मैंने एक न किया। तुम्हें छोड़ो मैं नाश गया।।३४।
तुम्हारी दया होने पर ही। एक करेगा दोनों को ही।।३५।
नहीं तो कभी सङ्ग नहीं। भिन्नाभिन्न कर मरता है वही।।३६।
तो करे भिन्नाभिन्न उसे। प्रापत न करेगा तोसे।।३७।
अब सुदया तुमही करो। कुछ नहीं मांगता पामर।।३८।
रखो तो रखो मैं न कहा। तुन विन है कौन कहां।।३९।
दुर्ल्लभ शरीर जो पाया। उसे ही पहचान न पाया।।४०।
इस देह को पहचाने अगर। यह देह रहती अजर।।४१।
यदि वह पहचाने नहीं। तलाशे पाएगा भी नहीं।।४२।
काष्ठ पाषाण रुद्राक्ष में। तलाशो नहीं है उसमें।।४३।

मंत्र यंत्र ध्यान में नहीं। तीर्थ व्रत में भी वह नहीं।।४४।
केवल जल पीए जानो। दुध पवन कुछ नहीं मानो।।४५।
बस गुफा में जमे रहे। तुम्हें वह पाएगा भी काहे।।४६।
उलगन भटकता रहे। किसी से कुछ भी न कहे।।४७।
वह है अज्ञान ही वैसे। तुझे पाएगा वह कैसे।।४८।
यह तुम्हारी विचित्र माया है। मुझे नाना रूप भटकाया है।।४९।
तब न अज्ञान हुए ही। नाना देवों की पूजा की।।५०।
तब वे हुए अल्पायुष। तुम्हें न सेवे भये नाश।।५१।
इस देहमें जो तुम्हें जाने। जन्म मरण क्या वह न जाने।।५२।
अब मैं एक बात बोलता हूँ। दो न दो पर मांगता हूँ।।५३।
तुम्हारा विचार जो होगा। भकति योग मेरा होगा।।५४।
इससे तुमसे कुछ और न मांगू। नहीं तो शीघ्र नाश जाऊँ।।५५।
संसार में वह क्यों कर होगा। कष्ट अनेक जब वह पाएगा।।५६।
ये जो हैं प्रकृति गण। देते हैं कष्ट अनुक्षण।।५७।
इनका कषण जो सहेगा। देह छूटे तो सब जाएगा।।५८।
कहते अरक्षित दास। है प्रभु तोड़ो माया त्रास।।५९।
हे सुजन आप सुनें मेरा। कतई न धरें दोष मेरा।।६०।
इस महीमण्डल भल झटका। प्रभु सेवा ही कर न सका।।६१।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम एकादशोऽध्याय

— o —

द्वादश अध्याय (१२)
भक्ति प्रार्थना

हे देव देव चैतन्य। तुम्हरे व्यतीत यह मन।।१।

और किसे मैं सेवूं नहीं। हे देवदेव भावग्राही।।२।

हे देवदेव जगत्कर्त्ता। हे देवदेव जगत्माता।।३।

हे देवदेव ब्रह्मा शिव। हे देवदेव सर्वदेव।।४।

हे देव देव विष्णु तुमही। तुम्हारा रूप वर्ण नहीं।।५।

हे देव देव शून्यनाथ। तेरी देह से यह जगत।।६।

हे देव देव महीपति। तीनों भुवनों में तेरी स्थिति।।८।

हे देव देव महीधर। भरा हुआ है परात्पर।।९।

हे देव देव देरी महिमा। कोई न पाए तेरी सीमा।।१०।

हे देव देव अन्तर्यामी हर मन के तुम ज्ञानी।।११।

हे देव देव भगवान। जल रूप में तु उत्पन्न।।१२।

हे देव देव दाशरथि। पवन रूपे तेरी स्थिति।।१३।

हे देव देव नारायण। अग्नि के रूप में निर्माण।।१४।

हे देव देव चन्द्र तुमही। काल रूप में नाशते मही।।१५।

हे देव देव निरञ्जन। सूर्य रूपमें करते पालन।।१६।

हे देव देव मृत्यु काल। जात कर नाशते सकल।।१७।

हे देव देव कल्पद्रुम। पाप-पुण्य में तेरा आश्रम।।१८।

हे देव देव हृषीकेश। स्वर्ग नर्क में करते वास।।१९।

हे देव देव घनश्याम। धर्म - अधर्मे करते विश्राम।।२०।

हे देव देव निराकार। सुरे-असुरे करते विहार।।२१।

हे देव देव सर्व तुमही। तुम विन और कोई नहीं।।२२।

हे देव देव खेल तेरा। अनेक रूपों का शरीरा।।२३।

हे देव देव जीव तुमही। घय घय में हो तुम ही।।२४।

हे देव देव तुम परम। हर घट में करते विश्राम।।२५।

हे देव देव जगत्मात। हे देव देव जगत्तात।।२६।

हे देव देव ब्रह्म कर्त्ता। सब को तूही अन्न देता।।१७।

छप्पन कोटि जीव सारे। तुम्हरे तन से जन्मे सारे।।२८।

उड़ता-डूबता जो तुम होत। चल अचल कहलाते।।२९।

यह सप्त द्वीप ब्रह्माण्ड में। पूर्ण हो जीव अजीव में।।३०।

तेरा तो रूप वर्ण नहीं। अज्योति अवर्ण तुमही।।३१।

हे देव पुराण पुरुष। तुम्हारी महिमा अशेष।।३२।

भक्त कषण सहू नहीं। रूप धरू तू भावग्राही।।३३।

नहीं तो रूप नहीं तिहारो। शून्यशून्य में तुमही विहारो।।३४।

हे देव शरण सोदर। आशा भरोसा नहीं मोर।।३६।

हे प्रभु दयाशील तुमही। निर्दय कैसे भावग्राही।।३७।

हे प्रभु पतित पावन। तारो तो तारो हे पौरन।।३८।

नहीं तो देह तजे जाओ। शून्य में शून्य बने रहो।।३९।

हे देव देव सुनो तुमही। इस देह का कोई काज नहीं।।४०।

यह देह तजे मैं जाऊँगा। तुम में लीन हो जाऊँगा।।४१।

इस देह में होता हूँ अज्ञान। तुम्हरी न पाऊँ पहचान।।४२।

तजे जाने पर यह देह। तुममें मिलूंगा न संशय।।४३।

इस देह में जान नहीं पाया। पापपुण्य में सना रहा।।४४।

हे देवदेव अन्तर्यामी। बातेक मांगता हूँ फुनि।।४५।

हे देव देव भगति दो। नहीं तो तन तजे जाओ।।४६।

इस मही मण्डल में बेमन। भटकूंगा क्यों अकारण।।४७।

इस महीमण्डल में भटका। तुम्हरी सेवा न कर सका।।४८।

न होकर इस मही मण्डल में। प्रवेश करुंगा ब्रह्म में।।।४९।

यह दया करो हे मुझपर। गुहार करूं बारंबार।।५०।

कहते अरक्षित दास। महीमण्डल गीता रस।।५१।

सुनो हे सज्जन सुजन। जिस प्रकार किया है भ्रमण।।५२।

खण्डगिरि में कर अवस्थान। किया महीमण्डल बखान।।५३।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डलग गीता कथने नाम द्वादशोऽध्याय

— o —

त्रयोदश अध्याय (१ ३)

भक्ति योग प्रार्थना

देव देव चैतन्य है सुनो। आपसे मांगुंगा है मन।।१।
हे चैतन्य अन्तर जानो। सभी मनों में विद्यमान।।२।
हे चैतन्य भगवान। दो भक्तियोग ज्ञान।।३।
बासुदेव हे चैतन्य। दो भक्ति योग ज्ञान।।४।
हे चैतन्य तुम हो ईश्वर। भगति मांगे यह पामर।।५।
हे चैतन्य ब्रह्म भगवान। करो भगति योग बखान।।६।
हे चैतन्य विष्णु सुनों। भगति मांगता हूँ पुनः।। ७।
हे चैतन्य जगत्कर्त्ता। देना भगति तुम हो दाता।।।८।
सर्व देही हे, हे चैतन्य। भक्तियोग करना बखान।।९।
हे चैतन्य कल्पद्रुम। भगति मांगता हूँ पुनः।।१०।
हे चैतन्य रघुनाथ। भगति मांगता हूँ तात।।११।
हे चैतन्य चक्रधर। भगति मांगू मैं तोहर।।१२।
हे चैतन्य हृषिकेश। भगति मांगूं पीतवास।।१३।
है चैतन्य नारायण। भगति मांगता हूँ पुनः।।१४।
हे चैतन्य रामचन्द्र। भगति मांगू में गोविन्द।।१५।
है चैतन्य कल्पतरू। भगति मांगूं महामेरु।।१६।
हे देव शरण सोदर। भगति मांगे यह पामर।।१७।
हे देव अभय चरण। भगति मांगू पुनः पुन।।१८।
हे देव अभय पञ्जर। भगति मांगे यह पामर।।१९।
हे देव जगत जीवन। भगति देना भगवान।।२०।
हे हरि श्रीकृष्ण माधव। भगति मुझे देना देव।।२१।

हे महाबाहु हे महिमा। भक्तियोग की होए आज्ञा।।२२।
हे देव कृपासिन्धु तुमही। भगति योग देना कही।।२३।
हे देव पतित पावन। भक्तियोग का देना ज्ञान।।२४।
हे देव ब्रह्माण्ड ठाकुर। भगति मांगे यह पामर।।२५।
हे तीन भुवन गुसाइँ। भगति मांगता हूँ मैं ही।।२७।
हे देव आर्त्त नियारण तुझे। मांगू भगति देना मुझे।।२८।
हे त्रिभुवन ईश्वर। भगति मांगे यह पामर।।२९।
हे देव वैकुण्ठ विहारी। भगति मांगूं मैं तुम्हारी।।३०।
आहे वैकुण्ठ शून्यनाथ। भगति मांगताहूं तात।।३१।
हे वेव आरत नाशन। भक्ति दे कमलनयन।।३२।
हे वैकुण्ठ ब्रह्मराशि। भक्ति दो मुझे महीयसी।।३३।
हे शून्य शून्य तुमही। भगति मांगता हूँ मैं ही।।३४।
हे अरुपानन्द सुने। हे भक्ति योग प्रदानें।।३५।
हे अजपा सुनो तुमही। भगति योग मांगूं मैं ही।।३६।
सुदो; है शंखचक्रधारी। भक्ति योग की यह गुहारी।।३७।
हे अचिन्तमणि तुमही। भगति योग मांगूं मैं ही।।३८।
हे चैतन्य पीतांवर। भगति मांगे यह पामर।।३९।
हे देव भक्त जीवन। भक्ति दो मुझे महामन।।४०।
हे देव गोवरधन धारी। भगति मांगू मैं तुम्हारी।।४१।
हे देव चौवर्गदानी। भकतियोग देना स्वामी।।४२।
हे प्रभु अनन्त मूरति। भगति देना प्राणपति।।४३।
तुम ही चौवर्ग के दाता। भगति देना पूज्य पिता।।४४।
भक्ति योग ले अन्तर में। तुमही हो समस्त घटों में।।४५।
तुम विन कोई न जानते। ब्रह्मा शंकर भरमते।।४६।

और को जाने संसार में। इस सप्तविंश संसार में।।४७।
सबने उपाय नाना किया। किसी को ज्ञात नहीं हुआ।।४८।
भकति तो है गुपत में। तुम्हारी माया के घेरे में।।४९।
तुम्हारा धरम है वही। किसी से तुमने न कही।।५०।
स्वभावत: दुर्ळभ भजना। करुणा करो महामना।।५१।
उस विन कुछ और न मांगू। भगतियोग देना प्रभु।।५२।
मुझे भगति योग देना। जब है जग से उद्धरना।।५३।
नहीं तो अन्य गति नहीं। जग से रहूं फिर क्यों ही।।५४।
रखो तो भक्ति मुझे देना। तब मुझे जग से तारना।।५५।
मेरा तो कोई दोष नहीं। देना या न देना गुसाईं।।५६।
भटका मही मण्डल में। माया को सत्य माना मैंने।।५७।
वह माया अब दूर करो। मैं गुहार करता पामर।।५८।
खण्डगिरि से लेलो त्वरित। भक्तियोग दो महामति।।५९।
इस विन और न मांगुंगा। एकान्ते भटकता रहूंगा।।६०।
नाम तुम्हारे साथ लेकर। भकति सांधूंगा मातर।।६१।
यह करुणा तुम करो। क्षुधा तृष्णा को मेरी मारो।।६२।
कहते अरक्षित दास। महीमण्डल गीता रस।।६३।
सुनों हे सर्व वुधी जन। इस गीता का किया है बखान।।६४।
इसमें दोश होगा मोहर। क्षमा करेंगे चक्रधर।।६५।
भक्ति योग में मेरी आश। सुजन नहीं घरें दोष।।६६।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे।

महीमण्डल गीता कथने नामो त्रयोदशोऽध्याय

— ० —

चतुर्दश अध्याय (१४)
आत्मा महिमा वर्णन

देव चैतन्य तुम्हें कहूं। भूख प्यास को नाशो कहूँ।।१।

भूख प्यास तुम बनते हो। भय निद्रा से मारते हो।।२।

हिंसा क्रोध मोह माया में। तुम भटकते संसार में।।३।

तुमही तो सत्व रज तम। लोभ काम जो तू ही मन।।४।

पांच मन जो तुम जानों। पच्चीस प्रकृतिया यह मानो।।५।

षड़रिपु जो तुम ही होते। चोषठ राग में नाशते।।६।

तुम विन इस देह में कोई। नाशते मेरा दोष नहीं।।७।

सर्व प्रकृति तुमही हुए। संसार भर को घेराए।।८।

तुम विन ब्रह्माण्ड के भीतर। है कोई; कहा क्या ठाकुर।।९।

तुम सप्त समंदर हुए। नवखण्ड मही कहलाए।।१०।

बन पर्बत तुमही जानों। बृक्ष पाषाण बने पुनः।।११।

ऊँचे नीचे नाले नदियाँ भये। तोहरे शरीर से सभी हुए।।१२।

तरु तृण कीट पतंग सारे। बने सभी देह से तोहरे।।१३।

छप्पन करोड़ जितने जीव। थारो देह के ये उद्भव।।१४।

धरती आकाश मण्डल। तेरे शरीर के ये सकल।।१५।

जल पवन अग्नि भये। देह से तेरे जात हुए।।१६।

चाँद सूरज तो तुम ही हो। दिन रात का किया निर्माण।।२७।

षोलह घड़ियाँ तुम ही हुए। सात बार तुमही कहाए।।१८।

पन्द्रह तिथियाँ तुमही भये। सताइश नक्षत्र कहाए।।१९।

नवग्रह तो तुम ही जनो। बारह माह तु यह ब्रमाण।।२०।

शीत ग्रीषम बने तुम ही। षड़ ऋतुएँ तुम्हरी देही।।२१।

बरखा झकेर तुमही जानो। करते रहते थन गरजन।।२२।

तेरी देह से जनमती बदली। तोहरे तेज है यह विजली।।२३।

ज्योति रूप धरे तुम मनसे। करते लीला अपने ढ़ङ्ग से।।२४।

मंत्र यंत्र जो तुमही भये। ध्यान सूत्र तुम ही कहलाए।।२५।

चण्डी चामण्डा प्रेत भूत। तुम्हरी देह से सर्व जात।।२६।

अष्ट धातु जो तुम ही हुए। नवरत्न भी कहलाए।।२७।

पट्ट वस्त्र जो पीतांवर। चूआ चन्दन अलंकार।।२८।

ये सारे तेरे अङ्ग जात। भूषण बने हो तुम ही तो।।२९।

नानादि पक्वफल तुम ही। नानादि भोग हो तुमही।।३०।

नानादि पुष्प तु ही हुए। महक प्रकाश भी करवाए।।३१।

सूखे में सार समाहित। दुग्ध में घृत हो संचित।।३२।

काष्ठ में तुम हो अगन। तिल में तेल सा गोपन।।३३।

एक ही पुरुष तुम सभी हुए। रीत अपनी और लीला रचाए।।३४।

स्तिरी पुरुष तुम ही होते। शरीर सारे सरंजते।।३५।

यह सप्त विंश ब्रह्माण्ड में। और है नहीं कोई भिने।।३६।

स्वरग मरत पाताल तुमहो। अपने शरीर से सरजित हो।।३७।

आकाश महाशून्य भये। अंधकार हो धिरे रहे।।३८।

तेतिस करोड़ देव तुमही। नक्षत्र मालाएँ तुमही।।३९।

अनन्त कोटि साधु भये। पुराण शास्त्र कहलाए।।४०।

अक्षर गण तुम ही बनकर। विराजे उन्हीं के भीतर।।४१।

जिसे जो रूचिर शबद। वर्णानुसार तुम होनात।।४२।

वर्ण और ध्वनि के भीतर। व्याप्त हुए हो चराचर।।४३।

अनाक्षर से जात तुम ही। नाम अनाम तुम देही।।४४।

जात जो किया जगत में। पहचानाए विविध नामों में।।४५।

एक ही नाम जो भिन्नाभिन्न। तुमने किया है विभिन्न।।४६।

खेलने के कारण संसार में। आते तुम नानान रूपों में।।४७।

छप्पन कोटि जीव भये। विविध रूपों में तुम आए।।४८।

मेरू से जितने पर्वत। तुम से जात ये समस्त।।४९।

काक से गरुड़ पर्यन्त। तुमसे जात ये समस्त।।५०।

चाण्डाल से ले फिर बह्म। तुम से हुए है उत्पन्न।।५१।

इन्द्र से ले देवेदेव सब। तुम से हुए हैं सम्भाव।।५२।

अश्वत्थ से ले वृक्ष सारे। तुम से जन्मे हैं संसारे।।५३।

सिंह से क्षुद्र कीड़ा तक तेरे। शरीर से जात होते सारे।।५४।

कीट से ब्रह्म तक तुम ही। जात हुए हो सर्व देही।।५५।

चलते चौदह करोड़ जीव। तुम्हरी देह से सम्भव।।५६।

निश्चल चौदह करोड़ हुए। तुम्हारे शरीर से भये।।५७।

उड़ते चौदह करोड़ पुनः। तुम्हारे शरीर जात जानो।।५८।

डुबते चौदह करोड़ पुनः। तुम्हारे शरीर जात जानो।।५९।

छप्पन कोटि जीव है महान। आहार दे कराते भोजन।।६०।

अप ही अन्न रूप होकर। स्वयं को नाशते अपार।।६१।
जीव को जीव ही खाता है। पाप-पुण्य सब मिथ्या ही है।।६२।
जीव को जीव धरे मारे। जीव से जीव हिंसा करे।।६३।
जीव की जीव सेवा करे। इस भांति तेरी माया घेरे।।६४।
हे प्रभु हर शरीर में। भरा है पर-अपर में।।६५।
आका मही तक भरी। जीव अजीव समसरी।।६६।
रेणु घरने का ठौर नहीं। सप्त ब्रह्माण्ड भरी हुई।।६७।
इस भांति व्याप्त तुम हाते। उत्पत्ति-प्रलय करते।।६८।
जात होते हो तो भी आप। मरते जब वह तो भी आप।।६९।
तेरी माया जानत न कोई। जो पाप-पुण्य को डरता वही।।७०।
अब किंचित दया करो। सकल यह शरीर म्हारो।।७१।
सकल समान देखूंगा। भगति योग मैं साधूंगा।।७२।
यही करुणा करो मुझपर। नहीं है भरोसा अपर।।७३।
कहते अरक्षित दास। दोष न धरो पीतवास।।७४।
सुजन जन चरणों में। निरन्तर क्षमा ही मांगूं मैं।।७५।

इति
श्री मन चैतन्य संवादे
मही मण्डल गीता कथने नाम चतुर्द्दशोऽध्याय

— o —

पञ्चदश अध्याय (१५)
आत्मा का आत्मदर्शन

देव चैतन्य तुम्हें कहूं। भूख प्यास को नाशो कहूँ।।१।

रोग नानादि तू ही करे। कष्ट नानादि भोगे मरे।।२।

जीव जन्तु नानादि तुमहो। अपने आपके पकड़े खाते हो।।३।

अपने आपको पकड़े खाते। पाप पुण्य क्या मिथ्या होते।।४।।

शुभ अशुभ तेरा नहीं। धर्म अधर्म तेरा नहीं।।५।

स्वर्ग नरक नहीं सुनो। झूठसच भी कहा पुनः।।६।

अपने आप परेशान हुआ। खुद अपने का नाश किया।।७।

आप ही हो माता-पिता। अपने आप को तू करता।।८।

आपने आप से व्याह करे। अपने आप खाए श्रम करे।।९।

बाप बेटी अपने आप। बहू बेटा अपने आप ।।१०।

अपने पाप रिश्ता जोड़े। अपने आप तो जकड़।।११।

जेठ बनते अपने आप। वर वधू अपने आप।।१२।

शाला मामी अपने आपके। शाश बन कर अपने आप के।।१३।

भाई बहू बन अपने आपके। छिपते अपनाते कितने तरीके।।१४।

अपने आप को परशंसि। अपने आप से हँसाहँसी।।१५।

रोना धोना अपने आप से। बन्धन छन्दन अपने आप से ।।१६।

वेशकरके अपने आपको। तैयार करके अपने आपको।।१७।

लाज करे अपने आप से। गरुतरु हैं अपने आप से।।१८।

शोभा देखी अपने आपकी। आपके आप होते दु:खी।।१९।

प्रीत करते अपने आपको। तु ही हरे अपने आपको।।२०।

सती तुम हो अपने आपके। दाह करे अपने आप के।।२१।

अपने आपकी चिन्ता करे। अपने आप को जकड़े मारे।।२२।

स्वयं विष तु जात धरे। आप ही अमृत जात करे।।२३।

क्रोध कर अपने आपको। गाली देकर अपने आपको।।२४।

दूत बने अपने आपका। आसेशक बन अपने आपका।।२५।

आदेश मानते अपने आपका। सो बहन करते अपने आपका।।२६।

वध करते अपने आपका। डरा करते अपने आपका।।२७।

राजा परजा बने आप ही। सेवक बनकर सेवा भी की।।२८।

ब्राह्मण चाण्डाल भये आपही। सेवक प्रभु भी बने आपही।।२९।

अपने आप से लड़ाई करते। अपने आप को जीत भी लेते।।३०।

अपने आप पर गोली चलाते। अपने आप के मस्तक काटते।।३१।

अपने आप तुम महावीर हो। अपने आप आप किङ्कर भी हो।।३२।

गुरुशिष्य हो अपने आपका। सेवक बन सेबा करते निजका।।३३।

अपने आप की सिद्धि तुम ही। अपने आप की योगी तुमही।।३४।

अपने आप की तुम क्षुधातृषा। अपने आप को तुम हो भरोसा।।३५।

अपने आप का तुम निद्रा-भय। चौषठ रोग तुम्हारी देह।।३६।

सातसौ बाहत्तर नाड़ी। अपने आप से हैं जड़ी।।३७।

अपने आपका मस्तक चाम। रक्त, मांस व हाड़ रोम।।३८।

बालक हो तुम अपने आपका। बृद्ध भी हो तुम ही निजका।।३९।

अपने आप तुम बेवा जानो। फिर सुहागिन बनते जानो।।४०।

अपने आप तुम रोग भये। पीड़ा झेले मरते गये।।४१।

खुद ही मरते जीते हो। खुद ही देखते सुनते हो।।४२।
अपनी सुगन्ध आप ही खाते। स्वयं दुर्गन्ध विष्ठा बनते।।४३।
खुद ही सुवास रूप लेते। स्वयं दुर्गन्ध मल बनजाते।।४४।
अपने आप पाप तू ही। अपने आप धर्म तू ही।।४५।
अपने आप स्तुति करते। अपने आप निन्दा करते।।४६।
स्वयं अपने आप को हो अपवाद वेसेही अपना परमाद।।४७।
खुद ही देवता रूप धरे। अपने आप की पूजा करे।।४८।
खुद ही धन वस्त्र बनते। अपने आप से मांगे खाते।।४९।
अप अपना ही कर्त्ताकर्त्ता। आप ही बनते विधाता।।५०।
आप ही तुम हो विष्णु शिव। आप ही हो सर्व देव।।५१।
आप ही उड़ता डुबता होते। चल अचल देही बनजाते।।५२।
आप ही छप्पन कोटि जीव। आप ही पाप पुण्योस्तव।।५३।
अपने आप को तुम खाते। पाप पुण्य कहां से आते।।५४।
अपने आप को तुम ही हरते। पाप पुण्य भी तुमही करते।।५५।
अपने आपको तुमही देते। धर्म-अधर्म भी कैसे होते।।५६।
आपहीजो स्वरग नरक होई। दण्डन मण्डन कुछभी नहीं।।५७।
आप ही तुम खेलने के लिये। दण्ड मण्ड पाते भये।।५८।
चोर तस्कर हो अपने आप। गरिष्ठ भी हो अपने आप।।५९।
अपने आप का न्याय करे। धर्म अधर्म के विचारे।।६०।
आप ही मनुष्य रूप लिया। लाज संकोच सब किया।।६१।
समस्त जीव जन्तु तुम ही। लज्जा संकोच कुछ भी नहीं।।६२।
कीट से ब्रह्म तक पुनः। करते लीला अनुक्षण।।६३।

खुद ही तुम धरती क्या हुए। उसे खेलघर जो बनाए।।६४।
आपही नभ मरत हो पाताल। तुमही चौदह भूमण्डल।।६५।
आपही आकाश रूप लिया। अंधेरा बन घिरा रहा।।६६।
आप ही सूर्य चन्द्र भये। रात दिवस तुम ही हुए।।६७।
स्वयं हो जल अग्नि पवन। आप विहरो सर्व स्थान।।६८।
आप ही सब ठाइँ बनकर। व्यापे हो सर्व स्थल पर।।६९।
ऐसे ही तुम्हरी लीला जानी। मैं क्या बताऊँ अनुमानी।।७०।
अपने आप को चीन्हें रहो। तो संसार में बने रहो।।७१।
अपने आप को पहचानने भर। सुख से रहेगा यह शरीर।।७२।
अपने आप को चीह्नों तुम ही। यह देह कभी भी न जायी।।७३।
अपने आप को पहचान ना जानों। अपने आप में रहो पुनः।।७४।
अपने आप से दया कर। लीला देखेगा जो तोहर।।७५।
सभी घटों में तुम हो विद्यमान। जाना यह मैं हे भगवान।।७६।
किस रूप में लीला करता हूँ। जग में किस रूप घिरा हूँ।।७७।
वही देखूंगा करे मन। भक्तियोग मांगलं मैं भगवन।।७८।
उन विन चाह नहीं है कोई। भो प्रभु करुं त्राही त्राही।।७९।
महीमण्डल में तुम्हरी लीला। किस भांति करते हो खेला।।८०।
यही देखने की है आस कहता अरक्षित दास।।८१।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

मही मण्डल गीता कथने। नाम पञ्चदशोऽध्याय।

— o —

षोड़श अध्याय (१६)
नाम महिमा

सुन कर मन का कथन। सोच चैतन्य मन ही मन।।१।
तुमने जो कहा है वह सत्य। यह मेरी माया विमोहित।।२।
माया को तुमने सत्य माना। और मुझे न पहचाना।।३।
तुम मेरी जीवआत्मा होकर। मेरे ही आथ रहकर।।४।
क्यो मुझे तुम विसराए। नाम ही मेरे छोडदिये।।५।
तुम से माया रची सो मैंने। उलझाए अनेक कामों में।।६।
अत: भटके तुम माया में। पहचाने नहीं मुझे भी तुमने।।७।
अब मैं कहता हूँ सुनो। नाम चिन्तन करो अनुक्षण।।८।
माता-पिता सङ्गम के काल। रज वीर्य हो एकाकार।।९।
तब मैंने कहाथा तिहारो। नाम चिन्तन मेरा करो।।१०।
तुझे मैं नाम दीक्षा देकर। रहा शून्य में मैं डूबकर।।११।
गर्भ में रहे दवमास। तब नाम में था विश्वास।।१२।
पृथ्वी पर आए विसराए। हंसी खुशी दिन जो विदाए।।१३।
अब तो मेरा नाम चिन्तो। नहीं है मेरा ही आयत्त।।१४।
इसी देह में मैं जो रहा। अपना नाम भूलादिया।।१५।
प्रकृति गण के साथ तुम्हरो। भरमें माया मत्त होकर।।१६।
इनके साजिश न जाने। देह को सत्य प्राय माने।।१७।
यह शरीर क्षण में जाएगा। नाम निराश जब होगा।।१८।
नाम की नित्य सेवा करो। देह यह रहेगी निकर।।१९।
नहीं तो देह ही न रहे। नाम तजे तो प्राण जाए।।२०।
नाम का चित्ते ध्यान करो। होगा तु अजर अमर।।२१।

जो नाम पाये माता के गर्भ में। उसी की चिन्ता करो मनमें।।२२।
संसार के और नाम जो जानो। चिन्ता न करना तुम पुनः।।२३।
भगतों पिता मेरे जो हैं। नाम वे अनेक दिये हैं।।२४।
वह नाम चिन्तन न करना तुमही। अपना नाम चिन्तो मैंने कही।।२५।
जो निज नाम न जाने मरे। निन्दा करते हैं संसारे।।२६।
वह नाम कोई न विचारे। संसार भर में देह धरे।।२७।
संसार में वह पूर्ण है। वह नाम गोपन में ही है।।२८।
वह नाम मैं जानता था। चौदह भूवन घेरा था।।२९।
वह नाम ईश्वर ने पाया। अमर होकर ही रहा।।३०।
वह नाम वारानिधि पायी। उसकी क्षय वृद्धि नहीं।।३१।
वह नाम वासुकी जानता है। धरती उसीके ही सर है।।३२।
वह नाम चांद सूरज जाने। रात्र दिवस प्रदक्षिने।।३३।
वह नाम ब्रह्मा जो जानते। सारी सर्जना वे करते।।३४।
वह नाम विष्णु भी जानते। सारी सर्जना वे पालते।।३५।
वह नाम ईश्र ने पाया। सकल संहार भी किया।।३६।
वह नाम जल जानता है। सभी घटों में पूरित है।।३७।
वह नाम गिन जानते हैं। सभी घटों में पूरित है।।३८।
वह नाम जानते पवन। सभी घटों में विद्यमान।।३९।
वह नाम पृथ्वी को पता है। सो सारा भार उठाया है।।४०।
वह नाम नभ जानत है। सो उसका घटन-बढ़न नहीं है।।४१।
वह नाम जानते तारा गण। सो रात दिन करते भ्रमण।।४२।
उसका नाम का आसरा लिया मैंने। सो सर्व घट धारण किन्हें।।४३।

सर्व घटों में क्यों कि निवास है मेरा। सो अज्ञान शरीर है मेरा।।४४।
क्यों अज्ञान मैं हूँ जानो। अब कहूंगा मैं तुम्हे सुनो।।४५।
मैं यदि अज्ञान न होता। जग में क्या लीला करता।।४६।
सब यदि वह नाम जानते। तो जग में अमर रहते।।४७।
अतः मैं अज्ञान जो हुआ। जगमें खेल गी लगाया।।४८।
अतः मैं जनम मरण। वह नाम तजने से पुनः।।४९।
ब्रह्माण्ड वतयाप्त है वह नाम। मैं भी जापता वही नाम।।५०।
नाम जल स्थल अनल। किसी को न मिलता थल।।५१।
वह नाम भजूं मैं बहुतेरा। सो घटन-बढ़न है नहीं मेरा।।५२।
जल में कभी न डूबता। हूँ नहीं हूँ न दीखता।।५३।
मैं कगी सुखता भी नहीं। खड्ग से कटता भी नहीं।।५४।
अनल से कभी न जलता। हवा से कभी न उड़ता।५५।
जग में खेल के लिए मैं। करता उत्पत्ति प्रलय मैं।।५६।
अब तु वही नाम धारो। जग में तू होगा अमर।।५७।
और किसीका डर नहीं। तुम्हारे वह नाम लेते ही ।।५८।
सभी जीवों में है वह नाम। कुछ और डर नहीं मान।५९।
चित्त में देखो सब समान। मैं हर भूतों में विद्यमान।।६०।
अब तु उस नाम में हो मज्जित। अरक्षित दास है कहत।६१।

इति
श्री मन चैतन्य संवादे
महीमण्डल गीता कथने नाम षोडशोऽध्याय।

— ० —

सप्तदश अध्याय (१७)
नाम विभूति वर्णन

हे म सुनो मेरी वाणी। कण्डगिरि को तजो फुनि।।१।

एकान्त हुए तु रहना। नाम पलेक भी न तजना।।२।

वह नाम प्रसन्न होएगा। जहां देखोगे वहा होगा।।३।

सभी घटों में नाम देखो। तब ही पाओगे तुम सुख।।४।

वे नाम सुदया करेंगे। क्षुधा तृष्णा दूर ही होंगे।।५।

गर्मी वरषा शीत सभी। तुम्हें न सताएंगे कभी।।६।

चौषठ रोग वे ही नाम। दया करेंगे अविराम।।७।

रोग व्याधि ही नहीं होगी। देह भी सतेज रहेगी।।८।

निद्रा भय भय भी वह शरीर। तुझसे करदेंगे दूर।।९।

रात दिन क्या न जानेगा। जो चाहो वह तुम्हें मिलेगा।।१०।

तुझे तो न देखेगा कोई। तु ही देखेगा सर्वदेही।।११।

पवन जिस भांति बहता। उसका रूप न दीखता।।१२।

तू भी तो वही रूप होगा। जब तुम उसे चीह्न लेगा।।१३।

बालक रूप तुम विचारो। वही रूप होएगा थारो।।१४।

वृद्ध रूप की इच्छा करो। वही रूप होएगा थारो।।१५।

युवा वय की करो इच्छा। पूरी हो जाएगी वह वाञ्छा।।१६।

वह नाम जानों जब तु ही। सब चाह पूरी होएगी ही।।१७।

उस नाम की वे महिमा। कैसे बताऊँ वह सीमा।।१८।

उस नाम के भगत होओ। तब रख पाएगा देह।।१९।

भक्त तु जिस प्रकार होगा। वह रहो मैं अब कहूँगा।।२०।

देखो आकाश रहे शून्यमें। उस भांति बताऊँगा तुम्हें।।२१।

देखो यह सूरज ऊपर है। तेज उसका न छूटता है।।२२।

तु भी उस प्रकार रहो। तब न रहेगी वह देह।।२३।

देखो चन्द्रमा तेज बनकर। सारा ब्रह्माण्ड है भरकर।।२४।

तु बअ एक भाव कर। जन्म मृत्यु को सु न डर।।२५।

देखो यह पवन बहता है। सब समान देखता है।।२६।

तु भी सब समान देखेगा। उत्पत्ति प्रलय न होगा।।२७।

देखो अगन जो सब खाए। पाप पुण्य उसका न होए।।२८।

तुम भी वही भाव करो। पाप पुण्य को नाही डरो।।२९।

जल जो समान देखता। स्वर्ग नर्क क्या न जानता।।३०।

तुम भी वेसा ही करना। स्वर्ग नरक न विचारना।।३१।

देखो धरती सहती है। सब समान देखती है।।३२।

तुम भी करो उस प्रकार। सब समान देखकर।।३३।

वेसे मैं सर्व घटमें रहूँ। परापर न जानता हूँ।।३४।

मैं ही व्यापे हूं जगत में। धर्म-अधर्म न जानता मैं।।३५।

तुम भी सब समान देखना। धर्म-अधर्म न करना।।३६।
खेल रचाये है मैंने जग में। धर्म अधर्म के विचार में।।३७।
नहीं तो दानों है समान। अब सुनों तुम मेरा वचन।।३८।
भकति भाव सुनों यही। यह भाव न जानते कोई।।३९।
यह भाव न जानते कोय। जन्म-मृत्यु में जुड़े हुए।।४०।
ध्यान सूत्र से क्लेश पाये। यह भाव न जानते कोय।।४१।
कोई करता तीर्थाटन। कुछेक देव आराधन।।४२।
कोई जो नाना योग करे। यह भाव भूले मरे।।४३।
कोई तो कुछ भी खाते। भाव क्या वे नहीं जानते।।४४।
इस प्रकार नानादि भरम। तो फिर हुआ मैं अज्ञान।।४५।
अत: ये सारे काम छोड़ो। भकति भाव करो दृढ़।।४६।
भक्ति में रहो निरन्तर। ये सारे हो जाएँ अन्तर।।४७।
निर्माया बने तुम रहोगे। तो कदापि न मरोगे।।४८।
जब भी तुम्हारा मन होगा। मेरी देह में आ रहेगा।।४९।
सुने मन को मोद हुआ। प्रभु निस्तार मेरा हुआ।।५०।
इस देह में कोई काम नहीं। तुम संग जा मिलूंगा मैं ही।।५१।
यही करुणा है मुझपर। चित्त में भक्ति हो अपार।।५२।
इस माया महीमण्डल में। क्यों भटकता रहूंगा मैं।।५३।
दसविध अवतार लेकर। मारे उद्धार जो पामर।।५४।

जब तक धरे रहोगे यह विचार। तेरा भाव न होगा अन्तर।।५५।

करता मैं गुहार तुमसे। अपना नाम बताओ मुझसे।।५६।

हे सुजनगण सुनों। महीमण्डल गीता गुण।।५७।

जिसका अनुभव होगा। यह गीता भेदा वह साधेगा।।५८।

भेद कर न पाएगा अगर। क्या ज्ञान पाएगा पामर।।५९।

इस गीता में ही भक्ति है। भेदे जो वह कुछ जानता है।।६०।

वह साधन करेगा अगर। तन उसका होएगा अमर।।६१।

नहीं तो नहीं गत्यन्तर। वह जग में होगा भी क्यों कर।।६२।

जब वह नाम चिन्ते नहीं। अवश्य वह है प्रभुद्रोही।।६३।

जिस के कारण तन है। उसी की चिन्ता न करता है।।६४।

संसार सुख मिला नहीं। स्वामी को छोड़ मरा वही।।६५।

हा प्रभु शरणसोदर। मेरा जो दोष क्षमा करो।।६६।

अब किंचित दया होए। मही मण्डल में ही न रहे।।६७।

कहते अरक्षित दास। त्राहि तुम करो पीतवास।।६८।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम सप्तदशोऽध्याय

— o —

अष्टादश अध्याय (१८)
खण्डगिरि त्याग

सुनकर आहे चैतन्य आप सुनें। आज्ञा करे तब ही न मैं।।१।

आज्ञा न हो तो मैं न जाऊ। गुसाईं भय करता हूँ।।२।

तुम्हारा आदेश जब होगा। तब भय कदापि न होगा।।३।

मन के मुख से यह सुने। मन निर्मल उसके जाने।।४।

हे मन भय भी क्यों कर। आज्ञा मेरी है यात्रा कर।।५।

खण्डगिरि से चले तुरित। मौन हो रहना एकान्त।।६।

लोभ मोह को तजो तुमही। उनका कोई कार्य नहीं।।७।

केवल एकान्त में रहना। संग किसी का न करना।।८।

एकान्त अरण्य में रहो। मेरी आज्ञा तुम माने रहो।।९।

आज्ञा से देह जो हुई है। माया में तुम न जान पाए।।१०।

अब मैं कहता हूँ सुनों। पहले आज्ञा फिर जनम।।११।

आज्ञा से जीव जन्तु जितने। सब है निश्चित जनमें।।१२।

आज्ञा ब्रह्माने जब पायी। उन्होंने सब सरजना की।।१३।

विष्णु ने आज्ञा ही पाकर। पालन करने तत्पर।।१४।

वह आज्ञा पाकर ईश्वर। करते सृष्टि का संहार।।१५।

चांस सूरज पाये वही आज्ञा। रातदिन करते परिक्रमा।।१६।

वह आज्ञा पाए तारागण। दिवारात करते भ्रमण।।१७।

वह आज्ञा पाए देवगण। किया है अमरित पान।।१८।

वह आज्ञा जो मिली शची को। अमरपुर मिला है उसको।।१९।

वह आज्ञा इन्द्र ने पाकर। किया स्वर्ग का अधिकार।।२०।

वृहस्पति ने वह आज्ञा पायी। वेद वखान करते हैं वही।।२१।

वह आज्ञा कुवेर पायी। भण्डारी बने वे हुए हैं।।२२।

यम को आज्ञा का प्रदान। पापपुण्य का समाधान।।२३।

करते मेघों ने वह आज्ञा पायी। पृथिवी पालते है वही।।२४।

तेतीस कोटि सारे सेव। सभी है आज्ञा ही वे सेवे।।२५।

अनन्त कोटि साधुगण। करते आज्ञा से भ्रमण।।२६।

आदेश ध्रुव ने जो पाया। ध्रुवमण्डल निवास किया।।२७।

आदेश अगस्ति ने पाये। सप्त सागर शोखलिये।।२८।

आदेश विभीषण पाये। अमर हो वे बने रहे।।२९।

आदेश हनुमान पाए। अमरता में बने रहे।।३०।

आज्ञा जो मुनिगण पायी। गोप में स्तिरी बनी रही।।३१।

आदेश वासुकी पाकर। पृथ्वी धरा है मस्तक पर।।३२।

पृथ्वी ने वह आज्ञा है पायी। भारा संभाले वे रहीं।।३३।

राक्षस आज्ञा बल पाए। जग को काफी क्लेश दिये।।३४।

पृथ्वी के लिए देवगण। गुहारते हैं पुनः पुनः।।३५।

वे उनके वचन सुनते। दशावतार में जात होते।।३६।

आज्ञा से मीन रूप धरे। सुनो सुमन चित्त धरे।।३७।

आज्ञा से कुर्म देह धरी। खेला करते नरहरि।।३८।

आज्ञा से वराह रूप में। उद्धोर पृथ्वी को पल में।।३९।

आज्ञा से नृसिंह रूप में। विदारे हिरण्य को क्षणमें।।४०।

आज्ञा से ामन रूप में। बली को चापे पाताल में।।४१।

बली को पाताल पठाकर। रहे आप द्वारपाल बनकर।।४२।

आज्ञा से पर्शुराम रूप। अवनी भार हरते दर्प।।४३।

आज्ञा से राम रूप जानो। बने आप रावण नाशन।।४४।

आज्ञा से बलराम रूप। विचूर्ण किया कंस दर्प।।४५।

आज्ञा से बौद्ध रूप साजे। नीलकन्दर में आ विराजे।।४६।

आज्ञा से कल्पी रूप लोगे। दुष्टों का संहार करोगे।।४७।

इस प्रकार दश अवतार। अवनी भार किया दूर।।४८।

इस प्रकार आज्ञा की महिमा। कैसे कहूँ में वह सीमा।।४९।

आज्ञा से मैं, तुम जो करता। घटघट में विहरता।।५०।

तुम मेरे संग ही रहेगा। जब आज्ञा को तु चीह्नेगा।।५१।

नहीं तो न मिलेगा यश। कहते अरक्षित दास।।५२।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डलगीता कथने नाम अष्टादशोऽध्याय।

— o —

एकनोविंश अध्याय (१९)
आज्ञा महिमा कीर्त्तन

चैतन्य को ताके मन ने। कहा आज्ञा की महिमा बखाने।।१।

आज्ञा की महिमा सुनूंगा। आज्ञा ले सुख से रहूंगा।।२।

मन मुख से यह सुने। आज्ञा की महिमा बखाने।।३।

वारानिधि ने आज्ञा पाकर। तट न लाँघे रत्नाकर।।४।

वरुण देव आज्ञा पाए। जल के अधिपति भये।।५।

आज्ञा पाकर प्रहलाद। भगतियोग किया साध्य।।६।

शङ्ख चक्र जो आज्ञा पाये जहाँ प्रेषित होते जाएँ।।७।

वह आज्ञा गदा पद्म पाए। मन हो सुनो मन दिये।।८।

वह आज्ञा गरुड़ पाकर। है प्रभु-वाहन बनकर।।९।

कौस्तूभ मणि आज्ञा पायी। गले में विमण्डित वही।।१०।

जय विजय दोनो भाई। द्वारपाल है आक्षा पायी।।११।

जगत नाथ के सातखर्व। आमा पा पहरा देते सर्व।।१२।

राम आज्ञा से सातखर्व। पहरा करते हैं सर्व।।१३।

कृष्ण आज्ञासे सातखर्व। पहरा करते हैं सर्व।।१४।

नारायण आज्ञा से सातखर्ब। पहरा करते हैं सर्व।।१५।

ये चारों देव आज्ञा पाए। चार द्वारों के प्रहरी है।।१६।

नित्यस्थल की कथा यही। एकाग्र हो सुनना वही।।१७।

उसी से सभी जनमते। आज्ञा से ही वे रूप लेते।।१८।

आज्ञा पाकर सुदर्शन। किया गज का उद्धारण।।१९।

आज्ञा पा वासव जो जाता। संकट से मृगी को तारता।।२०।

आज्ञा पा गया जो पवन। बचाया द्रौपदी का मान।।२१।

आज्ञा पाकर भरतिया। संकट से जो पार हुआ।।२२।

(यहां सूचना न दें तो हिन्दी के पाठको के लिये भरतिआ पक्षी के बारे में जानना सम्भव नहीं होगा। क्यों कि उत्कलीय आदि महाकाव्यिक रचना शुद्रमुनि शारला दास की अनुसर्जना महाभारत के व्यतीत व्यासदेव कृत मूल संस्कृत महाभारत या और किसी भी अन्य भारतीय महाभारत में नहीं है। भरतिआ एक पक्षी, शावक समेत कुरुक्षेत्र रणांगन में निपतित हो अवश्य ही कुचले मारे जाते। उस पर घंट ढ़ंक (एक आध भिन्न उत्कलीय संस्करण में घंट को चक्र कहा गया है) कर प्रभु ने उनका उद्धार किया था, रक्षा की थी। – अनुवादक)

आज्ञा पाकर राजागण। कारामुक्त होगये तक्षण।।२३।

युधिष्टिर जो आज्ञा पाए। राजस्व यज्ञ कर पाए।।२४।

आज्ञा से वे थे जनमे। स्वर्ग को गये स्वदेह में।।२५।

आज्ञा से उद्धव ने अपनाया। ब्रह्म शाप से पार हुआ।।२६।

मार्कण्ड ऋषि आज्ञा पाए। जल प्रलय से पार हुए।।२७।

कुब्जा ने आज्ञा जो पायी। बुबड़ी से सुन्दरी बन गयी।।२८।

आज्ञा उस अंधे ने जो पायी। तक्षण दृष्टि लौट आयी।।२९।

आज्ञा पा कालिन्दी का जल। तक्षण होगया निर्मल।।३०।

ऐसी है आज्ञा की महिमा। कैसे बताऊँ वह सीमा।।३१।

आज्ञा पायी वह जल पुनः। सभी जीवों का है जीवन।।३२।

आज्ञा से अग्नि जो जनमता। सभी तन में निवासता।।३३।

आज्ञा से जनमा पवन। सभी घटों में विद्यमान।।३४।

श्री महालक्ष्मी आज्ञा पाए। सब जीवों का आहार जुटाए।।३५।
आज्ञा से बारह बाह भये। शीत बरषा गर्मी हुए।।३६।
आज्ञा से बनी षडऋतुएँ। आज्ञा से पृथ्वी पालती है।।३७।
आज्ञा से भये सात बार। आज्ञा से सदा रहते स्थिर।।३८।
षोलह घड़ियाँ आज्ञा पाकर। दिन साठ दण्डों का रूपान्तर।।३९।
आज्ञा पन्द्रह तिथि भयी। अमावस पूर्णिमा जो हुई।।४०।
आज्ञा से सभी ग्रह गण आए। सब सताइस नक्षत्र भये।।४१।
आज्ञा से नारी पुरुष हुए। आज्ञा से रूप भी होता है।।४२।
आज्ञा से रजवीर्य मिलते। नूतन तन सरजते।।४३।
आज्ञा से अस्थि मांस लहू जो है। रोम नड़ियाँ बनती हैं।।४४।
अन्त नाड पित्त यकृत। चौषठ व्याधियाँ प्रस्तुत।।४५।
पांच पच्चीस जो प्रकृति। ये सारे आज्ञा से चलतीं।।४६।
आज्ञा से रोगगण चलते। ये शरी विनाशते।।४७।
आज्ञा ने नवधार बनें। एक सूत्र में जुड़े हुए।।४८।
आज्ञा से देख सुन खाते। स्वाद सुवास हैं चीन्हते।।४९।
आज्ञा से मल मूत्र होए। उसी आज्ञा से शरीर है।।५०।
आज्ञा से नाश जो होता है। आज्ञा से जन्म भी होता है।।५१।
इस प्रकार आज्ञा करता है। उत्पत्ति प्रलय होता है।।५२।
आज्ञा से करो तुम आस। कहते अरक्षित दास।।५३।

इति
श्री मन चैतन्य संवादे
महीमण्डल गीता कथने नाम उनविंशोऽध्याय

— ० —

विंश अध्याय (२०)
आज्ञा महिमा वर्णन

अव सुमन सुनो तुमही। आज्ञा से आतजात होई।।१।

आज्ञा से पवन चलता। कोणानुकोण समाजाता।।२।

आज्ञा ले नाशिका के द्वार। दिन रात करता विहार।।३।

आज्ञा जो पवन लेता है। उलटे पलटे बहता है।।४।

द्वादश वेग से आतजात। आज्ञा हो तब करता है हत।।५।

जीव परम आज्ञा पाए। देह को जात करते हैं।।६।

माता-पिता संयोग के काल। करें आज्ञा पर विचार।।७।

तिथि-लग्न के विचारसे। शुभाशुभ होते आज्ञासे।।८।

किरूप कुछेक जनमते। आज्ञा से काना छोटा होते।।९।

कुवड़ा, बहरा या गुंगा होए। वीमार भिखारी वह हो जाए।।१०।

किस भांति कुछेक जनमते। आज्ञा से धनवस्त्र पाते।।११।

आखा से आशावृद्धि होती। आज्ञा से सुगति मिलती।।१२।

कोई मरे माता की कोख में। मरता तत्काल जनमे।।१३।

कोई होता है अल्पायुष। आज्ञा से हो जाते हैं नाश।।१४।

कुछेक अधिक है जीते। आज्ञा से जन्म मृत्यु पाते।।१५।

इस भांति आज्ञा ही वे जानो। सरजे ले लेता है प्राण।।१६।

आज्ञा से पुं अङ्ग पाए। आज्ञा से नारी अङ्ग होए।।१७।

कुछेक नारी जन्म पातीं। कुलटा विधवा कहाती।।१८।

कुछेक सती सुहागिन भयी। आज्ञा से सुगति भी पायीं।।१९।

आज्ञा जो भयी माता-पिता। आज्ञासे दैव विधाता।।२०।

आज्ञा हो जब तब देह होती। नहीं तो वह नहीं होती।।२१।

आज्ञा से प्रकृति चलती। आज्ञा से व्याधियां भी होतीं।।२२।

प्रकृतिगण आज्ञा पाए। देह नाशते शतृ होए।।२३।

आज्ञा जो पहचाने नहीं। देह को नाशता है वही।।२४।

आज्ञा को पहचाने जो ही। उसकी जन्म मृत्यु नहीं।।२५।

आज्ञा को जो पहचानेगा। मरण हो तब भी जीएगा।।२६।

आज्ञा को पहचानो मन। मरेगा नहीं फिर पुनः।।२७।

नवखण्ड पृथ्वीके जीव होंगे। जग में कोई न रहेंगे।।२८।

केवल मात्र आज्ञा होगी। पृथ्वी प्रलयाधीन होगी।।२९।

पहचानेंगे जो आज्ञा को। डरेंगे नहीं प्रलय को।।३०।

अक्षयपिण्ड वे होते हैं। उनका प्रलय न होता है।।३१।

वृक्ष पाषाण तृण जो होंगे। वे नाश अवश्य जाएंगे।।३२।

आज्ञा से सब आतजात। आज्ञा से सब होते हत।।३३।

अश्वत्थ से ले तरु सारे। सब हैं आज्ञा से संसारे।।३४।

आज्ञा से फूल जो खिलते। आज्ञासे फल भी फलते।।३५।

आज्ञा से कहीं सुगन्ध बास करे। दुर्वास कहीं भरेपुरे।।३६।

षड्ऋतुएँ हैं आज्ञाने। अष्टधातु भी हैं आज्ञासे।३७।

आज्ञा से नवरत्न होए। नानान वर्ण कहलाए।।३८।

मेरू से जितने पर्वत। आज्ञा से टिके हैं समस्त।।३९।

चाण्डाल से ब्रह्म जो हुए। सभी आज्ञा से जात हुए।।४०।

काक से गरुड़ पर्यन्त। आज्ञा से टिके हैं समस्त।।४१।

सिंह से कीट जितने हैं। सभी आज्ञा से जात हुए।।४२।
इन्द्र से ले सभी देव। हैं आज्ञा से वे सर्व।।४३।
चौदह ब्रह्माण्ड सहिंत। आज्ञा हुए है रक्षित।।४४।
नव खण्ड ये जो है मही। सभी आज्ञा से जात हुई।।४५।
सप्त समुद्र आज्ञा पाए। सब आज्ञा से जात हुए।।४६।
चलन्त चौदह कोटि होते। ये सारे आज्ञा से चलते।।४७।
निशुल चौदह करोड़ होते। आज्ञा न पाए न चलते।।४८।
उड़ते चौदह कोटि होते। आज्ञा से वे सारे उड़ते।।४९।
डूबन्त चौदह कोटि होते। आज्ञा से डूबे वे रहते।।५०।
छप्पन कोटि जीव गण। आज्ञा से सब का जनम।।५१।
जिस समय पृथिवी थी नहीं। चांद सूरज भी कोई नहीं।।५२।
उस समय था बस महाशून्य। आज्ञा प्रकाशित किया शून्य।।५३।
आज्ञा से पृथ्वी की सर्जना। स्वर्ग मरत पाताल है बना।।५४।
आज्ञा से सब है जनमे। करते लीला संसार में।।५५।
कीट से ब्रह्म तक जानों। आज्ञा से सभी जन्मे पुनः।।५६।
इस भांति आज्ञाकी महिमा। कोई न पाए उसकी सीमा।।५७।
समुद्र रेणु गिना जाए। आज्ञा महिमा कौन कहे।।५८।
आज्ञा महिमा भावे रस। कहते अरक्षित दास।।५९।
आज्ञा की महिमा अपार। सुजन जन हेतु करो।।६०।

इति
श्री मन चैतन्य संवादे
मही मण्डल गीता कथने। नाम विंशोऽध्याय

— o —

एकविंश अध्याय (२१)
आज्ञा महिमा कीर्त्तन

अहो चैतन्य आज्ञा करो। आज्ञा को चीह्नेगा पामरे।।१।
आज्ञा को कैसे है चिह्नना। वह भाषा मुझे कह देना।।२।
कहे चैतन्य सुनो मन। आज्ञा को चीह्नो हो बहन।।३।
आज्ञा से जल स्थलानल। आज्ञा से सपत पाताल।।४।
आज्ञा से ब्रह्मलोक कहें। आज्ञा से देवलोक होए।।५।
आज्ञा से तपलोक किया। आज्ञा से भुवलोक किया।।६।
आज्ञा से सुरलोक भये। आज्ञा से जन लोक हुए।।७।
की भुवलोक की रचना। लीला सुनो हो तु समना।।८।
आज्ञा से सारे ग्रहगण। आज्ञा से यमगण पुनः।।९।
आमा से भये भूतगण। आज्ञा से हुए पितृगण।।१०।
भयीं आज्ञा से योग्नीगण। हुए आज्ञा से प्रेतगण।।११।
भयीं आज्ञासे अप्सरागण। भयो आज्ञा से रूद्रगण।।१२।
हुए आज्ञा से पिशाचगण। आज्ञा से भये नागगण।।१३।
भये आज्ञा से विष्णुगण। आज्ञा से हुए तारागण।।१४।
बने आज्ञा से देवगण। आज्ञा से भये नरगण।।१५।
आज्ञा से बने सुरगण। भये आज्ञा से असुरगण।।१६।
आज्ञा से बनी योग्नीगण। भये आज्ञा से प्रकृतिगण।।१७।
आज्ञा से चराचर बना। सब है उसीकी रचना।।१८।
आमा से महामंत्र हुआ। लीला तो सुनो कैसे किया।।१९।
आज्ञा से गायत्री सावित्री। ब्रह्म सावित्री अधिष्ठात्री।।२०।
आज्ञा से नारयण मंत्र। सुनो सुमन धरे चित्त।।२१।

आज्ञा से गोपाल मंत्र हुआ। देवताओं दे भोग दिया।।२२।
आज्ञा से नाना मंत्र मानो। आज्ञा से नाना यंत्र जानो।।२३।
नाना औषधि आज्ञा पायी। आज्ञा से मौषधियाँ भयी।।२४।
आज्ञा से यो हुए जात। सिद्धियाँ हुइँ आविर्भूत।।२५।
आज्ञा से उन्मेषित ध्यान। आज्ञा से बने हैं आसन।।२६।
आज्ञा से विविध मालाएँ। आज्ञा से जाप जात हुए।।२७।
आज्ञा से नामा नाम भये। सुनो सुमन मन दिये।।२८।
आज्ञा से नाना तरु जात। खिलते फूल भी अपर्याप्त।।२९।
आज्ञा से नाना फूल हुए। आज्ञा से नाना फल भये।।३०।
आज्ञा से नाना मूल भये। जड़ भी अनुरुप हुए।।३१।
आज्ञा से नाना माटी भयी। हमने रेणु भी नाना कही।।३२।
आज्ञा से नाना कंकड़ हुए। पत्थर नाना कहाए।।३३।
अष्टधातु में नाना द्रव्य। आज्ञा से ही बने हैं सर्व।।३४।
आज्ञा से नवरत्न हुए। नाना पदार्थ कहलाए।।३५।
आज्ञा से नाना वस्त्र भये। नाना प्रकार रंग हुए।।३६।
आज्ञा से दश रंग हुआ। वह नाना वर्ण उपजाया।।३७।
आज्ञा से चार वेद हुए। आज्ञा से शास्त्र सिद्धान्त पाए।।३८।
आज्ञा से वेदान्त है जानो। नानान सिद्धान्त प्रमाण।।३९।
आज्ञा से योगान्त जो हुआ। आज्ञा से नागान्त भी हुआ।।४०।
आज्ञा से नाना ग्रंथ हुए। नव नाटक लीला कहेगये।।४१।
आज्ञा से नाना मंत्र भये। वेद विद्या ज्योतिष कहेगये।।४२।
इस प्रकार नाना गान हुए। आज्ञा से सर्व जात भये।।४३।
षड़रस को वह जन्माया। कटु मधुर कहलाया।।४४।
खट्टा कषाय खारा भये। तेज भी आज्ञा न जन्माया।।४५।

भाग नानादि वह आज्ञासे। घी को निकाला दूध से।।४६।
तिल से तेल आज्ञा पाए। मक्खी को महू जो थमाए।।४७।
आज्ञा से इक्ष्यु में अमृत। काष्ठ में अग्नि हो सम्भूत।।४८।
आज्ञा से सब का निर्माण। जन्तु पक्षियां उतपन्न।।४९।
आज्ञा से नाना सर्प हुए। बाघ भालू जो बनगये।।५०।
हिरन वाराह आज्ञा से। शशक, मर्कट आज्ञासे।।५१।
हाथी घोड़ा, कुरङ्ग आज्ञासे। सिंह शृगाल गदहे आज्ञासे।।५२।
गाय भैंष जो आज्ञासे। भेड़ बकरी, शुकर आज्ञासे।।५३।
आज्ञासे मेंढ़क चहे भये। छिपकली गिरगिट हुए।।५४।
आज्ञा से नाना विच्छू हुए। मगरमच्छ केंचुए भी हुए।।५५।
आज्ञा से नाना मीन होते। नाना कीट भी कहलाते।।५६।
आज्ञा से नाना रूप भये। मक्खी मशक कहलाए।।५७।
आज्ञा से नाना रूप हुए। दीमक, चींटी बडीकाली चीटी कहलाए।।५८।
आज्ञासे विलाई कुकर। धोंधे, सीप हैं चराचर।।५९।
वगैरह जीव सारे। सभी जन्मे हैं यह संसारे।।६०।
कीट से ब्रह्म तक जानों। आज्ञा से जात उन्हें मानो।।६१।
आज्ञा को पहचानों मन। सब हैं आज्ञा का निर्माण।।६२।
आज्ञा से जितनी व्यवस्था। कहो खतम न होगी कथा।।६३।
आज्ञासे निर्माण अशेष। कहते अरक्षित दास।।६४।
सुनो सकल सुधी जन। आज्ञा से सब का निर्माण।।६५।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम एकविंशोऽध्याय।

— ० —

द्वाविंश अध्याय (२२)

आज्ञा से सर्वजात।

सुमन सुनो अब तुमही। आज्ञा को न चीन्हता कोई।।१।

आज्ञा से जनमा अक्षर। और भी हुए नाना क्षर।।२।

आज्ञा से करोडों होकर। देही जनमते निरन्तर।।३।

आज्ञा से करोडों भी मरते। आज्ञा जो इसभांति विचारदते।।४।

आज्ञा की महिमा न जाने। प्राणी जनमते-मरते जाने।।५।

आज्ञा न हो तो मृत्यु नहीं। आज्ञा होने से मृत्यु होई।।६।

आज्ञा होने से जात पुनः। आज्ञा से सब का निर्माण।।७।

आज्ञा से बहता पवन। सर्व घटों में वह जीवन।।८।

आज्ञा से अग्नि सर्व भूते। काठ में वह है गुपते।।९।

आज्ञा से तल जात होए। सभी घटों में वह होता है।।१०।

मही से नभ तक जानो। आज्ञा से उसका प्रमाण।।११।

आज्ञा से नाना शबद है व्याप्त। नाना शब्द नाद प्रकाशित।।१२।

जिसको जैसा ध्वनिशब्द। आज्ञा से करते वे नात।।१३।

जल पवन अग्नि बनकर। आक्षासे शब्दों का संचेर।।१४।

आज्ञा से कोटि बने वाद्य। जिसे जो मिला है शबद।।१५।

कीट से ब्रह्म के पर्यन्त। नाना ध्वनियां है सर्वत्र।।१६।

छप्पन कोटि में शबद। आज्ञा से करते हैं नाद।।१७।

आज्ञा से जीव काटे जीव। खाए जाते है असम्भव।।१८।

इस में पापपुण्य नहीं। धर्म अधर्म होगा क्यों ही।।१९।

आज्ञा से जीव को ही जीव। जात करते असम्भव।।२०।
इसमें शुभाशुभ नहीं। स्वर्ग नरक होगा क्यों ही।।२१।
आज्ञा से इसे वह मानता। आज्ञा से चाकरी करता।।२२।
आज्ञा से नाम जात हुआ। आज्ञा से भगति भी भया।।२३।
आक्षावे संसार सागर। आज्ञा चित्त में याद को।।२४।
यदि आज्ञा की चिन्ता करे। जग में रहेगा तु भले।।२५।
नहीं तो कोई गति नहीं। वृथा यां भरमना नहीं।।२६।
मंत्र यंत्र में नहीं जानो। ध्यान सूत्र में नहीं पुनः।।२७।
नानादि योग करो फिरभी। प्राप्त न होगी गति कभी।।२८।
नानादि देव अराधना कहीं। उसमें कोई गति नहीं।।२९।
नानादि तीर्थों की यात्रा से। गति न मिलेगी कहीं से।।३०।
ये सारे मन के भरम। करो मन से अनुमान।।३१।
आज्ञा की कभी चिन्ता न की। आत्मा, कर्मों में जो भटकी।।३२।
वह कहों संसार में रहेगा। सुनों मैं कुछ बताऊँगा।।३३।
अब आज्ञा को पहचानों। देह को सत्य नहीं मानो।।३४।
देह का नाश होगा क्षणमें। आज्ञा को पहचाने तो रहेगा।।३५।
मन कहता प्रभु सुनें कृपाकर। आक्षा को चीह्ने किस प्रकार।।३६।
तुम्हारी दया यदि होगी। आत्मा तब आज्ञा को चीह्नेगी।।३७।
नहीं तो मैं कैसे पहचानूं। जग में क्यों कर मैं रहूं।।३८।
मन मुख से जब वह सुनी। कहे चैतन्य मृदुवाणी।।३९।
हे मन सुनों हो वचन। खण्डगिरि को तजो पुनः।।४०।
एकान्त होकर तुम रहना। किसी का सङ्ग न करना।।४१।

अगम्य अरण्य के भीतर। आज्ञा को हृदे ध्याये होकर।।४२।

नित बन मैं भटकना। सुस्थिर होकर रहना।।४३।

शीत बरखा गर्मी जो है। सहना उन्हें कष्ट पाए।।४४।

घूमते हुए जो पाना। भोजन सुख से करना।।४५।

जीवों के प्रति समभाव होए। तो वह जग से तर जाए।।४६।

सब को समान देखना। आक्षा-चिन्तन ही किये होना।।४७।

उस प्रभु की आज्ञा होगी जानो। कष्ट मिटेगा तब ही जानो।।४८।

ग्रीषम बरका शीत कोई। तुझे न सताएँगे कोई।।४९।

क्षुधा तृषा भी नहीं होगी। व्याधियां दूर ही रहेंगी।।५०।

हटेंगी ये प्रकृति गण। तब पाओगे सुख पुनः।।५१।

आज्ञा चिन्तन नित करोगे। तब कभी तुम न मरोगे।।५२।

सभी जीवों में एक देही। भय तू न करना कोई।।५३।

आज्ञा का नित चिन्तन करना। भय तु कोई न करना।।५४।

तु ही देखेगा सर्वदेही। तुझे देख न पाएगा कोई।।५५।

कहीं मैं आज्ञाकी महिमा। मन में यह तु रखे रहना।।५६।

बन में अब करो प्रवेश। कहते अरक्षित दास।।५७।

सुजन जन सुनें मेरा।धरेंगे नहीं दोष मेरा।।५८।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम द्वाविंशोऽध्याय।

— o —

त्रयोविंश अध्याय (२ ३)

सर्व मिथ्या आज्ञा सत्य

चैतन्य ने मन से कही। तुमने मैंने आज्ञा पायी।।१।

वह आज्ञा तुम छोडते हो। जग में भटक रहे हो।।२।

मिथ्या यह संसार है जानो। तत्काल आज्ञा पहचानो।।३।

चौदह ब्रह्माण्ड है मिथ्या। आज्ञा ही सत्य है सर्वथा।।४।

सप्त सागर मिथ्या जानो। आज्ञा ही सत्य यह प्रमाण।।५।

मही नवखण्ड अप्रतक्ष्य। आज्ञा ही सत्य व प्रतक्ष्य।।६।

छप्पन कोटि जीव जानो। मिथ्या हैं यह सब जानों।।७।

भूलोक ब्रह्मलोक जो हैं। जानों ये समस्त मिथ्या हैं।।८।

आकाश शून्य महाशून्य। यह है मिथ्या तु जानो।।९।

जल पवन अग्नि ये भी। मिथ्या हैं जानो ये सभी।।१०।

चन्द्र सूर्य और तारागण। मिथ्या हैं सभी यह जानो।।११।

आज्ञा से ये सारे जनमते। जग में लीला जो रचाते।।१२।

जग में जितने जनमते। ये सारे मिथ्या ही होते।।१३।

काक से गरुड़ पर्यन्त। मिथ्या ही हैं ये समस्त।।१४।

ब्रह्म से लेकर चाण्डाल। ये सारे मिथ्या है सकल।।१५।

मेरु से सारे जो पर्वत। मिथ्या ही हैं यह समस्त।।१६।

अश्वत्थ से ले तरु तृण। मिथ्या हैं विचार प्रमाण।।१७।

इन्द्र वे ले सारे देव। सभी मिथ्या हैं यह तू देख।।१८।

छप्पन कोटि जीव समूह। मिथ्या है न कोई संशय।।१९।

आज्ञा से सभी जनमते। सभी आज्ञा से ही मरते।।२०।

उड़ते डूबते चल अचल। सभी मिथ्या है ये सकल।।२१।
धर्म अधर्म, पाप पुण्य। सभी मिथ्या हैं सब जानो।।२२।
स्वर्ग नरक शुभाशुभ। मिथ्या हैं सारे ये भाव।।२३।
यह देह है मिथ्या तुम जानो। आज्ञा सत्य है वही मानो।।२४।
देखते सुनते जो सभी। मिथ्या ही हैं ये सभी।।२५।
वेद पुराण शास्त्र जितने। सभी मिथ्या हैं सब जाने।।२६।
तिलक भजन स्मरण। मिथ्या हैं सुनो तुम मन।।२७।
जितने योग ध्यान ध्यान। सभी मिथ्या हैं करो ज्ञान।।२८।
वेदान्त योगान्त सिद्धान्त। नागान्त मिथ्या है समस्त।।२९।
काम कन्दर्प मृत्यु काल। मिथ्या ही हैं ये सकल।।३०।
नवग्रह त्रिवेणी की धार। जानो यह मिथ्या हैं निकर।।३१।
षड्रिपु और पंचमन। मिथ्या हैं यह तु जान।।३२।
सारी पच्चीस प्रकृतियां। मिथ्या है सारी प्रवृत्तियां।।३३।
पचाश दल मिथ्या जानो। चौषठ रोग मिथ्या मानो।।३४।
सातसौ बाहत्तर नाड़ियां ही। मिथ्या है यह जानो तुमही।।३५।
क्षुधा तृषा व निद्रा भय। मिथ्या हैं जाने कहो।।३६।
हिंसा माया व क्रोध मोह। ये सारे मिथ्या जाने कहो।।३७।
मिथ्या है उनचास पवन। आज्ञा है सत्य यह प्रमाण।।३८।
आज्ञा से सब जात होए। आज्ञा व्यतीत नहीं कोय।।३९।
रात दिन व ग्रीषम। मिथ्या हैं यह तुम जानो।।४०।
गर्मी, बरखा ठंड जानो। मिथ्या हैं यह तुम मानो।।४१।
अष्ट धातु व षड्ऋितु। मिथ्या हैं सभी करो हेतु।।४२।
षड़रस और नवरत्न। ये सभी मिथ्या है यह मानो।।४३।
स्वरग मरत पाताल जो हैं। ये समस्त बस मिथ्या ही हैं।।४४।

सप्त पाताल मिथ्या ही हैं। नवखण्ड पृथ्वी भी मिथ्या है।।४५।
देव गण सुरगण ये गण। सभी मिथ्या हैं तुम जानो।।४६।
मिथ्या हैं नरगण राक्षसगण। ये सारे मिथ्या तुम जानो।।४७।
योगी गण भी मिथ्या है। मिथ्या पितृ गण भी है।।४८।
पिशाचगण नागगण। सर्व मिथ्या है यह जानो।।४९।
ग्रहगण व यमगण। सर्व मिथ्या हैं यह जानो।।५०।
ऋषिगण वह योग्नीगण। मिथ्या मिथ्या हैं यह जानो।।५१।
विष्णुगण व रूद्रगण। वह भी मिथ्या है तु जानो।।५२।
मिथ्या है भूत प्रेत गण। मिथ्या मिथ्या अप्सरा गण।।५३।
तपलोक देवलोक जो कहाएँ। ये सारे मिथ्या ही है।।५४।
पृथ्वी जल स्थल अनल। मिथ्या हैं ये सकल।।५५।
चारों मेघ व चारों वेद। ये भी मिथ्या हैं निर्विवाद।।५६।
आकाश से मही तक पुनः। सर्व मिथ्या है तुम जानो।।५७।
कीट से ब्रह्म तक तुमही। सभी मिथ्या है जानो वही।।५८।
केवल आज्ञा मात्र सत्य। आज्ञा से सभी हुए जात।।५९।
आज्ञा से संसार सागर। स्थावर सारे चराचर।।६०।
हे मन आज्ञा ही है सर्व। और नहीं हैं कोई देव।।६१।
आज्ञा भाव का सत्य रस। कहते अरक्षित दास।।६२।
सुनो सुनो सुधी सुजन। सर्व मिथ्या आज्ञा प्रमाण।।६३।

इति
श्रीमन चैतन्य संवादे
महीमण्डल गीता कथने नाम त्रयोविंशोऽध्याय

— ० —

चतुर्विंश अध्याय (२४)
प्रकृति महिमा वर्णन

अहो चैतन्य सुनो वाणी। कौन आज्ञा दे रहा है फुनि।।१।

उसकी स्थान-स्थिति कहो। तभी तरुंगा माया मोह।।२।

मन के मुख से सुने यह। चैतन्य स्तम्भीभूत प्राय।।३।

मैं उसकी स्थान स्थिति। इस देह में जानूंगा किस भांति।।४।

आज्ञा पाकर जो मैं आया। इस देहमें भूलगया।।५।

वह आज्ञा माथे पर लिये हूँ। इस देह में वास करता हूँ।।६।

फिर आज्ञा होगी जिस दिन। तजे यह देह चलूंगा उस दिन।।७।

इस देह तजे जब चलूंगा। फिर वह सब मैं जानूंगा।।८।

जिस से कोटिकोटि ब्रह्मा। आज्ञा पाए जनमें हैं न!।।९।

जिससे करोड़ करोड़ भये। आज्ञा पाकर जन्म हुए।।१०।

जिससे कोटिकोटि शिव। आज्ञासे जन्मे असम्भव।।११।

जिससे करोड़ों में आए। इन्द्र जन्मे हैं आज्ञा पाए।।१२।

जिससे करोड़ों में आए। इन्द्र जन्मे हैं आज्ञा पाए।।१३।

जिससे करोड़ों में भये। आज्ञा से सूर्य जात हुए।।१४।

जिससे करोड़ों में आये। आज्ञा से मेघ जन्म हुए।।१५।

जिससे करोड़ों में भये। वेद आज्ञासे जात हुए।।१६।

जिससे करोड़ों अद्भूत। आज्ञा से भक्त होता जात।।१७।

जिससे करोड़ों में ग्रंथ। आज्ञा से हुए हैं रचित।।१८।

जिससे कोटि अविस्मर। सम्भूत आज्ञा से अक्षर।।१९।
जिससे करोडों में होए। नाम आज्ञा से जात हुए।।२०।
जिससे करोडों में होए। पवन आज्ञा से जात हुए।।२१।
जिससे करोडों में आए। आज्ञा से अग्नि जन्म हुए।।२२।
जिससे कोटिकोटि भये। आज्ञा से जल जात हुए।।२३।
एकान्त में उसव महिमा का स्थान। आज्ञा से सर्वजात मान।।२४।
उसकी स्थान-स्थाति कोई। जो जाने ब्रह्माण्ड में नहीं।।२५।
सही वह किस रूप होता। उसे भी कोई न जानता।।२६।
आने की बात जो जानेगा। जाने का भी उसे पता होगा।।२७।
किव रूप देह धरे रहे। किस भांति उसे तजे जाए।।२८।
कहाँ से आया था वह। कहाँ गया है फिर वह।।२९।
इन दो जिसे पताहोगा। उस स्थान की महिमा कहेगा।।३०।
हे मन तुमने पूछाथा। स्थान-महिमा के बारे में सुनाथा।।३१।
मैं वह स्थान जानता नहीं हूँ। यह देह धरे ही भटकता हूँ।।३२।
आज्ञो हो तो यहां से चलूंगा। उस स्थान में प्रवेश करुंगा।।३३।
तु मेरे संग तो होगा ही। तु भी स्थान देखेगा ही।।३४।
प्रकृतियां तो मरेंगी। देह भी माटी में मिलेगी।।३५।
मन कहे प्रभु अकूपार। यह देह रहेगी किस प्रकार।।३६।
इस देह में कुछ दिन रह तुम ही। लीला रचा तू भावग्राही।।३७।
रे मन तु ही नाश करे। प्रकृति संग तू विहरे।।३८।
मेरा तो कोई दोष नहीं। तू तो चाहकर है कही।।३९।

उनके साथ भटकते। मुझे भी मारना चाहते।।४०।
तब से मैं बना एक देही। माया में मुझे जो छोड़ दी।।४१।
माता-पिता के संगम समय। तुम और मैं एक समय।।४२।
आज्ञा से हम जात हुए। गर्भ में दसमाह रहे।।४३।
फिर हमें आदेश दिया। धरा मैं जा जनमो कहा।।४४।
गर्भ से धरती पर आकर। माया से आज्ञा तज कर।।४५।
तुझ सं मैं हैरान हुआ। उस आज्ञा को भूलगया।।४६।
अतः मैं हुआ हतज्ञान। है मन सुनों सावधान।।४७।
तुझे मैं राजपना दिया। प्रकृति गण सौंप दिया।।४८।
कहा तुम इनको पालना। कुछ कुछ आहार भी देना।।४९।
यही कहकर महं जो रहा। तुझे देह मैं सौंप दिया।।५०।
तुम उनके संग रह कर। नाश करते वह शरीर।।५१।
बहोत खाने को जो दिया। महिमा पता नहीं किया।।५२।
आहार पाए मत्त हुए। एक एक कर पाँच भये।।५३।
उनका बल है अशेष। कहते अरक्षित दास।।५४।
सुजन जन सुने सुधी। प्रकृति महिमा इस विधि।।५५।

इति

श्रीमन चैतन्य संवादे

महिमण्डल गीता कथने नाम चतुर्विंशोऽध्याय

— o —

पञ्चविंश अध्याय (२५)

स्वल्पाहार उपदेशव

अहो चैतन्य अन्तर्यामी। क्या बुद्धि करुंगा मैं फुनि।।१।

हे प्रभु जगत जीवन। इन्हे कैसे मैं जीतूं, पूछे मन।।२।

हे मन तुम अब रहो। अल्प आहार सन्हें तुम दो।।३।

आहार पाए इनका बल। देह नाशते ये सकल।।४।

हिंसा क्रोध व मोह माया। इन्हे न करो कभी दया।।५।

मिथ्या असत्य तम काम। लोभ आक्रोश चिन्ता मन।।६।

कुबुद्धि कुवचन जो हैं। कुट कपट ये जो हैं।।७।

कूटिल, कुजन दुर्जन। वितर्क अहंकार पुनः।।८।

दुःख दुष्ट कुज्ञान, मन्द। पाप विषय, वाद द्वन्द्व।।९।

हंसी मजाक उड़ानेवाले आगे। पुत्र हीन दण्डित होते आगे।।१०।

असाधु कुसाधु चञ्चल। अधर्म अशुभ अनिर्मल।।११।

क्षुधा तृषा व दुर्वासना। दुर्गन्ध अविचार हैं न?।।१२।

आहार निद्रा भय भये। मैथुन देह नाशते हैं।।१३।

चैषठ व्याधियों की जड़ हैं। अनायास देह नाशते हैं।।१४।

एकादश इन्द्रियों में होते। प्रयास करते रहते।।१५।

त्रिगुण पञ्चमन का साथ। पच्चीद प्रकृति सहित।।१६।

इस देहमें जो सेनाएँ अनन्त। कहें तो रात न होए अन्त।।१७।

एक एक कर शस्त्र धरे। मारते दया भी न करे।।१८।

इन्हे आहार देकर तु मन। दया कर किया है पोषण।।१९।
आहार पाए ये मत्त हुए। कषर हमे ही तो दिये।।२०।
आज्ञा पाए तुम-हम जो हैं। शरीर धरे ही रहे हैं।।२१।
आज्ञा पाने से हम चलेंगे। प्रकृति देह को तजेंगे।।२२।
इन सभी का नाश होगा। देह को कोई न रखेगा।।२३।
देखो अज्ञान इनके पास है। हमें मारना चाहता है।।२४।
हम निराश जब होंगे। तब यह शरीर तजेंगे।।२५।
पृथ्वी पर देह पड़ी होगी। वचन से वह कैसे खोयेगी।।२६।
कर्ण शवद जाऐंगे कहीं। नयन ज्योत हत होई।।२७।
नाशिका हदा जो खोयेगी। स्तम्भीभूत भी देह होगी।।२८।
जोड़जोड़ भी तो चलेना। चलनेवाला गया कहाँ।।२९।
शबद निशवद होगा। लहू मांस मिल भी जाएगा।।३०।
प्रकृतियां ये जो है। कहां रहेंगी किस जगह ये।।३१।
मुड़ता में यह न जाने। हमें वे चाहते मारने।।३२।
अक्षय देह हमरी होई। खड़ग से वह कडे नाहीं।।३३।
अगन में वह जले नाहीं। जल में भी डूबे नाहीं।।३४।
उड़ेगी नहीं वह हवा से। नहीं घटे बढ़े न कहीं से।।३५।
सूखता नहीं सदाकाल। नव युवा है सदा काल।।३६।
शरीर बढ़ता घटता। प्रकृति हेतु त्रास पाता।।३७।
यह तुम न जान पाए। इनके साथ वश हुए।।३८।

तुमने उन्हें आहार दीये। तब वे प्रवर्त्तित हुए।।३ ९ ।

अब तुम मेरा कहा मानो। अल्पाहार में रहो पुनः ।।४ ० ।

उनके बल वीर्य हरो। पैरों के वै होंगे चाकर।।४ १ ।

निर्बल होगी उनकी देह। सभी रहेंगे शान्त होई।।४ २ ।

तब यह शरीर रहेगा। घटना बढ़ना न होगा।।४ ३ ।

नवयुवक सदाकाल। हम जैसा होगा तु बिलकुल।।४ ४ ।

अजर अमर वह होगा। प्रलय मैं वह नहीं जाएगा।।४ ५ ।

हे मन मेरा यह कहना। सको तो शरीर रखना।।४ ६ ।

मन कहता त्राही त्राही। तुम दया करो भावग्राही।।४ ७ ।

तुम्हारी दया न होने पर। इन्हें को करेगा गोचर।।४ ८ ।

अब किंचित कृपा करो। आयत्त कुछ नहीं है मोर।।४ ९ ।

इस देह में राजपना दीये। प्रकृति गण को सौंपा है।।५ ० ।

प्रवृत्ति कावू में मैं आया। तेरी सेवा से मुकर गया।।५ १ ।

हे प्रभु सर्वज्ञ पुरुष। अर्क्षित दास रहे पास।।५ २ ।

सुजन जन सुने रीत। महीमण्डल में हूँ भ्रमित।।५ ३ ।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम पञ्चविंशोऽध्याय

— o —

षड्विंश अध्याय (२६)
समदृष्टि से प्रकृति-विजय महिमा वर्णन

मन रे सुनो मेरी वाणी। तु एक भाव करो।।१।

भूख प्यास को तुम जीतना। निद्रा भय को तज देना।।२।

तब जीते ये प्रकृति गण। सब को देखना समान।।३।

मैं तुम तुम मैं वही। सर्व समान देखो कही।।४।

इन्द्र से ले सभी सभी देव। देखना समान तू सर्व।।५।

चाण्डाल से ब्रह्म तक तुमही। सभी समान है ही।।६।

मेरु से समस्त पर्वत। सब समान देखते तुम तो।।७।

काक से गरुड़ पर्यन्त। समान देखना तुम नित्य।।८।

अश्वत्थ से लो सभी वृक्ष। समान देखना प्रत्यक्ष।।९।

कीट से सिंह तक तुमही। सर्व समान देखो कहीं।।१०।

चांदि से लोहा के पर्यन्त। देखना समान समस्त।।११।

हीरा से सोना के पर्यन्त। सब समान देखो नित्य।।१२।

खट्टा से तेज तक पुनः। भिन्न न करे देखा सम।।१३।

नीली से रंगो तक कही। सब समान देखा तुमही।।१४।

किट से ब्रह्म के पर्यन्त। समान देखना समस्त।।१५।

पृथ्वी के समान सहना। सब को समान देखना।।१६।

आकाश समान तु रहो। कहीं न लगे घूमे रहो।।१७।

अग्नि समान सब भक्ष होना। कुछ भी नहीं नकारना।।१८।

चन्द्र सूर्य जैसे तुमही। सब समान देखो कहीं।।१९।
जल पवन के सम तुम। सब में रखो भाव सम।।२०।
एक ब्रह्म ही सर्व देहे। सभी घटों में भरे रहें।।२१।
एक आत्मा है भिन्न नहीं। सुनो कहूँगा तुझे मैं ही।।२२।
गाय का रंग होता भिन्न। पर दूध एक ही समान।।२३।
अलंकार तो होते भिन्न। सुवर्ण किन्तु एक समान।।२४।
सब को करें एक ठान। पिघलाएँ तो एक समान।।२५।
भिन्नता दिखाई न देती। एक ब्रह्म है सर्व देही।।२६।
लाखों जल का कुम्भ रखें। लाख लोग जो उन्हें देखें।।२७।
एक ही सूर्य लाख भये। देखो तो हर घटों में होए।।२८।
इसी रूप में आत्मा होती। भिन्नाभिन्न वह नहीं होती।।२९।
रवि शशि है स्वर्ग एक।समान देखो स्वर्गलोक।।३०।
और भी उपमाएँ दूंगा। तेरा संशय मिटाऊंगा।।३१।
एक ही दिया जला देना। लखों पलिता जला लाना।।३२।
लगाओदीपक न बूझेगा। लौ जो जलता रहेगा।।३३।
सभी घटों में एक ब्रह्म। यह तू कर अनुमान।।३४।
तुमही सब भूतों में हो। स्वयं को पहचान न पाते हो।।३५।
स्वयं को चीह्ने अब रहो। जग में तभी सुख से रहो।।३६।
इस प्रकार तु जो रहोगे। किसी को भिन्न न मानोगे।।३७।
सप्त ब्रह्मण रेणु बत। तुझे होंगे वे प्रतिभात।।३८।
चन्द्र सूर्य जो तेरे वहां। दीखेंगे दीपक समान।।३९।

लक्ष्मी एवं हैं हलपाणि बल। तेरे न होंगे समतुल।।४०।
ब्रह्मा शिव व पृथ्वी जानो। कोई न होंगे तेरे सम।।४१।
इन्द्र कुवेर व वरुण। लगेंगे निर्द्धन समान।।४२।
सप्त सागर एक होए। लगेंगे गोष्बद पराय।।४३।
हिमालय पर्वत जानो। लगेगा कंकड़ समान।।४४।
आकाश तुच्छ प्राय होए। लगेगा सामान्य दूर है।।४५।
कल्प वट को एरण्ड मान। काम देव बन्दर समान।।४६।
तारे आगे वृहस्पति जानो। लगेंगे मूक के समान।।४७।
उन्नचास पवन को तुमही। मानोगे नाना हवा यही।।४८।
तुझ से जग में बड़ा कोई। लगेंगे सुनो मैंने कही।।४९।
अगनि में तुम न जलोगे। जल में कभी न डूबोगे।।५०।
काटो तो तुम काटोगे नहीं। हवा में उड़ेगा भी नहीं।।५१।
सब को तुम ही देखोगे। को तुम्हें देख न पाएंगे।।५२।
यह भाव कोई न जानता। नाना कर्मों में नाश जाता।।५३।
हे मन यह भाव करो। जब रखना है शरीर।।५४।
नहीं तो कभी रहे नहीं। करता मन त्राहीत्राही।।५५।
हे प्रभु माया करो नाश। करो मोचन अक्षित-क्लेश।।५६।
हे सुजन जन गण। करो सब प्रभु का चिन्तन।।५७।

इति
श्रीमन चैतन्य संवादे
महीमण्डल गीता कथने नाम षड्विंशोऽध्याय।

— ० —

सप्तविंश अध्याय (२७)
कातर प्रार्थना - मुक्ति हेतु

हे अन्तर्यामी सुनों तुम ही। रक्षा करो हे भावग्राही।।१।
हे अन्तर्यामी चन्द्र सूर्य। दया करो हे देवराज।।२।
हे अन्तर्यामी ब्रह्मा शिव। दया करो हे सर्व देव।।३।
सुनों है परम जीव। रक्षा करो हे देवदेव।।४।
हे शून्य शून्य शून्य तु हो। रक्षा करो हे देव अहो।।५।
हे जल अग्नि तु पवन। रक्षा करो मैं करुं वन्दन।।६।
हे अन्तर्यामी जगत्कर्त्ता। रक्षा करो हे सर्वदाता।।७।
हे प्रभु त्रिभुवन साई। रक्षा करो मुझको गुसाईं।।८।
अहो हे त्रिभुवन पति। दया करो हे दाशरथी।।९।
अहो हे ब्रह्माण्ड ठाकुर। दया करो हे चक्रधर।।१०।
अहो तु अनन्त मुरति। दया करो हे प्राणपति।।११।
हे अनन्त तुम हो ईश्वर। दया करो हे पीतांवर।।१२।
अहो हे सर्वज्ञ पुरुष। दया करो हे पीतवास।।१३।
ओ अरूप चिन्तामणि। दया करो हे चक्रपाणि।।१४।
हे अज्योति तुम अनन्त। दया करो हे भगवन्त।।१५।
आहो अजपा हृषीकेश। दया करो हे सर्ववास।।१६।
अहो हे विष्णुगर्भ तुमही। दया करो हे यदुसाइँ।।१७।
सुनो हे अनाथ का नाथ। दया करो हे जगन्नाथ।।१८।
अहो हे शरण पञ्जर। दया करो हे विश्वम्भर।।१९।
अहो हे शरण रक्षण। दया करो हे नारायण।।२०।

अहो हे चउवर्ग दाता। प्रसन्न होओ जगत्पिता।।२१।
अहो है पतितपावन। दया करो गरवगञ्जन।।२२।
सुनो सुनो हे कल्पद्रुम। शरण राखो हे पावन।।२३।
अहो हे जगत सोदर। अपराध जो क्षमा करो।।२४।
अहो हे हरण करता। तुम ही तो हो माता पिता।।२५।
हे आकाश महीधर। तुम दया करो देवेश्वर।।२६।
चारों वेद तुम ही हो कृष्ण। दया करो प्रभु श्रीराम।।२७।
हे प्रभु मीन रूप तुम ही। निद्रा भय को नाशो तुमही।।२८।
हे प्रभु कूर्म रूप तु ही। क्षुधा तृषा को नाशो तुमही।।२९।
अहो हे श्री वाराह रूप। नाशो हे प्रभु सारे पाप।।३०।
अहो हे नरसिंह रूप। शत्रुओं के आप हरें दर्प।।३१।
हे प्रभु अद्भुत वामन। माया का करो हे मोचन।।३२।
अहो हे रूप पर्शुधर। प्रकृतियों का नाश करो।।३३।
हे प्रभु राम अभिराम। राखो शरीर दयाधाम।।३४।
हे प्रभु बलराम कान्त। अरण्ये फिर हो एकान्त।।३५।
सुनो श्रीदेव हे उद्धव। अरण्ये रक्षा करो देव।।३६।
हे कल्की रूप महा तेजस्। कालि में बचाना अवश्य।।३७।
ऐसे तो नाना रूप धरे। भक्त को कषण से तारें।।३८।
कातर भक्त पुकारे जब। रूप लेते हो अविलंव।।३९।
नहीं तो आप हैं अरूप। दयाकरो हे अपरूप।।४०।
अहो अगम्य नाथ तुम हो। कारण कारण होते हो।।४१।
हे प्रभु आरत जीवन। इस देह में मैं बना अज्ञान।।४२।
हे प्रभु दयाशील आप ही। आप निर्दय बने नहीं।।४३।
हे प्रभु परम पुरुष। इस देह में किया वास।।४४।
इस देह में मैं भटकता रहा। तुम्हें न सेवे नाश गया।।४५।

हे अन्तर्यामी सुनो तुमही। आप ही तो हो सर्वदेही।।४६।
सकल आतजात करते। कालरूप में संहारते।।४७।
हे नाथ सव जीवे तुम हो। मुझे भी कुबुद्‌्थि तो दिये हो।।४८।
तेरे विन इस देह में कौन। त्राहि करेंगे निरंजन।।४९।
आहे हे अन्तर्यामी कहताहूँ। खण्डगिरि से लेलो ग्रहु।।५०।
मन मेरा उच्छन्न करना। इस स्थल से छुड़ाय लेना।।५१।
दया तुम्हारी जब होगी नहीं। यह जगह छोडती ही नहीं।।५२।
नमो नमस्ते अन्तर्यामी। तारो न तारो भो स्वामी।।५३।
मुझे तुम विन और कोई। तारण कर सकता नहीं।।५४।
हे प्रभु जब तुम चाहोगे। हम भाव में प्रवेश करेंगे।।५५।
उस भाव में प्रवेश करते ही। प्रसन्न होंगे भावग्राही।।५६।
तुम प्रसन्न होओ तब न। वह भाव करुंगा चिन्तन।।५७।
तब मैं युगयुग रहूंगा। नहीं तो यह देह तेजूंगा।।५८।
हे प्रभु है काल पुरुष। बँदइ अरक्षित दास।।५९।
सुनो सुधी सुजन जन। गीता का किया मैं बखान।।६०।
यदि है मुर्खता यह मेरी। क्षमा करें करुं मैं गुहारी।।६१।
अमृतमय गीता रस। भाव में करो है प्रवेश।।६२।
यह गीता भेदे जो साधेगा। जन्म मृत्यु को जीत लेगा।।६३।
अक्षय पिण्ड ही को लेकर। प्रलय से होग भी निस्तार।।६४।
नहीं तो कोई गति नहीं। यह भाब जो जाने नहीं।।६५।

इति
श्रीमन चैतन्य संवादे
महीमण्डलग गीता कथने नाम सप्तविंशोऽध्याय

— ० —

अष्टविंश अध्याय (२८)

महाशून्य कथन

अहो चैतन्य सुनो वाणी। बातेक पूछताहूँ फुनि।।१।

महाशून्य की कथा कहो। मन से संशय मिटाओ।।२।

मन मुख से वह सुने अगम्य कथा कौन जाने।।३।

जिसका तट कूल नहीं। मैं बताऊँ वह किस भांति।।४।

चारों वेद जो न जानते। मैं जानूंगा कौन मते।।५।

पवन वहाँ नहीं भेदे। अनेक जानोगे कहते।।६।

ब्रह्मा विष्णु शिव के सहित। तुम्हें कर न पाऊँगा विदित।।७।

चन्द्र सुर्य जो न जानान्ति। को और जाने उसकी गति।।८।

अगन जहाँ न चल पाता। प्रवेश कर को और बताता।।९।

इन्द्र ध्रुव व तारागण। जानत हैं नहीं भाजन।।१०।

अक्षर वमुह न गमते। वेद शास्त्र भी न जानते।।११।

यम वरुण व कुवेर। इन्हें भी है यह अगोचर।।१२।

चारों वेद भी न जानान्ति। जानते नहीं वृहस्पति।।१३।

मुनिगणों को अगोचर। किव भांति जानेगा संसार।।१४।

गर्भ उनका न जाने कोई। बड़ च्छोटे है मानों कही।।१५।

मोटाई उसकी कितनी है। पता नहीं ऊँचाई क्या है।।१६।

लंवाई उसकी कितनी है। न मानें छोटा पन क्या है।।१७।

हस्त पद तो उसका नहीं। नयन मुख कर्ण नहीं।।१८।

नाशा शिर ही नहीं सुनो। अज्योति अवर्ण वह मानो।।१९।

अजपा अरूपा है वही। गभीर अथाह है वही।।२०।

स्वर्ग मंच पाताल भये। उसी गरभ में आतजात हुए।।२१।

ऐसा गर्भ उसका करो विचार। कोई द जाने अगोचर।।२२।

वह है अकलित गर्भदेही। मादल रूप में जो होई।।२३।

उस मादल की महिमा। कोई न जाने वह सीमा।।२४।

(मादल - वस एक शून्य आधार। यहाँ जिसकी कल्पना की नयी है वह है अनन्त, सीमाहीन - अनुवादक)

शून्य को शून्य मैं छोड़ कर। महाशून्य बनता आधार।।२५।

महाशून्य है वह शरीर। होती आज्ञा उसी से बाहर।।२६।

उस गर्भ से आज्ञा हो बाहर। सर्जना करे निरन्तर।।२७।

उसी गर्भ से आज्ञा हो बाहर। विनाश भी करे चमत्कार।।२८।

उस महाशून्य की कथा कैसे ही। खुले कह पाऊँगा मैं तोही।।२९।

शून्य में पृथ्वी आजात। शून्य में पाले वह जगत।।३०।

शून्य में यह पृथिवी है। सप्तब्रह्माण्ड शून्य मैं हैं।।३१।

चन्द्र सलर्य व तारिकाएँ। शून्य में आतजात होएँ।।३२।

चारों मेघ हैं शून्य से जन्मित। जल है शून्य में सम्भूत।।३३।

तेत्रिंश कोटी देवगण। करते शून्य में गमन।।३४।

अदद्त कोटि साधु होई। शून्य में भ्रमित हैं वे ही।।३५।

राक्षस गण पितृगण। करते शून्य में भ्रमण।।३६।

ग्रहगण और यमगण। शून्य में करते भ्रमण।।३७।

भूलोक ब्रह्मलोक वे भी। भ्रमण करते है वे भी।।३८।

सप्त सागर हैं शून्यमें। नवद्वीप भी हैं शून्यमें।।३९।

शून्य में नवखण्ड पृथ्वी। सप्तपाताल शून्य स्थिति।।४०।

चौदह ब्रह्माण्ड समेत। शूय में वे हैं समस्त।।४१।

मेरु से ले सभी पर्वत। शून्य में हैं वे समस्त।।४२।

काक से गरुड़ पर्यन्त। वे हैं शून्य में समस्त।।४३।

चाण्डाल से लेकर ब्राह्मण। शून्य में जातायात मानो।।४४।

इन्द्र से ले सारे देव। शून्य में स्थित हैं ये सर्व।।४५।

ण्वत्थ से ले सभी वृक्ष। शून्य में है ये प्रत्यक्ष।।४६।

चलन्त चौदह कोटि जीव। शून्य में स्थित हैं ये सर्व।।४७।

निश्चल चौदह कोटि भी हैं। सभी शून्य में रहते हैं।।४८।

उड़ते चौदह कोटि जानो। वे सभी शून्य में हैं मानो।।४९।

डूबते चौदह कोटि होते। समस्त शून्य में रहते।।५०।

छप्न कोटि जीव होकर। शून्य में सभी हैं रहकर।।५१।

कीट से ब्रह्म तक मानों। शून्य में है आवागमन।।५२।

नाजूक कीड़े से शेर तक जितने। शून्य में रहते हैं जाने।।५३।

चांदी से लोहे के पर्यन्त। शून्य में हैं ये समस्त।।५४।

साना से हीरा तक जानों। सब का शून्य में निर्माण।।५५।

शून्य से दशरंहग होई। शून्य में षड्ऋतुएँ होई।।५६।

षड् रस है शून्य जात। शून्य में टिके हैं समस्त।।५७।

जल पवन अग्नि सारे। सभी ये शून्य जात सारे।।५८।

पृथिवी शून्य में टिकी है। यह कोई न जानता हैं।।५९।

यह तेहर देह शून्य में हैं। शून्य में गति करती हैं।।६०।

शून्य से सभी हैं जनमें। लीला करते जगत में।।६१।

लीला अन्त में सभी जाते। शून्य में लीन वो हो जाते।।६२।

शून्य ही में आज्ञा हुई। प्रणव बन व्यान्त हुई।।६३।

मर्दल रूप महाशून्य। उसे से सब हैं उद्भिन्न।।६४।

अब सुमन हेतु करो। महाशून्य वो जो ॐकार।।६५।

ॐकार महिमा कहूंगा। परवर्त्ती में बताऊँगा।।६६।

महाशून्य के रसे रस। कहते अरक्षित दास।।६७।

महाशून्य का थल कूल। है नहीं सुनों है सकल।।६८।

इति

श्रीमन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम अष्टविंशोऽध्याय।

— ० —

उनविंश अध्याय (२९)
ॐकार महिमा वर्णन

अहो चैतन्य सर्वज्ञान। ॐकार महिमा वर्णन।।१।

करना। महाशून्य अगम्य भूमि। किसी का समागम नहीं।।२।

मन जो वहाँ न जा पाया। कर्ण ही सुने मोह हुआ।।३।

नाशा पवन दूर कित्ती। गमन-शक्ति हो न पाती।।४।

नेत्र उस दूरी को चलकर। पंहुयच न पाए हर प्रकार।।५।

मन बुद्धि है चैतन्य। किस भांति जानें वह स्थान।।६।

बता न पाते वे बालकर। अन्त न होए चिन्तन कर।।७।

इस प्रकार महाशून्य कथा। अति अगोचर है व्यवस्था।।८।

महाशून्य से जो ॐकार। किस भांति हुआ वह बाहर।।९।

वह सुनने को मन मोरा। बताओ दया होगी तोरा।।१०।

हे मन सुनो वही कथा। दूध से घी निकलता।।११।

गाय तो नाना द्रव्य खाए। खीर जो एक रूप होए।।१२।

उसके गर्भ में पाक होए। रस निर्यासित हो आए।।१३।

दुहें तो दूध ही दिखता। घी का पता न चलता।।१४।

नाना उपाय करें अगर। दूध से घी हो बाहर।।१५।

उसी प्रकार हर ॐकार। हुआ महाशून्य से बाहर।।१६।

महाशून्य से आज्ञा पाए। सप्त ब्रह्माण्ड घेरे वही।।१७।

नभ से धरा तक वही। शब्दरूप में आए वही।।१८।

सकल जीव के चित्त में। विहरे ॐकार रूप में।।१९।
ॐकार से सब जात हुए। ब्रह्माण्ड भर व्यान्त हुए।।२०।
ॐकार से यह देह बनी है। सब सुनतीदेखती है।।२१।
खाए वह जानता सुवास। जाने वह स्वाद या अस्वाद।।२२।
ॐकार से निद्रा भय होता। डोती है फिर तृष्णा क्षुधा।।२३।
ॐकार से भये पांच मन। करते नानान चिन्तन।।२४।
ॐकार से पच्चीस प्रकृति। ॐकार से षडरिपु स्थिति।।२५।
ॐकार से है चौषठ व्याधि। हिंसा काम मोह क्रोध आदि।।२६।
ॐकार से कुबुद्धि सुबुद्धि। धर्म अधर्म की प्रसिद्धि।।२७।
सात सौ बाहत्तर जो नाडी। ॐकार से हैं वे जुड़ी।।२८।
शोणित मांस, अस्ति चर्म। ॐकार से सबका निर्माण।।२९।
ॐकार किया नवद्वार। शब्दरूप करता विहार।।३०।
नेत्र से देखता, सुनता। नाशा से गंध विचारता।।३१।
जिह्वा से स्वाद उसने चीह्ने। उसीने किया भिन्नोभिन्ने।।३२।
एक ॐकार चारों वेद। नवद्वार में यह सम्भव।।३३।
षड़ चक्र दल पंचाश। सबका एक समावेश।।३४।
ॐकार शरीर में पूर्ण। ब्रह्माण्ड भर है परिपूर्ण।।३५।
ॐकार सर्व जात करे। फिर वही सब को संहारे।।३६।
आज्ञाने ॐकार जन्माया। उसीने पृथ्वी जात हुआ।।३७।
करके स्वर्ग मंच पाताल। ॐकार रूप में विहार।।३८।
चन्द सूर्य व तारागण। उसीने किया है निर्माण।।३९।

जल पवन अग्नि वही। जात किया है सर्वदेही।।४०।

तेतीस कोटि देव भये। ॐकार से ही जात हुए।।४१।

ब्रह्मा विष्णु शिव हैं आप ही। जात करे फिर संहारे भी।।४२।

लीला के लिए इच्छा होई। जात किया है सर्व देही।।४३।

निश्चल चौदह कोटि भये। ॐकार ही से जात हुए।।४४।

चलन्ता चौदह कोटि भये। ॐकार ही से जात हुए।।४५।

डूबन्त चौदह कोटि भये। ॐकार ही से जात हुए।।४६।

उड़न्ता चादह कोटि भये। ॐकार ही से जात हुए।।४७।

काक से गरुड़ पर्यन्त। ॐकार से जनमे समस्त।।४८।

अश्वत्थ से ले सारे वृक्ष। ॐकार से जात हैं प्रत्यक्ष।।४९।

चाण्डाल से ब्रह्म तक जानो। ॐकार जानिमत हैं मानो।।५०।

मेरु से जितने पर्वत। ॐकार जात ये समस्त।।५१।

इन्द्र से ले सारे देव। ॐकार जात हैं ये सर्व।।५२।

सिंह से क्षुद्र जो कीट भये। ॐकार से सब जात हुए।।५३।

एक ॐकार नाना वर्ण। भिन्न हैं नहीं सभी सम।।५४।

ॐकार भावबोध रस। वॅदई अरक्षित दास।।५५।

हे सुजन जन सुनो। ॐकार से सबका निर्माण।।५६।

इति

श्रीमन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम उनत्रिंशोऽध्याय।

— ० —

त्रिंश अध्याय (३०)
ॐकार महिमा

अब सुमन सुनो तुमही। ॐकार परिव्याप्त मही।।१।

कीट से ब्रह्म तक जानो। ॐकार जन्मित हैं मानो।।२।

ॐकार से जन्मित पाताल। उसीसे जन्मा रसातल।।३।

भूतल, वितल, अतल। ॐकार जात ये सकल।।४।

पाताल महातल भये। ॐकार से ये जात हुए।।५।

भूलोक भूवलोक जानों। ॐकार से जन्मे हैं मानो।।६।

जनलोक व तपलोक भये। ॐकार ही से जात हुए।।७।

ब्रह्मलोक असुर गण। ॐकार से जन्मे सुरगण।।८।

देवगण नरगण ही ॐकार जात पितृगण भी।।९।

राक्षस गण नागगण। ॐकार से जन्मे भूतगण।।१०।

विष्णु गण और देवगण। ॐकार जात ग्रहगण।।११।

पिशाच गण प्रेतगण। ॐकार जात ऋषिगण।।१२।

जाग्नीगण व यमगण। ॐकार जात रुद्र गण।।१३।

ॐकार से अपसराएँ भयी। लीला के लिए जात हुई।।१४।

ॐकार से काल मृत्यु हुए। जात करे फिर नाशता है।।१५।

क्यों जात करता नाशता। नजानूं संशय जागता।।१६।

नये पुराने जो न हुए। लीला का सुख भी नहीं है।।१७।

मनुष्यगणो के लिए वह। द्रव्य रचता बहोत वह।।१८।

छप्पन करोड़ में वह सार। मनुष्य नामक शरीर।।१९।

ॐकार सर्व घटे होए। मानव को हेतु बोध देये।।२०।

आज्ञा से नाना भोग करे। ॐकार रूप में शरीरे।।२१।

ॐकार से नाना भोग हुआ। वही उसीका भाग किया।।२२।

पट्ट वस्त्र व पीतांवर। चुवा चन्दन अलंकार।।२३।

पर्यङ्क और कोमल शय्या भव्य। नाना दि पुष्प अभिनव।।२४।

ॐकार से षड़रस हुए। मानव को स्वाद वे चखाए।।२६।

वेदविद्या ज्योतिष जाने। पाप पुण्य को वह वखाने।।२७।

मनुष्य व्यतिरेक कोई। भोग और करता न कोई।।२८।

जो जिसकी पूजा करे सुनो। देवता कहके वखानो।।२९।

नहीं तो देवता नहीं है। सुनो सुमन चित्त दिये।।३०।

यह जो मनुष्य गण सार। उपाय इनका महत्तर।।३१।

ॐकार सर्व घटे होए। मानव को हेतु बोध देये।।३२।

उसीसे जाने वे ये सव। इन विन नहीं कोई अन्य देव।।३३।

इनको ये चीह्ने तो । रहेगा घय सर्व मते।।३४।

नहीं तो वह रहे नाही। ॐकार नाशेगा ही देही।।३५।

आज्ञा पाकर ही ॐकार। देह में करता विचार।।३६।

आज्ञा न हो तो देह छोड़कर। महाशून्य में लीन होगा ही जरुर।।३७।

उसका कोई कर्त्तुत्व नहीं है। आज्ञा से सभी घट में वह है।।३८।

आज्ञा पाए ही वह आया। सब में लीला है रचाया।।३९।

जिसे जो अनुरूप शब्द। ॐकारसे करते हैं नाद।।४०।

नाना वर्ण जो जीव लेता। एक ॐकार सब करता।।४१।

छप्पन कोटि जीव गण। उसीने किया भिन्नाभिन्न।।४२।

एक ॐकार सर्वदेही। उसका रूप वर्ण नहीं।।४३।

सब को समान रूप में। ॐकार विचारे मन में।।४४।

ॐकार से और भिन्न नहीं। सर्व जात करता है वही।।४५।

शीत वर्षा ग्रीष्म जानो। उसकी देह के निर्माण।।४६।

षड़ ऋतुएँ उसकी देह। नहीं है कुछ भी संशय।।४७।

रात्र दिवस ॐकार ही। बारह माह में देह वही।।४८।

सातों बार है वह ॐकार। षोलह घड़ी है वह शरीर।।४९।

अब कहूंगा सुनो रस। नमन करे अरक्षित दास।।५०।

सुनो हे सुज सज्जन। चन्द्र सूर्य के जो विधान।।५१।

इति

श्रीमन चैतन्य संवादे

महीं मण्डल गीता कथने नाम त्रिंशोऽध्याय।

— o —

एकत्रिंश अध्याय (३ १)
सप्ताङ्ग योग कथन

अहो चैतन्य दया करो। सप्ताङ्ग योग के विचारो।।१।

सुनने को है मेरा मन। पैरों में करूं निवेदन।।२।

मन से वह यह सुने। सप्ताङ्ग योग जो वखाने।।३।

चन्द्र सूर्य जीव व परम। इन दोनों जो है गुण।।४।

जीव परम वो होए। वे देह धारण जो किये।।५।

ॐकार से चन्द्र सूर्य होकर। विहरे नाश के पथपर।।६।

वाम पुट में जब स्वांस बहे। जीव जो कहलाए।।७।

दायें पुट से जव वं बहे।परम सूर्य कहलाए।।८।

दो घडी ही बायें बहे। फिर वह दक्षिण को जाए।।९।

दो घड़ी दक्षिण पुट पर। करे विहार उलटपलट कर।।१०।

दक्षिण रन्ध्र में जब बहे। स्नान भोजन निरामये।।११।

नाना पदार्थ करना भोजन। निरोग करलेना तन।।१२।

सूर्य के तेज लग कर। पाक हो जाएगा सत्वर।।१३।

आहार जब जीर्ण होए। रोग समीप आ न पाए।।१४।

अरुणोदय के पहले। जाग जाना तुम भले।।१५।

वह दो घड़ी जब न सोये। तब रखो शरीर बचाए।।१६।

रवि शनि गुरु आहर मङ्गल। ये चारों बार सुर्यस्थलन।।१७।

ये चारों बार स्नान करो। जन्म मृत्यु को तुम न डरो।।१८।

वाम रंध्र में हो यदि श्वांस। न खाए रहो उपवास।।१९।

चन्दमा शीतल जो है। आहार पाक न होता है।।२०।

आहार पाक जब न होए। नानान रोग उपजाए।।२१।

अतः झट ही नाश जाए। उसे न बचा पाए कोय।।२२।

वाम रन्ध्र मो बहतो हो यदि। नहाना नहीं है कदापि।।२३।

वह दो घडी सोये रहना। योनिद्रा में हैं विताना।।२४।

सोम शुक्र और बुधबार। इन दिनो स्नाहान न कर।।२५।

चन्द्र के हैं ये तीनों बार। इन दिन जागो तो अजरअमर।।२६।

सूर्यबार हुआ हो जब। अनुकूल कर जाओ तब।।२७।

चन्द्रबार तो जाना नहीं। जाओ तो यश मिले नहीं।।२८।

सूय बार वह हुआ होगा। इस बार में जो जाना होगा।।२९।

सलर्य की बेला हुए हो तो। कहीं चन्द्र बार में जाओ तो।।३०।

अशुभ उस दिन होता है। शुभ कदापि न होता है।।३१।

चन्द्र सूर्य को निरखे रहना। शरीर सुरक्षित रखना।।३२।

इन्हें नित्य रहना ताके। दो घडी में छोड़ देके।।३३।

ये दोनों देह धरे हुए। इन्हें नित ताके रहना है।।३४।

अस्त उदय करता रहना।तिलार्द्ध व्यतिक्रम न करना।।३५।

चन्द्रमा तेज बढ़ेजब। जल बढ़े तत्काल तब।।३६।

सलर्य तेज होता जब प्रवल। आग बढ़ेगी असम्भाल।।३७।

दो घड़ियां दोनो द्वार पर। करता है जो उलट फेर।।३८।

रोग व्याधि तो नहीं आते। वे अमर हुए ही रहते।।३९।

नहीं तो कभी यश नाही। इसे जब वह रोके नहीं।।४०।

सात बार जब वे आएँ। बाम रन्ध्र से श्वांस होए।।४१।

आठवें दिन मृत्यु होगी। दक्षिण को जब वह न आएगी।।४२।

दाहिने से वह सातों बार। जब वह बहें निरन्तर।।४३।

अवश्य मरण होता है। वायें को जब वह न जाता है।।४४।

सातों बार को पलटकर। रहेगा मृत्यु को जीत कर।।४५।

गंगा यमुना में स्नान कर। काल मृत्यु को कभी न डर।।४६।

एक साथ जब स्नान होए। करोड़ों तीर्थ फल पाए।।४७।

चन्द्र सूर्य दो सरिताएँ। एक ॐकार जात भये।।४८।

यह न जाने मूर्खता से। पथ न पाए बहम से।।४९।

नाना तीर्थों में स्नान किये। घर-ठाकुर को विसराए।।५०।

नानादि ध्यान मन्त्र किये। अपने देव को विसराए।।५१।

देखो तुम एक ॐकार। बहता विविध प्रकार।।५२।

रहा है वह आज्ञा पाए। रात दिन न जानता है।।५३।

इधर से उधर को मारे। उधर से धधर को मारे।।५४।

उसका पल का नहीं है विश्राम। आज्ञा लिये है अविराम।।५५।

आज्ञा हो तब तजे शरीर। माटी पिण्ड ढह जाए फिर।।५६।

ऐसे हैं आज्ञा माने हुए। तिलोर्द्ध विमुख न होए।।५७।

सुनो सुमन अब तुम ही। सातबारों के गुण यही।।५८।

रविबार की कथा सुनों। जो कहूँ हेतु करो मानो।।५९।

चन्द्र सूर्य को एक करे। रखो तुम मिलाकर भरे।।६०।

त्रिकूट संधि में भरना। बढ़ती बेला वितालेना।।६१।

उस दिन तुम स्तिरी संग। नहीं विचारो वह प्रसङ्ग।।६२।

तब यह शरीर रहेगा। यम भी देखते डरेगा।।६३।

सोमबार को स्त्री के संग। करना रति नाना रङ्ग।।६४।

दक्षिण रन्ध्र से पवन। बहता होगा कहूँ सुन।।६५।

तब तू रति सङ्ग करो। तिथि लगन को विचारो।।६६।

स्त्री सङ्ग मङ्गल को नहीं। उस दिन तरदेना वही।।६७।

तब पवन को श्वांस लिये। त्रिकूटे रखना समाये।।६८।

काल मृत्यु को तुम जीतोगे। शरीर बचाए रखोगे।।६९।

करो रति तुम बुधबार। तिथि लगन करके विचार।।७०।

गुरुबार को कदाचित स्त्री सङ्ग नहीं है उचित।।७१।

नाम का चिन्तन करना। तब अज्रामर होना।।७२।

यम भी देख के डरेगा। मरण कदापि नहीं होगा।।७३।

तु प्राप्त होगा जो अभय। नहीं रहेगा मृत्यु भय।।७४।

शुक्रबार को रति करो तुमही। करना कोई डर नहीं।।७५।

दक्षिर नाशा से पवन। जब फिर बहेगा वह पुनः।।७६।

तब तुम रति स्त्री के सङ्ग। करना करे नाना रङ्ग।।७७।

वह वीर्य जो पद्मे आए। पुरुष अङ्ग जात होए।।७८।

शनिबार को स्त्री को न छूना। कहा यह माने ही रहना।७९।

इस बार पवन उठाए। अवायु मण्डल का लिये।।८०।

तब अमर होगा सुनो। सातों बार को जगे मानो।।८१।

शनिबार को नी बार कहें। चार बार जो पुरुष हैं।।८२।

सतों बार तु जगे रहना। अवहेलना न करना।।८३।

अवहेला से काल मरण। मारे लेलेगा वह तक्षण।।८४।

वातों बार को जगे रहना। सचेत ताके तू रहना।।८५।

ये सातों बार जगे रहने पर। नहीं मरेगा न होगा मरण डर।।८६।

हे मन ये सातों बार। ताके रहना निरन्तर।।८७।

न जगे तो कोई यश नहीं। नित्य मानों मैंने यह बात कही।।८८।

जगे न रहो तो होगा नाश। कहता अरक्षित दास।।५९।

बूदो है बुजन सज्जन। सप्ताङ्गयोग का विधान।।९०।

इति

श्रीमन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम एकत्रिंशोऽध्याय

— o —

द्वात्रिंश अध्याय (३ २)
एकाक्षर महिम वर्णन

अहो सुमन सुनो जो भये। ॐकार से सब जात हुए।।१।

ॐकार वह आज्ञा पाकर। विचारे वह नाना प्रकार।।२।

मनुष्य गण जितने हैं। सभी स्वतंत्र लगते हैं।।३।

शोभा जो जिसका जो होगा। ॐकार ही से सब बनेगा।।४।

जिसको जैवे जैसा वही। एक ॐकार सर्वदेही।।५।

तुच्छ को तुच्छ रूप देखा। मोटे को मोटापा वह देगा।।६।

देखो कांटे को नूकीला करदिया। पुष्प में सुगन्ध देदिया।।७।

तरु पर फल वह फलाता। नारीयल में पानि भरदेता।।८।

हंस वक को किया श्वेत। ईंख में भरा है अमृत।।९।

मक्खी के मुख में मधु दिया। गाय में दूध पूर्ण किया।।१०।

माता के स्तनों मे वह क्षीर। संचित किया रख कर।।११।

व्याघ्र मृग व मयूर। चित्रित कर दिया शरीर।।१२।

चौदह पुर चौदिशाएँ। ॐकार सब लिये ही है।।१३।

रात्र दिवस ग्रीषम ही। गर्मी वरषा शीत वही।।१४।

शुष्क में साहेर। षड़ऋतु तो है ॐकार।।१५।

काठ पाषाण में अगनि देकर। दूध में घी है रखकर।।१६।

तिल में तेल उसने रखा। कार्य मङ्गल जो निरखा।।१७।

नानादि पक्व फल देकर। सुवास स्वाद है भरकर।।१८।

षड़रसों में नाना भाग। संपादे किया है संयोग।।१९।
अष्ट धातु वे नाना द्रव्य। निर्माण किये अवम्भव।।२०।
अष्ट रत्नो में अलङ्कार। नानादि पदार्थों में सार।।२१।
एक ॐकार से सर्व जात। दशरङ्गो में है घटित।।२२।
छप्पू कोटि जीव वही। एक ॐकार जात सब वे ही।।२३।
नभ से धरती तक भरी। जीवे अजीवे समसरि।।२४।
लीला के लिये आज्ञा पाए। क्षण विश्राम भी न होए।।२५।
ॐकार तो है पवन। पलभर नहीं है विश्राम।।२६।
ॐकार से जल जात होए। क्षण विश्राम कर न पाए।।२७।
ॐकार से अग्नि रूप जान। पल का नहीं है विश्राम।।२८।
ॐकार से चारो वेद भये। वे भी विश्राम कर न पाए।।२९।
ॐकार से अक्षर जनमते। क्षमर विश्राम कर न पाते।।३०।
ॐकार से चन्द्र जात होए। क्षण विश्राम कर न पाए।।३१।
ॐकार से सूर्य जात होता। क्षण विश्राम कर न पाता।।३२।
ॐकार से जात तरिकाएँ। विश्राम कभी न कर पाएँ।।३३।
ॐकार से चारों मेघ जानो। विश्राम करे नहीं मानो।।३४।
ॐकार से इन्द्र जात होए। अनुक्षण चिन्त बहे रहे।।३५।
ॐकार से यम जात हुआ। अनुक्षण चिन्त बहे रहा।।३६।
बृहस्पति ॐकार से हुए। अनुक्षर विचारते रहे।।३७।
ॐकार से कुवेर जनमा। चिन्ता की नहीं कोई सीमा।।३८।
ॐकार से वारानिधि भया। क्षण विश्राम हो न पाया।।३९।

ॐकार से लक्ष्मी जात हुई। अनुक्षण चिन्ता करती रहीं।।४०।

वासुकी जनमा ॐकार से। चिन्ता न जाती है मन से।।४२।

ॐकार से पृथ्वी है जनमी। चिन्ता रहती भार भांति।।४३।

ॐकार से ब्रह्म जात होकर। सर्जना करे निरन्तर।।४४।

ॐकार से विष्णु जात होकर। सृष्टि पालते निरन्तर।।४५।

ॐकार से ईश्वर हैं जात संहा करे अविरत।।४६।

ॐकार से विष्णु जात हुए। अनुक्षण जग पालते है।।४४।

ॐकार से जनमें ईश्वर। संहार करते निरन्तर।।४५।

महाशून्य वे आज्ञा मिली जब। ये सारे जात हुए तब।।४६।

ॐकार से आज्ञा बल पाए। ये सारे जात किया वह है।।४७।

आज्ञा दी वह करके जात। पृथिवी पालो विधिमत।।४८।

वह आज्ञा शिरोधार्य कर। हैं नहीं किंचित स्थिर।।४९।

फिर छप्पन कोटि जीवगण। इनका करो तुम पालन।।५०।

एक ॐकार ही व्याप्त है। सोचो भय कुछ भी नहीं है।।५१।

ॐकार महिमा अशेष। कहते अरक्षित दास।।५२।

हे सुजन जन क्षमा करो। मेरा दोष कृपया न धरो।।५३।

मुर्खता में मैंने जो बखाना। वह दोष क्षमा करदेना।।५४।

इति

श्रीमन चौतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम द्वात्रिंशोऽध्याय

— o —

त्रयोत्रिंश अध्याय (३ ३)
ॐकार भाव कथन

अहो चैतन्य सुनो कहता हूँ मैं। कैसे विचरेगा जगत में।।१।

ॐकार भावचिर्त्त धारो। सर्व समान देखा करो।।२।

ॐकार जिस भांति व्याप्त है। शुभ अशुभ न जानता है।।३।

स्वर्ग नरक उसका नहीं। धर्म अधर्म है न कहीं।।४।

पापपुण्य भी उसका नहीं। भला बुरा भी है न कहीं।।५।

विकार अविकार नहीं। सर्व समान देखे वही।।६।

जाति अजाति उसकी नहीं। देह तो एक जाति होई।।७।

एक रक्त है सर्व जीवे। भिन्न दिया है भावे।।८।

लाला के लिए भिन्न किया। को माया जान नहीं पाया।।९।

माये से माहता संसार। माया जानता नहीं नर।।१०।

चन्द्र सूर्य ब्रह्मा शिव ही। उसकी माया में हैं जड़ी हुई।।११।

और कौन न बहकेगा सुनो। बड़ा है और कोई क्या जानो।।१२।

ॐकार यदि करे दया। जान सके को उसकी माया।।१३।

नहीं तो कोई गति नहीं। तलाशो पाओगे भी नहीं।।१४।

इसी नेह में वह भी है। रूप उसका न दीखता है।।१५।

जो इसी देह ही में खाए। उसे कोई न जानता है।।१६।

इसी कानों में जो सुने। उसे कोई भी नहीं जाने।।१७।

इन्ही आंखों से जो देखता है। उसे कोई न जानता है।।१८।

इसी नाशा से जो श्वांस लेता। उसे कोई भी न जानता।।१९।

शरीर कैसे बढ़ता है। इसे कोई न जानता है।।२०।
दिनमें कितना बढ़ता है। कौन कहे को जानता है।।२१।
बढ़ता है या घटता है कोई। यह तो कोई जाने नहीं।।२२।
बालक वृद्ध कैसे हुआ। कोई तो जान नहीं पाया।।२३।
किस भांति शरीर रचना। यह तो कोई भी जानेना।।२४।
माता गर्भ को बूंदेक जाए। गर्भ स्थल में जा समाए।।२५।
रक्त मांस व हाड़ चर्म। कहाँ से आए कहो मन।।२६।
चौषठ व्याधियों का फर। बताओ है किस प्रकार।।२७।
कहाँ से वे आते हैं। कोई वह नहीं जानते हैं।।२८।
सातसौ बाहत्तर नड़िया हैं। कैसे वह देह में जड़ी हैं।।२९।
यह तो कोई न जानता पर। सुनों सुमन मन लगाकर।।३०।
प्रकृति गणों का जो घर। कहां से वे होते बाहर।।३१।
रूप उनका कैसा होता। वह तो कोई न जानता।।३२।
ये सारे जो समझेगा। सुखसे जग में रहेगा।।३३।
नहीं तो वह मूर्ख होता है। अज्ञान हो वह मरता है।।३४।
अब तू मेरी बात सुन। एक पुरुष का निर्माण।।३५।
गर्भ के मध्य वह शरीर। किस भांति सजाया वह पुर।।३६।
इसी को समझ लेने पर। यह देह रहेगी जरुर।।३७।
घटना बढ़ना न होगा। वह प्रकु दया जो करेगा।।३८।
जो शरीर रचता है। उसके चिन्तन से गति मिलती है।।३९।
नहीं तो गति नहीं सुनो। यह क्यों रहेगा भी पुनः।।४०।
सुमन चिन्तो उन्हें अब। उनसे न कोई बड़ा देव।।४१।
करना उनका ही चिन्तन। करना कर्म समापन।।४२।
जो सुनते, देखते नेत्रों से । देखना समान रूप से।।४३।

उन्हें न जाने मुढ़ नर। सब काम पटाते संसार।।४४।
अज्ञान से प्राण वे गवांते। प्रभुद्रोही वे बन जाते।।४५।
सुमन मैं कहता हूँ देख। सर्वभूतों में उन्हें देख।।४६।
उपके भाव चित्त में समाए। छोडना कदापि नहीं है।।४७।
जिस भांति जग विचरेगा। सुनों मैं वह सब कहूँगा।।४८।
एकान्त होकर तुम रहना। किसी का सङ्ग न करना।।४९।
एक दिन गांव में विताना। एक दिन बन में काटना।।५०।
कही हो जमीन पर सोना। कहीं पलङ्ग व बिछौना।।५१।
कहीं तो होगा पूर्णग्रास। कहीं सम्पूर्ण उपवास।।५२।
कहीं तन में धूल मलकर। कहीं चन्दन लगाकर।।५३।
कहीं पट्ट पीतांवरधारी। कहीं चर्म धारण कारी।।५४।
कहीं तो दृश्य होकर रहना। कहीं अदृश्य रहजाना।।५५।
कहीं तो निन्दा स्तुति सहे। कहीं आनन्द दिन जाए।।५६।
एक ॐकार भाव धरे। रात दिन वह न विचारे।।५७।
घाट शिला की तरह सहो। तब लाँघेगा माया मोह।।५८।
एक भाव तो ध्याये रहता। किसी से भय न करना।।५९।
तेरी रक्षा करेंगे पुरुष। कहते अरक्षित दास।।६०।
सुनो है सजनजन सुजन। दोष न धरो महात्मन।।६१।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम त्रयोत्रिंशोऽध्याय।

— o —

चतुत्रिंश अध्याय (३४)
सर्वत्र अवधुत भाव पोषणसुनो

सुनो रे मन अब तुम मेरा कथन। सहना गोरु के समान।।१।

सभी जीव जन्तुओं के क्रोध। सहना सम करो बोध।।२।

कोई तो प्रहार करेगा। कोई जो गाली ही बकेगा।।३।

जीवजन्तु हिंसा सारी। सहन कर कहना हे हरि।।४।

कहना क्यों कोप किया भी अपन। करना उसीको नमन।।५।

मुझसे कों अन्याय देखकर। कोप किया क्या आप मुझपर।।६।

इस प्रकार सोचे मनहीमन। सब सहलेना करे समाधान।।७।

वृक्ष पाषाण प्राय सहना। तब शरीर बचाए रहना।।८।

नाशा से बहकर पवन। करता सु-दुर्गन्ध आघ्राण।।९।

उसी प्रकार तुम भी होना। गन्ध दुर्गन्धि भोजन करना।।१०।

कान जो सब कुछ सूने। पाप पुण्य वह मही माने।।११।

उसी प्रकार तुम भी होना। तभी माया मोह तुम तर जाना।।१२।

नेत्र जो सब देखता है। सभ्य असभ्य न मानता है।।१३।

उसी प्रकार तुम होना। तो जगमें सुखसे रहपाना।।१४।

देखो जिह्वा जो सर्व खाए। स्वाद अस्वाद नुकर जाए।।१५।

इसे अपना ध्येय करे। तब न भाव सागर तरे।।१६।

झूठ सच जो हैं दो जन। ये दोनो होते हैं समान।।१७।

स्पृश्य अस्पृश्य न चिरना। दानोंको समान देखना।।१८।

मिष्टान्न और आम अन्न। ये दोनों होते हैं समान।।१९।

(निःसंखुड़ी और संखुड़ी दो शब्द हैं ओड़िआ भाषश में। निसंखुडी के लिए वेसे कोइ पावन्दी होती नहीं। मिष्ठान्न समान सामान्य हाथ मुंह धोलो तो चलेगा। पर संखुड़ी के लिए बरतनों को मांजो। खाने की जमीन लीपो पोंछ। कही और जगह अन्नकण गिरे तो उसके लिए भी वही रीति। बस ओड़िशा में भारतीय अन्य प्रान्तों की यह रीति नहीं है। कठोर भी नहीं। श्रीमंदिर महाप्रसाद व्यवस्ता में शब्दो का प्रचलन तो है पर मुक्त - अनुवादक)

तु मन कुछ नहीं बिलगना। इनको समान देखना।।२०।

एक ॐकार सब करते। सभी उन्हीं में समाजाते।।२१।

स्वाद अस्वाद वीचारें। सुने बस आंखों से निहारे।।२२।

स्वाद अस्वाद तू दखना। उनको समान कहना।।२३।

देखो ॐकार सब में हैं। सब समान देखते हैं।।२४।

तू भी इसी भाव से रहो। ॐकार भाव लिये रहो।।२५।

कर्म अकर्म हैं तो सम। ये दानों होते हैं भी सम।।२६।

शुभ अशुभ न सोचना। दानों को समान देकना।।२७।

अच्छा बुरा हैं नहीं सुन। ये दोनो है जो समान।।२८।

सुख दुःख हैं नहीं सुन। ये दोनों हैं जो समान।। २९।

चिन्ता अचिन्ता तू न कर। दोनों को समान विचार।।३०।

भय अभय न सोचना। दोनों को समान मानना।।३१।

साधु असाधु तम न सोचना। दानों को समान मानना।।३२।

धर्म अधर्म कुछ भी नहीं। ये दोनौं एक समान ही।।३३।

पाप पुण्य तुम सोचना नहीं। ये दोनो एक समान ही।।३४।

स्वर्ग नर्क में फर्क नहीं। ये हैं वनाम एक ही।।३५।

नित्या स्तुति को तुम सहना। दानों को सान मानना।।३६।

विकार अविकार जान। ये दानों होते हैं समान।।३७।

जाति अजाति जान। ये दोनों एक ही समान।।३८।

देह अदहे तुम न मानना। दानों को एक विचारना।।३९।

जीव अजीव न मानना। दोनों को एक विचारना।।४०।

सूर्य चन्द्र तो एक जान। दानों हैं एक ही समान।।४१।

दो आंखों से जो भी है। वे तो समान ही है।।४२।

दो नाशिका रन्ध्र जान। ये हैं ही तो समान।।४३।

जो होते हैं दो कान। ये भी तो होते हैं समान।।४४।

गुह्यद्वार जो है दो द्वार। उसे तू समान विचार।।४५।

मुख से जो कहता है। अच्छा बुरा तो कहता है।।४६।

मूर्खता समान जानता। दोनो को एक विचारता।।४७।

स्त्री और पुरुष को जान। ये दोनों एक ही समान।।४८।

स्वर्ग मंच पाताल हैं तीन। तीनों है एक ही समान।।४९।

ब्रह्मा विष्णु शिव ये तीन। ये हैं एक व समान।।५०।

जल पवन अग्नि होए। ये तीनों एक ही अंग हैं।।५१।

एक ॐकार सर्वज्ञान। अलग करदिया वह पुनः।।५२।

लीला के लिए भिन्न हुए। माया को समझ न पाए।।५३।

विहरा लिए नवद्वार। जोड़ से जोड़ बराबर।।५४।

रोम रोम ले विहरता। रूप अनन्त ले संवरता।।५५।

आज्ञा को शिरोधार्य किये। दुःख-सुख वह भोगता है।।५६।

जनमता मरता है वही। एक समान दोनों हैं ही।।५७।

जन्म मरण न तेरा होगा। दानों को समान देखेगा।।५८।

परायो घर में तुम हों। अपना नहीं जानते हो।।५९।

घर अपना तू याद कर। पराया घर तज कर।।६०।

यह तुम जान नहीं पाते। देह को मेरी जो बोलते।।६१।

ॐकार परम पुरुष। कहते अरक्षित दास।।६२।

सुनों हे सुजन सज्जन। पराया घर है यह रे मन।।६३।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डलगीता कथने नाम चतुःत्रिंशोऽध्याय।

— ० —

पञ्चत्रिंश अध्याय (३ ५)

परतत्व कथन

नमो नमस्ते हे चैतन्य। परपुरुष क्यों है नाम।।१ ।

कौन कहता पराया घर। कहना तुम मुडे खुलकर।।२ ।

जीव अजीव से भरा है। न होनेवाली जगह नहीं है।।३ ।

क्यों हे परम पुरुष। तोड़ो संशय हृषिकेश।।४ ।

जिसका परापर नहीं। उस गर्भ में आतजात होइ।।५ ।

अपना घर कौन हुआ। पराया घर कौन भया।।६ ।

मर्द्दल रूप अपना घर। मुझसे कहो दया कर।।७ ।

सभी उसीमें से जनमते। सब उस गर्भ में रहते।।८ ।

पराया घर कौन हुआ। यह मुझमें संदेह जगाया।।९ ।

परम पुरुष क्यों कर। होता है एक पाराया घर।।१ ० ।

यह तो मुझे कह दोगे। इसी देह में समझाके।।१ १ ।

हे मन तू नहीं जानता। पराया घर में रहता।।१ २ ।

यह देह को पराया कहता। उसी में लीला तु करता।।१ ३ ।

मैं भी तुम्हारे संग हूं रहता। इस देह में हो भटकता।।१ ४।

पराया घर देह जानों। उसी में वास किया पुनः।।१ ५ ।

अतः हे परम पुरुष। अब कहूंगा सुनो रस।।१ ६ ।

लीला के लिए जात होए। खुद पराया घर कहे।।१ ७ ।

अब उपमा तुझे दूंगा। संशय मोचन करूंगा।।१८।

लोहार धुकनी चलाता। पवन गरजन करता।।१९।

हाथ यद्यपि न चलेगा। पवन निशबद होगा।।२०।

इसी प्रकार यह शरीर। इसे समझे हेतु कर।।२१।

शबद निशबद हो जब। नाश जाएगा यह घट तब।।२२।

शब्द को कहते पराया घर। हे मन सोचो चेत कर।।२३।

निशबद होने पर सुन। जाता अपना घर पुनः।।२४।

नयन यह देह रहते। कुछ दिखाई नहीं देते।।२५।

देह में कानों के रहते। कुछ सुनाई नहीं देते।।२६।

नाशा रन्ध्रें के रहते। शांस कदापि न चलते।।२७।

वही मुख के रहते पुनः तब और न स्फूरे वचन।।२८।

वही हाथ व पैर हाते। पर वे चल नहीं पाते।।२९।

लिंग गुह्य द्वार तो होते। वे मलमूत्र न तजते।।३०।

वही हृदय उदर होते। भूख प्यास ही नहीं होते।।३१।

देह में वही पवन होता। पर तन अशोभी लगता।।३२।

निद्रा भय जो छूट गया। निश्चिन्त हुए वह रहा।।३३।

नाड़ी सातसौ बाहत्तर। वे पड़े रहते हो स्थिर।।३४।

चौषठ व्याधियों को तजे। प्रकृति गणों को बरजा।।३५।

सुख दुःख को विसराए। रहा वह देह ही में खोये।।३६।

पूर्ण रूपमें तो भराथा। कैसे शरीर नाश जाता।।३७।

इसे समझे तो जानेगा। पराये घर को रखेगा।।३८।

नहीं तो कभी न रहेगा। अवश्य घट नाश होगा।।३९।

वही पवन वही देह। को नाश जाता है कहो।।४०।

पवन नाश न होता है। उस ही देह में होता है।।४१।

जो है देह को नाशता। उसे कोई भी न जानता।।४२।

परम पुरुष को चीह्नो। वह देह तोड़े जानो मन।।४३।

वह पवन दहे में टिक्कर। रहता रक्त मांस में लीन होकर।।४४।

अत: वह घर नाश गया। पराया घर वह कहाया।।४५।

अत: वे परम पुरुष। घटघटों में करे वास।।४६।

इच्छा से देह धरे होते। इच्छा न करें तज देते।।४७।

इच्छा हो तब देह जात। एक पुरुष दो मत।।४८।

पराया घर वही जानों। अपना घर वह है मानो।।४९।

लीला के लिए भिन्न हुआ। आज्ञा से सब जात किया।।५०।

नाम स्वर्ग मर्त्य पाताल कहूं। पराया घर जानों कहूं।।५१।

छप्पन कोटि जीव पूरे। पराया घर हैं सारे।।५२।

सप्त सागर पराया है। नवखण्ड मही पराया है।।५३।

चौदह भुवन समेत। पराया है जानों चित्ते।।५४।

चाण्डाल से ब्रह्म है। सारे पराया कहलाएँ।।५५।

काक से गरुड़ पुन: सर्व पराया है जानो।।५६।

इन्द्र से ले सारे देव। पाराया है सर्वेव।।५७।

मेरु से ले सारो पर्वत। पराया है जानो तुम तो।।५८।

अश्वत्थ से ले सारे वृक्ष। पाराया है यह प्रत्यक्ष।।५९।

सूक्ष्म कीट से सिंह जो हैं। पराया घर ही सब है।।६०।

सोना से हीरा तक जानो। पराया घर है यह मानो।।६१।

चांदि से लोहा पर्यन्ते। पराया घर है धरो चित्ते।।६२।

खट्टा से तेज तक पुन:। पराया घर है यह जानो।।६३।

नील से रङ्ग तक मानो। पराया घर हैं यह जानों।।६४।

षड़ऋतु पराया घर है। एक पुरुष सकल है।।६५।

चन्द्र सूर्य और तारागण। पराया घर है यह जानों।।६६।

चार मेघों को पराया कहें। चार वेद भी पराया है।।६७।

जल पवन और अग्नि है। ये भी पराया घर हैं।।६८।

चलन्त चौदह कोटि जीव। पराया घर है भी सर्व।।६९।

निश्चल चौदह कोटि जो है। पराया घर भी सब हैं।।७०।

डूबन्त चौदह कोटि जीव। पराया घर है जानो सर्व।।७१।

उड़ते चौदह करोड़ हैं। पराया घर व सब है।।७२।

नभ से मही तक जानों। पराया घर हैं यह मानो।।७३।

एक पुरुष दो भये। करता लीला सभी ठाहें।।७४।

एक से नाना वर्ण होए। पराया घर वह भी है।।७५।

हे मन पूछा है तुमही। पराया घर है यह देही।।७६।

यह घर जब तजे जाए। अपने में तब प्रवेश पाए।।७७।

पराया घर की इच्छा अगर। आज्ञा को चीह्नो तुम गरुर।।७८।

परम पुरुष को बाँधो। तब रहेगा तेरा स्कन्ध।।७९।

अन पाश में तुम बाँधना। तब ही युगयुग रहना।।८०।

पाश से एकड़ा न जाए। खोजो ब्रह्माण्डे नाही होए।।८१।

तुझे जो मैने कहा है। समान करे देखना है।।८२।

राखो तुम परम पुरुष। कहता अरक्षित दास।।८३।

सुनो है सज्जन सुजन। करो परम का चिन्तन।।८४।

नहीं तो यह पराया घा। तजे रहोगे अपना पुर।।८५।

पैंतीस अध्याय सम्पूर्ण। मही मण्डल गीता नाम।।८६।

यह गीता भेद करे जो रहे। जन्म मरण चिन्ता न होए।।८७।

युगे युगे घट रहता है। पवन प्राय वह होए।।८८।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम पंचात्रिंशोऽध्याय

— o —

षट्त्रिंश अध्याय (३ ६)
खण्डगिरि त्याग और ओलाशुणी गमन

जयजय शून्य पुरुष। अरूप रूपे क्यों है वास।।१ ।
जय तु जय परंब्रह्मा। परम पुरुष तेरा है नाम।।२ ।
यह परायी देह में तुमही। क्यों भी वेसे तुम माया देही।।३ ।
इस देह से क्या सुख पाते। क्यों यह दु:ख से भटकते।।४ ।
तुम्भरी देह से मुझे जात करे। पराया घर में रखे मारे।।५ ।
मै तो इस शीर में रहा। तुम्भरी सेवा छोड़दिया।।६ ।
अहो हे परम पुरुष। पराये घर में क्यों है वास।।७ ।
इइ परायी देह में मुझे रखकर। क्यों मुझे सताते मारकर।।८ ।
इस परायि देह में मैं रहा। प्रकृतियों का वश हुआ।।९ ।
इस परायी दहे से मुझे मुक्त। पार करो व्यथा पाए चित्त।।१ ० ।
इस परायी देह महं रहा। सेवा तुम्हारी कर न पाया।।१ १ ।
मुझे प्रकृति गण लेते। इतउत वे घांक लेते।।१ २ ।
मैं उन्हीं के काबू में। आ रहा पराये घर में।।१ ३ ।
यह परायी दहे में रहकर। कहते क्यों मारते हैरान कर।।१ ४ ।
यह पराये घरमें टिके हो। क्यों यह कष्ट भोगते हो।।१ ५ ।
पराया घर छोड़ो, सुनो। उसमें कोई काम नहीं, मानो।।१ ६ ।
अपने ठौर को चले चलें। यह घर देह तजे चलें।।१ ७ ।
इस पराये घर में हुए, कहूं। किस भांति मैं भटकाहूं।।१ ८ ।
पहले खण्डगिरि में रहा। छोड़े मैं अरण्य को आया।।१ ९ ।
भो परम सुने महानुभव। ओलशुणी पर्वत पर अब।।२ ० ।
माया कर आपने भूलाया।। लाये यहां तो रखवाया।।२ १ ।

अब यहां स्थिर लिये राखो। भटकते भोगा काफी दुःख।।२२।
भकति योग न देते हो। क्यों भरमाये मारते हो।।२३।
भक्तियोग की आशा नहीं। कष्ट मैं सह पाता नहीं।।२४।
अब इस पर्वत से पुनः। कहीं न लेना नारायण।।२५।
खण्डगिरि में मैं जो था। तुम्ही दया से रची गीता।।२६।
गीता में तुम्हरी आज्ञा कहा। खण्डगिरि तज चला आया।।२८।
बाला कि भकति साधूंगा। महावन में प्रवेशूंगा।।२९।
यह जगह है भीड़ चंचल। रहूं तो होगा ही निष्फल।।३०।
लोग अनके आए मिले। उनके तकराल से ध्यान गले।।३१।
उनके सङ्ग मैं टिककर। क्यों मरता अस्थिर हो कर।।३२।
सोचा प्रभु ने माया की है। भारी बोझ सर पर लादे हैं।।३३।
एकान्त रहूंगा सोचता। प्रभु जो करने न देता।।३४।
हे प्रभु तुम दया करो। भकति दो स्वामी मातर।।३५।
हे मन सुनो जो कहूं तोही। संसार सुख छोड़े तुमही।।३६।
वन में अकेला रहना। बस पानी पीकर रहना।।३७।
जमीन पर सोजाना है तुमही। आसन अरण्य में नहीं।।३८।
ठंड में शीत तू सहेगा। वन में वस्त्र न मिलेगा।।३९।
ग्रीम उत्तम में रहना। पत्थर की तरह है सहना।।४०।
झकेर में वरषा झोलेगा। घर तो वहां न पाएगा।।४१।
तू करे ये सारे सहन। तो, टिकाय रखूंगा तेरा तन।।४२।
न सहो तो तुम मरोगे। हम भी देह तज देंगे।।४३।
अब उस सुख को तुम छोड़े। दुःख को आदर से जोड़ो।।४४।
दुःख सुख ये दोनों मानो। एक देह भोगते हैं जानो।।४५।
कोइ एक को न छोड़ते। सर्वदा विवाद करते।।४६।

दु:ख कहता बड़ा मैं हूं। सुख बोलता मैं बड़ा हूं।।४७।
ऐसे हैं सुख दु:ख जानो। और कथा एक कहूं सुनो।।४८।
माता के गर्भ में जब थे। बहोत कष्ट ही तो पाए।।४९।
वह कष्ट कहताहूं सुनो। माता गर्भ का कष्ट पुन:।।५०।
पंचवॉ माह जब हुआ। जीवन संचारित हुआ।।५१।
हाथ पैर और फिर नाड़ी। चाम थैली में पड़ी पड़ी।।५२।
वहां घूमने की जगह न पाए। उसी से तुम छटपटाए।।५३।
पेट में मल मूत्र होकर। रहते उसीमें सनकर।।५४।
अंधेरे घर में रहते। तालू तरफ से खाद्य खाते।।५५।
जब आ दश माह हुआ। तुम्हें कुछ तो ज्ञान हुआ।।५६।
इस भांति तुम सात दिन। चिते कर नामका चिन्तन।।५७।
जब अपने नाम चिन्तन किया। तब गर्भ में प्रभु दरशन पाया।।५८।
प्रभु ने पसन्न होकर। कहा जो जाहो मांगों। तुम तत्काल।।५९।
हे प्रभु मुझे यह गर्भ क्लेश। पार करो है हृषिकेश।।६०।
क्यों भी मुझे जात किया। कष्ट भी असह्य ही दिया।।६१।
अंधार घर में रहदाहूं। छटपटांए मरता हूं।।६२।
किस ओर दिशा है बताओ। पार करके मुझे लेओ।।६३।
इइ कष्ट से जब होऊँगा पार। सेवूंगा तुम्हे अकुपार।।६४।
कहदे अरक्षित दास। गर्भ कष्ट है बड़ा त्रास।।६५।
सुजन सुने जो बात मैने कही। गर्भ कष्ट से कष्ट नहीं।।६६।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डलगीता कथने नाम षटत्रिंशोऽध्याय।

— o —

शप्तत्रिंश अध्याय (३७)
दशविध रूप वर्णन

अहो चैतन्य सुनो तोही। बोला करो हे त्राहित्राहि।।१।

हे प्रभु दया हुई मुझपर। गर्भ निकाले धकेलकर।।२।

बोले योनि पथ से जाओ। भूमिष्ठ हुए नाम ध्याओ।।३।

और भूमिष्ठ जब हुआ। माया से नाम छोड़ दिया।।४।

हाय शब्द जो तुम ने किया। बोला नाम जपन क्यों छोड़ दिया।।५।

वह तो गर्भ हेतु गया। माया प्रकृति ढँकलिया।।६।

अज्ञान पिण्ड तेरा हुआ। नाम अपना तजा है जहाँ।।८।

नाड़ी तुम्हारी काटकर। नाल रक्त को भी धोगर।।९।

जच्चा घर में संकेत। भीगा कपास दूध भी पिलाते।।१०।

टुकड़ा भर वस्त्र बिछाकर। सुलाया करते उसपर।।११।

कपड़े पर तू पड़ा होता। मलमूत्र में सना होता।।१२।

हाथों से मल-मूत्र लेते। और उसे तुम चाटे खाते।।१३।

जब उसे माता देखती है। कपड़ा लिए पांछती है।।१४।

इस भांति अज्ञान तुम होए। अपना मल स्वयं खाए।।१५।

फिर पलटे होकर उत्तान। हाथ पैर करते संचालन।।१६।

और जब तुम्हें भूख लगे। पुकारू बेग से तू राके।।१७।

सुन कर माता दौड़े आती। स्तन दे दूध भी पिलाती।।१८।

कुछ तो बोल नहीं पाते। कष्ट से दिवस वीताते।।१९।

दिन व दिन तुम बढ़ने लगे। सुखभोग भी करने लगे।।२०।

मातृगर्भ में पहले रहा। मीन रूप में कष्ट सहा।।२१।

द्वितीय भये कूर्म रूप। तब भी पाया कष्ट ताप।।२२।

तीसरा वाराह बन कर। अज्ञान भटकते धरा पर।।२३।

चतुर्थ रूप नरसिंह। बलिष्ठ होने लगी देह।।२४।

पाँचवे वाम रूपमें। चलने लगा धीमेधीमे।।२५।

छठे में पर्शु रूप धरे। न थमें धरा पर फिरे।।२६।

सातवें भये रूप राम। ज्ञान संकल्प अभिराम।।२७।

अष्टम बलराम रूप। हरण करे सारे दर्प।।२८।

नवम रूप बुद्ध होगा। बुद्ध रूप में क्या करेगा।।२९।

दशम कल्की रूप होगा। मरण तुझे आ धेर लेगा।।३०।

अब जो तेरा है राम रूप। टिकाए रखना अनुप।।३१।

दु:ख में जब नाम का चिन्तना। यह राम शरीर रखना।।३२।

मत्स्य कच्छ वाराहा रूप। बढ़ते आए हो अद्यप।।३३।

नृसिंह वामन रूप ही। पर्शध्र हुए बढ़े तुम ही।।३४।

घरपर छ: अवतार बढ़े। सप्तम में घर आए छोड़े।।३५।

राम रूप में बोध हुआ। तब तू घर छोड़ आया।।३६।

आते ही भोगे नाना दु:ख। फिर भोगा नानाविध सुख।।३७।

अब तू दु:ख दोही। इस देह में भोग करते ही।।३९।

पहले दु:ख भोग हुआ। फिर सुख का भोग हुआ।।४०।

दु:ख को आगे तुम रखना। सुख को पीछे रखलेना।।४१।

इस प्रकार दु:ख सुख होते। वाद कर शरीर नाशते।।४२।

ये दोनों वचराचर हैं। भोग करते सभी ठाहें।।४३।

यह तो जान नहीं पाते। सब सदा सुख ही चाहते।।४४।

मातागर्भ से दु:ख पाए। अब तजो न छूटता है।।४५।

मानव देहे सुख नहीं। नाना व्यधियां भरी हुई।।४६।

शस्त्र धरे व्याधियां चौषठ। चिन्दियों में सकती हैं काट।।४७।

नीचे गिर कर कष्ट पाओ। मरण तक को भी चाहो।।४८।

अति दु:ख से जन्म हुआ। मरते फिर दु:ख पाया।।४९।

सुख इस देहको है कहां। सदा भुञ्जता दु:ख जहाँ।।५०।

वह यदि दु:ख आदरता। युगान्ते शरीर भी होता।५१।

अक्षय अमर होकर। सुख भोगता निरन्तर।।४२।

दु:ख को करे अनादर। बेचारा सुख जाए मर।।५३।

बड़ा भाई है दु:ख जानो। सुख को छोटा भाई जानो।।५४।

बड़ा क्या छोटे को रखता। लौ आगे पतङ्ग टिकता ?।।५५।

अग्नि है दु:ख यह जानो। पतङ्ग सुख है यह मानो।।५६।

दु:ख के आगे सुख क्या होता। बाघ क्या बकरी को रखता।।५७।

बाघ दु:ख है बकरी सुख। मेढ़क न होता साँप सम्मुख।।५८।

साँप दु:ख मेंढ़क सुख होता। आगे बिल्ली चूहा न रखता।।५९।

बिल्ली दु:ख, चूहा सुख होता। अग्नि शीत को टिकने न देता।।६०।

आग दु:ख है शीत सुख। नजाने सुख चाहे सुख।।६१।

दु:ख का आदर यदि करता। नित्य सुख को वह भोगता।।६२।

दु:ख में यदि नाम लेते। क्यों इस देह विनाशते।।६३।

देखो चांद सूरज हैं दु:ख में नाम जो लेते हैं।।६४।

जल पवन अग्नि जो हैं। दु:ख में नाम ले अमर हैं।।६५।

अमर वासुकी धरती। दु:ख में नाम जपा करती।।६६।

तेतीर कोटि देव सारे। अमर दु:ख में नाम धरें।।६७।

ब्रह्मा विष्णु व शिव जान। दु:ख से नाम का चिन्तन।।६८।

अनन्त कोटि साधु सारे। दु:ख में चिन्दन जो करें।।६९।

ये सारे दु:ख में नाम लेकर। हैं सारे सुख भोग कर।।७०।

सबने दु:ख अपनाये। रहे वे अमर भये।।७१।

कहते अरक्षित दास। दु:ख न सहे मनमें त्रास।।७२।

हे सुजन जन मैं कहूं। दु:ख न झोले नाश मैं हूं।।७३।

इति

श्री नाम चैतन्य संवादे

मही मण्डल गीता कथने नाम सप्तत्रिंशोऽध्याय।

— o —

अष्टत्रिंश अध्याय (३८)
मन तो है चतुर्द्धा मूरत

अरे कुमन तुझे कहूं। अब दु:ख को सहो तुहूँ।।१।
दु:ख में यदि तुम नाम लोगे। शरीर बनाए रखोगे।।२।
सुख को जो अपनाए। निष्ठा से आचरण किये।।३।
झूठे भटकते फिरते। अज्ञान से देवता पूजते।।४।
नाना द्रव्य देवता के लिये। परोसे आनन्द मनाये।।५।
उनसे जल अग्नि पवन। मिले न होते ये तीन।।६।
(अर्थात वह नैवेद्य पाक सिद्ध हुआ नहीं होता)
वे द्रव्य नैवेद्य कहलाते। उच्चिष्ठ अर्पण न होते।।७।
ये तीनों जहां न लगेंगे। उन्हें ही अझूठे मानेंगे।।८।
नहीं तो अन्यान्य जूठे है। अज्ञान वश कहते है।।९।
देवता तो हैं इसी देहे। मूढ़ यही न जापनता है।।१०।
पीतल काठ व पाषाण। पूजता देवता समान।।११।
गति मुकति देंगे नहीं। मूढ़ तो यह जाने नहीं।।१२।
देवता जो हैं देहधरे। उन्हें न पूजें मूढ़ नरे।।१३।
यह देह तज जब चलेगा। कौन देवता वह पूजेगा।।१४।
यह न जाने देव जिसे। आचारी बन पूजे उसे।।१५।
इस देह की देवता ही। अनआचारी है वही।।१६।
वह तो मरा आचारी बना। देव कौन न पहचाना।।१७।
जब कोई रोग आ जकड़ता। त आसन पर सोये रहता।।१८।
हाथ पैर जब नहीं चलते। उठाए लोग सूला जाते।।१९।
मल मूत्र तजता आसन पर। कहता क्यों न जाता मर।।२०।

ऐसे काफी दु:ख से मरे। निष्ठा आचार निष्ठा दूर करे।।२१।
तब वह आचार भी कहां। कौन देवता राखे जहाँ।।२२।
जनमते अनाचार जानों। मरो भी अनाचार ही से मानो।।२३।
जनमते काफी दु:ख पाए। मरते मरे दु:ख पाए।।२४।
आद्य प्रान्त तो दु:ख ही है। तो सुख कहां रहता है।।२५।
यह न समझते तुम ही। आचार में सुख रहे नहीं।।२६।
शरीर में मलमूत्र तो है। कैसा आचार करता है।।२७।
दन्त मूल में विष्ठा लिये। कैसा आचार करता है।।२८।
वह विष्ठा आता है कहांसे। सुनो मैं कहूहूं विशेषे।।२९।
पदार्थ नाना ले आकर। मुख से पेट भरकर।।३०।
जठर अग्नि तो होता है। वहां उसीका पाक होए।।३१।
उसीसे रस जात होता। रक्त मांस व अस्थि होता।।३२।
उसमें से अपाच्य जो होते। गुह्यद्वार हो निकलते।।३३।
वह अति शुद्धं होता। जठराग्नि में सिद्ध होता।।३४।
वह ही विष्ठा है कहाया। वास भी प्रकाशित हुआ।।३५।
मलद्वार से जब वह जाता। नासा से तू भी बू लेता।।३६।
विष्ठा तो नित्य ही खाते हो। क्या विचार करते हो।।३७।
वह विष्ठा अति शुद्धा जानो। दूध में घी के समान।।३८।
उस विष्ठा को दूध मैं बताता। उसीसे घी निकलता।।३९।
वह घृत रक्त मांस हुआ। उसमें भेद ही न रहा।।४०।
जिसके अनुभव होगा। प्रभु की दया वह जानेगा।।४१।
प्रभु की दया यदि नाहीं। यह भेद वह जानेगा नहीं।।४२।
यह भेद न जानते कोय। मरते वे आचारी होय।।४३।
इस देह का जन्म है अनाचार। और कथा एक याद कर।।४४।

देखो अनाचार है पवन। उससे बड़े को क्या तुम जानो।।४५।
देखो जटिल अनाचार। उनसे बड़ा है क्या नर।।४६।
देखो अग्नि है अनाचार। उनसे बड़ा है क्या नर।।४७।
पृथ्वी तो अनाचार है ही। उसकी कोई क्षय नहीं।।४८।
उससे बड़े को जानते हो? मरते हो जो अचेत हो।।४९।
देखो सूर्य हैं अनाचार। उनसे बड़ा हे क्या नर।।५०।
देखो चन्द्र हैं अनाचार। उनसे बड़ा है क्या नर।।५१।
आकाश तो हैं अनाचार। उनसे बड़ा है क्या नर।।५२।
ब्रह्मा विष्णु शिव तीन होते। अनाचार मौदिनी भटकते।।५३।
बड़ा इनसे क्या है कोई नर।। जग में करता क्या आचार।।५४।
सब तो अनाचारी होएँ। दुःख अपनाए सुख पाएँ।।५५।
दुःख का नाम न छोड़ते। हँसते खेलते नाचते।।५६।
ये सभी होकर अमर। लीला करते सदाकाल।।५७।
मनुष्ट गण देह धरे। दुःख छोड़े सुख इच्छा करे।।५८।
दुःख में नाम जो चीह्लेगा। आचार निष्ठा जो तजेगा।।५९।
वही अमर होकर रहे। नहीं तो मरे दुःख पाये।।६०।
इस रूप सुखदुःख जानों। अक्षित दास करता बखान।।६१।
अहो सजन जन कहूं। दुःख न अपनाए मुहूं।।६२।
सुख को नित्य मैंने चाहा। दुःख में नाम न भजे मरगया।।६३।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डलगीता कथने नाम अष्टत्रिंशोऽध्याय।

— o —

उनचत्वारिंश अध्याय (३ ९)
प्रह्लाद राम कथा वर्णन

अरे कुमन कहूं तोही। दु:ख में नाम लो तुमही।।१ ।

दु:ख में नाम का करो चिन्त। औक कथा एक अब सुनो।।२ ।

हिरण्य पुत्र प्रहल्लाद। तरगया ननान प्रसाद।।३ ।

नाम चिन्तन किया जाही। हिरण्य कोप किया ताही।।४ ।

विष्णु तो मेरा वैरी है। क्यों उसका नाम लेता है।।५ ।

अब तू विष्णु नाम छोड़ो। शिव नाम तू नित्य पढ़ो।।६ ।

शिव नाम का करे भजन। सप्तद्वीप का होगा राजन।।७ ।

कहा वह सुनना हो तात। शिव नाम में न होऊँ मुक्त।।८ ।

शिव तो विष्णु नाम ध्याये। अमर बन कर वे हैं।।९ ।

शिव नाम में मुक्ति नहीं। विष्णु नाम मैं छोडूं नहीं।।१ ० ।

सुने हिरण्य कोप किया। नग्र दण्डक को बुलाया।।१ १ ।

कहा वह कुमर को लेना। नग्र के बाहर काट देना।।१ २ ।

राजा के सुख से सुनकर। काट दिया बाहर डरकर।।१ ३ ।

प्रभु वह जानकर आए। जीलाए घर जाओ। कहे।।१ ४ ।

सुन कर प्रहल्लाद आया। पिता के आगे पहंच गया।।१ ५ ।

देख राजा ने कोप किया। हाती कुचलाया सांप से डँसाया।।१ ६ ।

तब भी उसने न नाम छोड़ा। तब हिरण्य-क्रोध चढ़ा।।१ ७ ।

जहर देकर मरवाया। ढेंक से भी कूटवाया।।१ ८ ।

प्रभु वह जानकर रखते। देख हिरण्य कृपिता होते।।१९।

सागर में बाँधे छोडे वन। देखा न मरता नन्दन।।२०।

एक दिन देखा मण्डप पर। बेटे का केश जकड़ कर।।२१।

आज कौन बचाएगा तुझे। कहां है विष्णु दिका मुझे।।२२।

बोला वह घटघट में होते हैं। इस स्तम्भ में विराजे हैं।।२३।

केश छोड़ वह गया तुरत। स्तम्भ को जोर मारी लात।।२४।

आकर हिरण्य को मारा। आज्ञा दे प्रह्लाद सँवारा।।२६।

ये तेरा पिता अब मरा। तुझे यातना देकर मरा।।२७।

बेहद यातना तुमने पायी। अब सुख भोगो तुमही।।२८।

स्वर्ग में इन्द्र तुम बनोगे। वहां भी सुख तो भोगोगे।।२९।

अन्त में अमर तुम होहो। नाम को नित्य ध्याये रहो।।३०।

अन्तर्द्धान हुए इस प्रकार। प्रहल्लाद को आज्ञा देकर।।३१।

इस भांति प्रहल्लाद वीर। रज्य का बना नृपवर।।३२।

दु:ख में नाम उसने लिया। मारो तो मर नहीं गया।।३३।

प्रसन्न हुए प्रभु उसपर।। तो रखा करके अमर।।३४।

हिरण्य नाम जपा नहीं। सुख चाहते मरा वही।।३५।

रे मन दु:ख में नाम लेना। तो तुम कभी न मरना।।३६।

रह होए अक्षय अमर। सुन कहताहूं जो गीर।।३७।

ध्रव जो माता के छल से। गया, नाम जपा वह मनसे।।३८।

प्रभु प्रसन्न हो आज्ञा दी।। ध्रुव मण्डल में जगह दी।।३९।

अमर हो युगयुग रहो। अनेक सुख वहां पाओ।।४०।

दु:ख में नाम जो है लिया। हरि ने आशीर्वाद दिया।।४१।
ध्रुव हैं अमर बन कर। सुन बातेक कहूं और।।४२।
त्रेतया युग में श्रीराम। पिता सत्य का कर पालन।।४३।
चौदह वरष वन में वीताए। नाना प्रकार वे दु:ख सहे।।४४।
ग्राम जनपद न देखते। अरण्य ही में रह जाते।।४५।
ग्रीष्म वारिश शीत सहे। पल्लव शय्या पर सोये।।४६।
कन्दमूलादि फल खाए। रहे दु:ख को अपाए।।४७।
इस भांति रहे अरण्य में। रावण आ छद्म रूप में।।४८।
सीता का देखे एकान्तपन। बल छल से कर लिया हरण।।४९।
अशोक बन में रखा लेकर। दु:ख उनका हुआ न दूर।।५०।
जगन्नमाथ ठकुराइन। सहे दु:ख व्यतीत कर दिन।।५१।
एकान्तता में वे थीं जीती। नाम का ध्यान ही करतीं।।५२।
वन से राम लछमन दो भाई। आए देखा सीता कुटीर पर नहीं।।५३।
खोजते समस्त वनस्त। मिले वे सुग्रीव सहित।।५४।
उसके साध मित्र बन। किया वह बाली का नाशान।।५५।
सुग्रीवर जो दु:ख सहे। पर्वन पर छिपाथा आए।।५६।
राम ने बाली को मारकर। किष्किन्ध्या सुग्री को दे कर।।५७।
राज्य में बनाए नरपति। सुख भोगा वह नाना मती।।५८।
पाली जो सुख ही को चाहा। स्वल्पकाल में नाशगया।।५९।
सुग्रीव दु:ख में नाम लिया। सुख सम्पदा भोग किया।।६०।
दु:ख में नाम लिया सुगरीव। उसपर दया हुई अतीव।।६१।

बाली नाशकर उसे लेकर। रावण मारे सीता मुक्त कर।।६२।
विभीषण को राज्य देकर। क्यों कि दु:ख में नाम लेकर।।६३।
शरण ली और प्रभुने दया की। अमर हुए रहो की आज्ञा दी।।६४।
विभीषण ने नाम ध्याये। अमर हो अबभी है।।६५।
रावण सुख चाहे ही मर गया। अल्प काल में नाशा भया।।६६।
विभीषण लंकेश बनगया। दु:ख में नाम जो अपनाया।।५७।
विभीषण को लंगा देकर। सीता ले लौटे रघुवीर।।६८।
अयोध्या पुरी पहुंच कर। अभिषिक्त हुए राघव वीर।।६९।
पहले दु:ख का सहन। सुख भोगे हैं बाद में राम।।७०।
वे प्रभु स्वयं ब्रह्म जानो। दु:ख वे अपनाए पुन।।७१।
दु:ख करता हैं तो वही। उन्होंने चाहा फिर दु:ख ही।।७२।
सुग्रीव और विभिषण। सुख आपने किया है प्रदान।।७३।
क्यों कि दु:ख में नाम ध्याये। आपने उन्हें सुख दिये।।७४।
जिसकी आज्ञा से दु:ख जाए। वह दु:ख अपनाये सहे।।७५।
दु:खको कोई न छोड़ते। ब्रह्मा शंकरदेव अपनाते।।७६।
कहते अरक्षित दास। सभी दु:ख की करो आस।।७७।
सुनो आप हे सुजन जन। दु:ख-महिमा करूं में वखान।।७८।

इति
श्री मन चैतन्य संवादे
महीमण्डल गीता कथने नाम उनचत्वारिंशोऽध्याय

— ० —

चत्वारिंश अध्याय (४०)
दु:ख महिमा कथन

अरे कुमन कहता हूं सुनो। द्वापर की कथा दुहराए पुन।।१।
पञ्चपाण्डव जात हुए। दु:ख कष्ट वे काफी सहे।।२।
दुर्योधन ने सुख चाहा। राज्य में रहने न दिया।।३।
वन अरण्यों में दु:ख पाए। गरमी, वरषा शीत सहे।।४।
बारह वर्षक का वनवास। भटके हैं वे देशदेश।।५।
घूमते द्रुपद राज्य में। द्रौपदी के स्वयंवर में।।६।
अर्जुन ने लक्ष्यभेद किया। द्रौपदी अंगीकार किया।।७।
विवाहोपरान्त वे आए। हस्तीना में उपस्थित हुए।।८।
युधिष्ठि, मानगोविन्द इ। खेल चौसर दानों भाई।।९।
चौसर में युधिष्ठिर ठाकुर। पांच राज्य हार गये सत्वर।।१०।
दुर्योधन जो जीत गया। पांच राज्यों का भोग किया।।११।
इन्हें सूच्यग्र भी स्थान। न देऊँ रनखुँ कहा तब राजन।।१२।
पृथिवी हारे वे सब गये। वनवासी वन दु:ख सहे।।१३।
विराट देश में छिपकर। नाम चिन्दन दु:के कर।।१४।
वे प्रभु उनके दु:ख जानी। दया की तब चक्रपाणि।।१५।
दुर्योधन को कूट कर मारा। पाण्डवों को राज्य दे सँवारा।।१६।
पहले दु:ख का सहन। फिर पांच सुखों का भाजन।।१७।
दुर्योधन ने सुख चाहा। भोग ना पाया मर गया।।१८।

दु:ख में पाण्डवों ने नाम लिया। राज्य सम्पदा भोग किया।।१९।

दु:ख वे अपनाए जाहीं। प्रभु ने सुख दिया ताहीं।।२०।

अब दु:ख अपनाओ तुम। कथा एक सार सुनों तुम।।२१।

इन्द्र जो सहस्त्र वरष। लोहा चना एक किया ग्रास।।२२।

किया अग्नि में देह दहन।। दु:ख नाम का किया चिंतन।।२३।

अमर-सुरपति किया। सुख का भोग करवाया।।२४।

दु:ख वह अपनाया जाही। प्रभु ना सुख दिया ताही।।२५।

शची भी दु:खे नाम लेकर। भोगती है अमर पुर।।२६।

दया की प्रभु ने उसपर। आज्ञा दी भोगो तुम अमर।।२७।

दु:ख में नाम का जाप किया। अमर वर उसने पाया।।२८।

ईश्वर ने तीन लाख युग। दु:ख में साथे ब्रह्मयोग।।२९।

अत: वे अमर में हैं। पृथ्वी प्रलय जो नहीं है।।३०।

उन्हों ने दु:ख में चिन्ता की। अत: प्रभुने दया भी की।।३१।

बसुदेव न दु:ख सहा। कंस ने ले कैद किया।।३२।

कारागार में पड़े रहते। दु:ख में नाम की चिन्ता करते।।३३।

प्रभु जो दु:ख जान पाए। उन्हीं के घर जन्म हुए।।३४।

जनमें देवकी काख में। विहरे जाकर गोप में।।३५।

प्रभु ने दु:ख अपनाया। गोप में गोधन चराया।।३६।

लता वन में गाय लेकर। चराते दु:ख सहकर।।३७।

ग्रीष्म वरषा झेलते। दु:ख सहन कर चराते।।३८।

नन्द ग्वाला की नन्द रानी थी। बेंत ले प्रहार करती।।३९।

वे प्रभु ब्रह्माण्ड ठाकुर। मार सहता चक्रधर।।४०।

दु:ख वे आदरते पुन:। वह प्रभु ब्रहाण्ड कारण।४१।

कंस ने अक्रुर को भेजा। बुलाए लिये ला भांजा।।४२।

कृष्ण को देख कंस मरा। क्यों कि वह सुख स्मरा।।४३।

उग्रसेन को राजा किया। दु:ख मोचन उसका किया।।४४।

जो उसने नाम कर चिन्तन। राज्य सम्पदा का भाजन।।४५।

बासुदेव के कारागार। श्रीकृष्ण उपस्थित तत्काल।।४६।

मुक्त किया हरि ने कारा से। दिया सुक भोगे आनन्द से।।४७।

पहले वे दु:ख पाए। बाद में सुख दिलाए।।४८।

प्रभु ही जब गोप में थे। अनाप दु:ख ही पाए थे।।४९।

गोप से द्वारका में जाकर। सुख भोगे हैं निरन्तर।।५०।

आप पहले दु:ख पाए। बाद में सुख ही न आए।।५१।

वे प्रभु ब्रह्माण्ड करता। दु:ख को स्वीको सर्वथा।।५२।

विचारें वे तो दु:ख नहीं। पर दु:ख को छोड़ता कोई।।५३।

दु:ख में उद्धव ने नाम लिये। ब्रह्मशाप से मुक्त हुए।।५४।

कृष्ण जिस श्राप से नाश भये। यदुवंश निर्वंश हुए।।५५।

उद्धव श्राप से उबरे। जो दु:ख में नाम स्मरे।।५६।

ब्रह्म श्रापी पतङ्ग हुआ। नाम अग्नि में दग्ध हुआ।।५७।

उसी से नाम न होता फलवन्त। नाम आग से श्राप अन्त।।५८।

ऐसी ही नाम की महिमा। दु:ख में करो नाम की भावना।।५९।

सत्ययुग में नारायण। दु:ख में नाम का चिन्तन।।६०।

कोई न छोड़ता दु:ख है। नाम परशुराम लेते हैं।।६१।

वे युग युग रहे। दु:ख में नाम लेते रहे।।६३।

कलि में चैतन्य ठाकुर। विख्यात हुए होके नर।।६४।

बोले दु:ख में दाम धरो। क्या सुख खोजता पामर।।६५।

दु:ख मे करो नाम का चिन्तन यदि। गति मुकति प्राप्त होगी।।६६।

क्यों मूरख भटकता फिरता। नाम की दु:खे चिन्ता करो।।६७।

तब तुम सुख ही भोगोगे। दु:ख और कभी न पाओगे।।६८।

इस प्रकार नरलोक में कहे। भावग्राही ओझल हो गये।।३९

अब कुमन दु:ख में नाम। ध्यायों नित्य ही तुम पुन: ।७०।

दु:ख में नाम लो अवश्य। कहते अरक्षित दास।।७१।

सुनो जन जन कहें। दु:ख की महिमा यही है।।७२।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डलगीता कथने नाम चत्वारिंशोध्याय

— o —

एकचत्वारिंश अध्याय (४१)
अरक्षित के स्थल भ्रमण

चैतन्य सुनो मन यह कहता। दु:ख सहन मैं कर नहीं पाता।।१।
इस देह में को वास करे। कुछ न सहे मुझे मारे।।२।
निरत सुख की चाह करे। अनुक्षण भरमाये फिरे।।३।
हे प्रभु इस स्थल से तुमही। और कहीं भी लेना नहीं।।४।
पर्वत पर्वत फिरा कर। कहीं न रखा मुझे स्थिर।।५।
पहले केराण्डिमाल में। न राखे माया की मोरे।।६।
द्वितीय अमराई में रखलिया। तेरी माया से छोड़गया।।७।

(संथ ने तोटा कहा है। हिन्दी में वह अमराई। उनके लिए वह दिन भी आया था जब उन्हें किसी अमराई में भी टिकना पड़ा था। जो नाम इस अध्याय में उल्लखित हैं सभी उत्कल प्रान्त के हैं। हिन्दी के पाठकों को उसकी कोई जानकाी मिल नहीं पाएगी। अत: कोई जानकार जगहों की सही सूचना दें तो प्रकाश के समय उसे पादटीका के रूप में जोड़ देना समीचीन होगा। इसमे कवित्त नहीं महापुरुष ने अपनी अस्था विश्वास जताया है कि वे अपने मन से कही गये नहीं। सब परमपुरुष की इच्छा। मानो वे लेते गये उन्हें पसन्द न आयी तो लौटा लाए। ओलाशुणी पीठ प्रभु ने चुना है। फिर कहीं और चलने की इच्छा संथ ने भी की नहीं और इसी अध्याय में प्रभु से बारंबार कातर प्रार्थना करते वहां वे और न हटाने और स्थायित्वि प्रदान करने को। - अनुवादक)

तृतीय चित्रकुट लिया। पर वह स्थान छुडवाया।।८।

हुमा पर्वन की चाह हुई। न रहा इच्छा हट आयी।।९।

फिर डुबडुब पर्वत पर। न रखा, आया मैं हटकर।।१०।

रोबाल पर्वत की इच्छा। न लेकर रहगयी वह वाञ्छा।।११।

हेमन्तझोला पर्वत हीं। मैं चाहूं तुम चाहो नहीं।।१२।

फिर श्यामकुण्ड पर्वत। न लेकर तोड़ दिया चित्त।।१३।

उपरान्त योगी गुंफा जान। न रखा छुड़यिा स्थान।।१४।

उस पर महुरी पर्वत। न रखा हटादिया चित्त।।१५।

ततः पर चाङ्‌ुडीदेइ पर्वत। न रखा हटदिया चित्त।।१६।

ततः पर पाण्डरापड़ा पर्वत। न रखा हटादिया चित्त।।१७।

फिर चित्रकूट ले जाकर। ले आया स्थान छुड़ाकर।।१८।

फिर पुरुषोत्तम लिया। न रखा स्थान छुड़ा दिया।।१९।

फिर खण्डगिरि लेकर रखा। छुड़ाया स्थल की उपेक्षा।।२०।

नीलगिरी की इच्चा किह्नी। तेरी माया से गया नहीं।।२१।

डमपड़ा पर्वत ले गया। रखा पर फिर छुड़ा दिया।।२२।

सप्तशय्या को निकलते। चाह न रहने दी चित्ते।।२३।

कपिलास की इच्छा किह्नी। तेरी माया से गया नहीं।।२४।

महा पर्वत को गया। तेरी माया से लौट आया।।२५।

ज्वाला पर्वत को निकलते। चाह न रहने दी चित्ते।।२६।

अन्धारुआ पर्वत को गया। तेरी माया से लौट आया।।२८।

फिर कण्डगिरि ले आया। नहीं रखके छुड़वाया।।२९।
गुंफा मण्डली को ले आया। न रखा मन हटादिया।।३०।
धउलि पर्वत को गया। तेरी माया से लौट आया।।३१।
उदयगिरि पर्वत को गया। न रखा वहां से लौट आया।।३२।
वरुणाई पर्वत में रहूं जाहीं। इच्छा की वे तोड़ा ताही।।३३।
अटला पर्वत निमित्त। न रखा हटादिया चित्त।।३४।
धनाश्री पर्वत निमित्त। न रखा हटा दिया चित्त।।३५।
खारद पहाड़ी में चाही। वह मन तुमही तोड़ देही।।३६।
गोलवायु पडाड़ी में चाहा। तेरी माया ने तोड़ दिया।।३७।
सातपड़ा, बालिकुदा को ही। तेरी माया से गया नहीं।।३८।
मणिभद्रा जो है पर्वत। माया से होगया व्याहत।।३९।
मैं संबलपुर को निकला। तेरे माया से नहीं चला।।४०।
तालचेर की इच्छा जो की। तेरे माया से टिकी नहीं।।४१।
बाङ्गिणिआ पर्वत को गया। तेरी माया ने लौटालाया।।४२।
बड़ंवा पर्वत को देखा। तेरी माया ने नहीं रखा।।४३।
फिर से खण्डगिरि लाया। न रख कर भगवाया।।४४।
प्राची तट को पहुंचाया। वहां न रखा रखवाया।।४५।
तदन्त पारद्वीप जानों। रखा नहीं तुमने यह मानो।।४६।
कनिका जाने को जो मन। उसे तुम करलिया हरण।।४७।

केन्दरापाडा को लाकर। हर लिया मन ही को मोर।।४८।

अब ओलाशुणी पर्वत पर। लाए रख है प्रभुवर।।४९।

अब और न भरमाओ पुन। यहां ही रको नारायण।।५०।

ओलाशुणी पर्वत से तुमही। कहीं न लेना भावग्राही।।५१।

भक्ति मांगू तो क्या देते हो। क्यों भ्रमित कर मारते हो।।५२।

आशा अब टूटने लगी विभु। और न तरवाओ प्रभु।।५३।

यहां सुख से रहूंगा बैठकर। चल नहीं पाऊँगा कही और।।५४।

तुम्रीं रा तो पुनः। भगति दोगे नारायण।।५५।

नहीं तो अन्य योग कोई। मरजाऊँ न साधु गुसाईं।।५६।

हे प्रभु, मुझे और कहीं। न लेना, भरमाना नहीं।।४७।

यहां ही रको पीतवास। अरक्षित दास करे आस।।५८।

अहो सुधि सुजन जन। मेरा दोष न धरो प्रवीण।।५९।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डलगीता कथने नाम एकचत्वारिंशोऽध्याय

— ० —

द्विचत्वारिंश अध्याय (४२)
भक्तियोग प्रार्थना

अहो चैतन्य प्रभु माया। एसे भरमाती मेरी काया।।१।
तुम तो इस देह में हो। दु:खसुख न जानते हो।।२।
मैं ही इस देह में होकर। परेशान हूं निरन्तर।।३।
प्रकृति गण इस में होकर। काया को न रखते स्थिर।।४।
चौषठ व्याधियां देह में अहं। देह अनुक्षण नाशते हैं।।५।
उनके साथ मुझे रखकर। तुम हो निश्चिन्त होगर।।६।
मै मूषक रोग बिलाई है। बिल्ली क्या चूहा रखती है।।७।
मैं चूहा बिलाई है रोन। उनके साथ मेरा योग।।८।
बिल्ली क्या रखेगी चूहे को। रोग भी नाशेगा दहे को।।९।
साँप न रखे मेंढ़क को। साँप रोग मुझ मेंढ़क को।।१०।
बाच क्या बकरी को रखे। मैं बकरी बाघ रोग हो के।।११।
अग्न क्या पतङ्ग को रखे। मैं पतङ्ग आग वतयाधि होगे।।१२।
इस भांति सङ्ग मुझे दिया। पराये हाथ मरवाया।।१३।
तुम्हार दया यदि होती। बिलाई चूहे से डरती।।१४।
तुम्हारी कृपा के होनेपर। सांप रहता मेंढ़क से डर।।१५।
तुम्हारी करुणा के होते। वकरी से बाघ डरा करते।।१६।
तुम्हार प्रसन्नता जब होती। आग पतङ्गे कोन छूती।।१७।
ऐसी है तुम्हारी महिमा। निर्दय हुए मुझ पर ही न।।१८।

प्रकृतियों को तुमही कहकर। व्याधियों को भी आज्ञा देकर।।१९।
तुम्हारी आज्ञासे मारते। तिलार्द्ध दया न करे ते।२०।
दूसरे से मरवाते। स्वयं क्यों नहीं मारते।।२१।
आप ही मुझे मारकर। दया बरतो हे मुझपर।।२२।
दूसरे से नहीं मारो। इतना भर दयाकरो।।२३।
भक्ति न देकर अन्य हाथे। कहो क्यों मुझे मरवाते।।२४।
भक्ति योग यदि देते तुम। को मुझे मार सकता सक्षम।।२५।
प्रकृतियां चाकरी करतीं। दयों भी देह को नाशतीं।।२६।
तुमने ही देह जात किया। नाशते, क्या भी दोष हुआ।।२७।
दया सागर आपको माने। एक ही कथा मांगी थी मैंने।।२८।
भगति करूंगा साधन। मांगी था हे कृपानिधान।।२९।
भक्ति योग तो दिया नहीं। माया भूलाए रका माही।।३०।
सात बार वन में जाकर। एकान्ते भक्ति चाही हे ईश्वर।।३१।
अगम्य वनस्त में जाकर। भक्ति साधन चाह कर।।३२।
त्तवी चवतार से निकलता। तेरी माया से लौट आता।।३३।
सातसात बार तो निकला। हरबार ही लौट चला।।३४।
तुम्हारी दया यदि होती। यह आत्मा क्यों लौट आती।।३५।
एकबार में मैं साध्य करता। भकति योग को साधता।।३६।
किंचित यदि दया होती। भक्ति की प्राप्ति भी हो जाती।।३७।
न देने की योजना करते। मानस मेरे विरत हो जाते।।३८।
भगति योग विन मैं ही। अन्य योग मैं छूंउँ नहीं।।३९।

कैसे भक्ति की आशा करूं। और न वन भटके फिरूँ।।४०।
जाना मैं वह योग न दोगे। क्यों वनवन भटकाओगे।।४१।
सातबार मैं समझगया। अतः भरोसा छोड़ दिया।।४२।
केवल भरोसा है मारो। जो चाहो तुम वही करो।।४३।
आसरा है तुम पर कुछ और नहीं। मेरे मन में कुछ नाहीं।।४४।
वेतान्त मैं जानू ना हीं। है तुम पर भरोसा ही।।४५।
योगान्त न साधूं मैं सुनो। नाम पर भरोसा है जानो।।४६।
सिद्धान्त की न करता चाह। वस है तुम्हारे नाम से मोह।।४७।
नागान्त देहमें न रका। नाम आसरे सब छोड़ रखा।।४८।
तीरथ करने जाता नहीं। तुम्हरे नाम पर आस्था है ही।।४९।
व्रत में जानूं नहीं सुनो। नाम पर है भरोसा जानो।।५०।
देवता न पूजता कभी। नाम पर भरोसा है फिरभी।।५१।
होम जाप यज्ञादि जानो नजानूं, नाम भोरसे ही मानो।।५२।
तिलक नाम स्मरण ही। नाम के भरोसे पर ही।।५३।
मंत्र तंत्र व यंत्र सारा। नकरूं, आस है नाम पर मोरा।।५४।
अष्ठाङ्ग से ले योग सारा। नकरूं, आस है नाम पर मोरा।।५५।
पवन सूत्र चाहूं नहीं। ना गरोसा मेरा है ही।।५६।
सभी योग का सार यह है। वह तेरी भगति ही है।।५७।
भगति मांगते क्यों न दिया। घरसे मुझे क्यों छुड़ाया।।५८।
और योग में गति नहीं। मैं उन्हें साधूंगा क्यों ही।।५९।
भगति न देते तुम जिसे। तुम्हें पाएगा वह कैसे।।६०।

और यागों में वे भरमते। भगति कोई न जानते।।६१।
वह तो अगम्य योग कहते ही। जिसका थल कूल नाही।।६२।
भगति में थल न पाकर। नाना योग साधते तत्पर।।६३।
तुम्हारा धर्म है तो वही। आश्रा किये हो स्वयं तुमही।।६४।
तेरे विन कोई न साधते।। ब्रह्मा शंकर न सकते।।६५।
इन्द्र चन्द्र सूर्य वरुण। इस में आये नहीं पुन।।६६।
अग्नि, पवन जल कोय। इस योग में नहीं आए।।६७।
मुनिगण भी आए नहीं। ध्यान सूत्र में हैं समाही।।६८।
नर देह धरे मैं हूं। नजानू पर मांगताहूं।। ६९।
पुराणों से मैं जो जानी। तुम हो चौवगे दानी।।७०।
मेरु को धूल कर सकते। धूल को मेरु कर पाते।।७१।
यह सब सुनी पुराणों से। क्षमा में मांगी है तुमसे।।७२।
हे प्रभु जिस पर कृपा करते। तुम संग वे विहरते।।७३।
भगति योग साधता जो ही। तुम संग वह होता है ही।।७४।
तुम्हारी दया हो अवश्य। साधेगा अरक्षित दास।।७५।
अहो सुजन जन कही। भक्ति का थलकूल नहीं।।७६।
प्रभु की दया के होनेपर। वह तट पाएगा अपार।।७७।
नहीं तो थल वहां नहीं। अथलयोग वह है ही।।७८।
और योग में थल तो है। भक्ति तो अथल ही है।।७९।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम द्विचत्वारिंशोऽध्याय।

— o —

त्रिचत्वारिंश अध्याय (४३)
भक्ति महात्म्य कथन

अहो चैतन्य तुम पर ही भरोसा। भक्ति विन नहीं कोई आशा।।१।

भकति योग की आस में। किसी को न लेता देहमें।।२।

कन्दर्प घर न जगता। भक्ति न रहती जो जगता।।३।

नीद का न देता पहरा मैं। दूं यदि भक्ति चली जाए।।४।

आहार को न तरसता। तरसूं तो भक्ति तज देता।।५।

प्यास को मैं रोकूं नहीं। रोकूं तो भक्ति पाऊँ नाही।।६।

ग्रष्म वरसा शीत को मैं। इन तीनों को भोगता मैं।।७।

न झेलूं मरण का भय। कैसे हो भक्ति का उदय।।८।

भय को न छोड़ता मानो।। छोड़ू तो भक्ति जाए मानो।।९।

रोगों को मैं झेल लेता। न झेलूं भक्ति कहसे पाता।।१०।

प्रकृति काबू में न रहूं। रहूं तो भक्ति कैसे पाऊँ।।११।

पाप पूण्य को छोड़ू नहीं। छोड़ू तो भक्ति नहीं पायी।।१२।

धर्म अधर्म न विचारूं मैं। करूं भगति तजूंगा मैं।।१३।

सुख दु:ख मैं हूं भोगता।। इन्हें मैं नहीं नकारता।।१४।

नकारूं तो भक्ति रहे नहीं। उसी से कभी छोड़ू नाहीं।।१५।

चिन्ता अचिन्ता नहीं तजूं। लिए ही भगति में भजूं।।१६।

स्वर्ग नरक भोग करे। न करे भक्ति ही विसरे।।१७।

शुभ अशुभ नहीं मोर, उलझू तो भक्ति होगी दूर।।१८।

जन्म मृत्यु को डरूं नहीं। डरूं तो भक्ति रहे नाहीं।।१९।

जीव अजीव न जानता। जानूं तो भक्ति तज देता।।२०।

विकार अविकार करे। न करे भक्ति ही विसरे।।२१।

जात अजात मुझे न भाये। भेये तो भक्ति झर जाए।।२२।

स्त्री-पुरुष मैं जानूं नहीं। जानूं तो भक्ति तजूंगा ही।।२३।

जीव परम मैं जानूं नहीं। जानूं तो भक्ति नहीं रही।।२४।

चन्द्र सूर्य तारा न जानी। जानूं तो भक्ति कहां फुनि।।२५।

चार मेघो को न जानता। जानूं तो भक्ति नहीं पाता।।२६।

जल पवन अग्नि फिर। ये मेरा नहीं है। गोचर।।२७।

जानूं तो भक्ति को छोडूंगा। प्रभु द्रोही में बन जाऊँगा।।२८।

स्वर्ग मर्त्य पाताल फिर। ये मेरा नहीं हैं गोचर।।२९।

भक्ति न होगी जानने पर। हों न हों क्या होगा आखिर।।३०।

नव द्वीप नव पृथ्वी कहते है। नजानूं किदृश होते हैं।।३१।

भक्ति होगी कैसे जानूं तब। अतः मैं सोचूं नहीं देव।।३२।

तेतीस कोटि सारे देव। मोही न सोचूं उन्हें देव।।३३।

न चोचे भाव न करूं तब। भक्ति न दृश्य होए तब।।३४।

अनन्त कोटि साधूगण। इनका न करता स्मरण।।३५।

अतः मैं सोचे न सोचता। भगति योग ही चाहता।।३६।

छप्पन कोटि सारे जीव। न सोचे तुम्हें सोचूं देव।।३७।

न सोचे भाव भाव न करूं जब। भक्ति की प्रापित न होए तब।।३८।

इन के साथ मिथ्या सत्य। कहू मैं नहीं धरूं चित्त।।३९।

लोभ अलोभ इनके साथ। करके मैं भरूं नहीं चित्त।।४०।
माया निर्माया इनके साथ। न करे धरूं नहीं चित्त।।४१।
काम अकाम इनके साथ। न करे भक्ति करूं नित्य।।४२।
चलन्ता चौदह कोटि भये। उन्हे में मन में न लिये।।४३।
निश्चल चौहद करोड़ जो हैं। ये मेरे मन में नहीं है।।४४।
चोदह करोड़ जो नभचारी। इन्हे कभी न याद करी।।४५।
जो चौदह कोटि जलजीव। न सोचूं मेरा मनोभाव।।४६।
चाण्डाल से ब्रह्मलेक तक। भेद न जानूं यही विवेक।।४७।
मेरु से सारे जो पर्वत। एक समान यह मेरे चित्त।।४८।
काक से गरुड़ पर्यन्त। एक समान है सोचूं नित्य।।४९।
अश्वत्थ से ले सारे वृक्ष। भेद नहीं यही प्रत्यक्ष।।५०।
इन्द्र से ले सारे दवे। भिन्न हीं मेरा है अनुभव।।५१।
क्षुद्र कीट से सिंह तक। भेद नहीं मेरा है विवेक।।५२।
इस भांति छप्पन कोटि में। भक्ति न पायी जो इनमें।।५३।
फिर भी भक्ति है इनमें ही। यह यह मन जाने नहीं।।५४।
जिस पर प्रभु की दया होये। घटघय में भक्ति भये।।५५।
सकल घटों में विराजे। हँसे रोये और खेले नाचे।।५६।
कोई और योग साधे नहीं। सब उसकी चाकरी करते ही।।५७।
जो वह मन में विचारता। वह तत्काल पूरा होता।।५८।
ऐसी है इस योग की महिमा। क्या कहूं मैं उसकी सीमा।।५९।
मुझ पर प्रभु की करुणा भया।। देकर माया से हर लिया।।६०।

वह योग को तजे मोही। कोई और योग साधूं नहीं।।६१।
जो अमजत स्वाद काए। कडुवा कभी वह न छूए।।६२।
भक्ति योग के विन जानो। कोई और न साधूं पुनः।।६३।
जो मिष्ट अन्न खाए। मोटा अन्न क्या उसे भाए।।६४।
जो सोते है पलंग के उपर। क्यों सोते वे भूशय्या पर।।६५।
नाना रस सरवत जो पीए। गूड़ पानी क्या उसे भाए।।६६।
भक्ति योग यदि मैं तजूंगा। क्यों इस संसारे रहूंगा।।६७।
नाना अलंकार जो धारण करे। पत्थर से उसका क्या मन भरे।।६८।
पट वस्त्र जिसका परिधान। छिथड़े को क्या करे मन।।६९।
भगति योग तर्जे मोही। कोई और मैं साधूं नाहीं।।७०।
होए जो सवार हाथी पर। न होए गद्हे पर सवार।।७१।
जो पालकी पर जाता। चारपाई क्या वह चाहता।।७२।
भगतियोग तजे मोही। कोई और मैं साधूं नाही।।७३।
भगति विन योग और कोई। मरजाऊँ किन्तु साधूं नहीं।।७४।
रह कर मैं क्या करूंगा।। यदि तुम्हे मैं न चीह्नूगा।।७५।
भगति योग के अलावा मैं। प्राण जाए पर न साधूं मैं।।७६
और योग में तुम न होते। भक्ति में पूर्ण विराजते।।७७।
भगति योग में प्रसन्न। और योग में मतिभ्रम।।७८।
भक्ति सहित मुक्ति हेती। मेरी योग में नहीं गति।।७९।
जब कोई मुक्ति पाए नही। सिद्ध होकर क्या करेगा भी।।८०।
सिद्ध हो सिर्फदिन गुजारता। भाव तुम्हारा न जानता।।८१।

उसी भक्ति ही मांगु सुनो। न देकर माया की है पुनः।।८२।
भक्ति न दोगे तो अवश्य। अर्क्षित दास जाएगा नाश।।८३।
हे सुजन जन मैं कहूं। जीकर क्यों कर भी रहूं।।८४।
ऐसे निर्दय मुझ पर हुए। भक्ति मांगी तो नहीं दिये।।८५।
उन्ही के भरोसे विन ही। कुछ औ में जानूं नहीं।।८६।

भक्ति योग के परम सिद्ध तपस्व महापुरुष संथ अरक्षित दास भावमय हैं। प्रभु भी तो भावगम्य हैं ज्ञानगम्य नहीं। भक्ति योग के सिद्ध दपस्वी स्वयं कुछ करते नहीं, मन ही में विचारते ही प्रभु वह पूरा कर देता है। उसकी प्रच्छन उदाहरण तो है ओलाशुणी आश्रम। अब संथ महापुरुषने पदार्पण किया वह्य तो केवल शून्यता ह्वी विद्यामन थी। प्रभु की आन्तरिक अनुप्रेरणा से वंह शून्यस्थान उन्हें भा गया और उन्हों ने महाशून्य में परिपूर्ण प्रभु को देखा। जो विचारते गये प्रभु पुरा करते गये और अब भी स्थिति वही है संथ की यशोदेही विद्यमानता के बावजूद। कुछ भक्ति योग के सिद्धो के नाम स्मरण करना चाहता। विस्तार से यहां कुछ कहूंगा नहीं, क्यों कि भक्ति योग पर संथ महापुरुष अर्क्षित दास को केन्द्रस्थ कर के एक ग्रंथ की रचना करना चाहता हूं। यह्न संथ की असंलग्न रचना शैली, व्याकरण असम्मत प्रयोग, अपना चित्रकल्प के लगभग प्रत्येक अध्यायों में होना, असमापिका धारादि के प्रसङ्ग में भी चर्चा करूंगा नहीं।

हां, वे भक्ति योग के सिद्ध आत्मभोला महापुरुष है। सोलह सहस्त्र व्रज गोपंगनाए, श्रीराधा, श्रीकृष्णप्रिया मीरा (वैष्णवीय सैद्धान्तिक विचार में प्रभु ह्वी एकमात्र पुरुष और अन्य सभी जीव जीवेत्तर वानस्पतिक प्रकृति तक नारी अर्थात् 'प्रकृति'।) रसखान, जायसी, सालवेग, नरसी भगत, रैदास, आदि और भी है जिनका मैं उल्लेख कर नहीं पायाहूं। महापुरुष अर्क्षित दास सहित शतशत प्रणशम। महापुरुष की कृपा होगी तो समय पर यह ग्रंथ भी साकार रूप प्राप्त होगा - अनुवादक)

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्याय।

— o —

चतुश्चत्वारिंश अध्याय (४४)
सकलार्पित तेरे चरणों में

अहो चहतन्य तुम्हारे भरोसा। तेरे विन अन्य नहीं आशा।।१।
भक्तियोग तुमने न दिया। क्यों घर से बेघर कराया।।२।
राज्यश्री तज कर आया। तुम पर भरोसा जो किया।।३।
दया होगी यह भरोसा किया। उसीसे सब तज आया।।४।
दया करके जो ले आया। अन्त में निराश ही किया।।५।
तुम विन मेरी कोई आशा नहीं। क्या तुम यह जानते नहीं।।६।
को अवा अन्न नहीं पाकर। निकलते कौपीन मारकर।।७।
को अवा धंधा नहीं पाकर। निकलते कच्छ मारकर।।८।
को अवा व्याह न कर पाकर। निकलते कौपीन मारकर।।९।
कहते घर पर क्यों होंगे। कौपीन मारके भागेंगे।।१०।
को अवा लड़झगड़ कर। कौपीन मारे छोड़ते घर।।११।
को अबा बदनाम होकर। मारे कौपीन छोड़ते घर।।१२।
को अबा नौकरी के फिक्रसे। मारे कौपीन भागते घरसे।।१३।
को अवा पर की बुद्धि से। भागते कापीन मारे घरसे।।१४।
अथवा अपुत्रिक कोई। घर से भागता है वही।।१५।
कोई तो आपसी सलाहसुथरा से। साथ उसके भागता घरसे।।१६।
कोई तो राग ग्रस्थ होकर। मारे कौपीन चाड़ता घर।।१७।
किसी को माता पिता देते। वैष्ण एक को सौंप देते।।१८।
वह कौपीन मारता है। कुछ काबू में न होता है।।१९।

को अवा देहे ज्ञान पाए। वह तजे घर मो जाता है।।२०।
को गुरु तलाशे आता है।। उन्हीं से कौपीन पाता है।।२१।
गुरु जो देते हैं शिखाये। उसी में मज्जित होता है।।२२।
वह तो तुम्हे पहचाने नहीं। भगति पाएगा वह क्यों ही।।२३।
मैं तो ऐसे प्रसङ्गों से। आया भी नहीं हूं घरसे।।२४।
केवल तुम्हारे भरोसे पर। न सेवा देवासुर नर।।२५।
आप तो अन्तर्यामी है ही। क्या नहीं जानते तुमही।।२६।
आप सब तो जानते है पर। क्या मैं कराऊं गोचर।।२७।
तुम्हारे भरोसे के विन। मैं कुछ न जानूंगा पुनः।२८।
प्रभु जो भी सोचे होंगे। वह तो अवश्य करेंगे।।२९।
गृह तजाए ले आए हैं। चिन्ता क्या उनमें नहीं है।।३०
मैं क्या भी कर पाऊँगा पुनः। जो भी करेंगे नारायण।।३१।
हमरे हातों क्या भी होई। भावगोही की जब दया नहीं।।३२।
यह न जाने मूढ मैं हूं। प्रभु से भगति ही भांगू।।३३।
दया होगी जब उनकी मुझपर। इच्चा से होंगे चक्रधर।।३४।
निर्दय यद्यपि वे होंगे। क्यों कर भगति ही देंगे।।३५।
मैं तो उनपर भरोसा कर। न सेवूं कोई दावासुर नर।।३६।
को अवा ईश्वर पूजते। भगति क्या है न जानते।।३७।
को अवा जटाजूट वहे। तुम्हरी भगति कहां देहे।।३८।
को अवा साक्षी रूप होते। तुम्ही भगति न जानते।।३९।
को अवा दुर्गा सेवा करे। भगति नहीं है अन्तरे।।४०।
को अवा करे सुरा पान। तुम्हारी भक्ति का नहीं ज्ञान।।४१।

को अवा करे गांजा सेवन। भक्ति का नहीं उसमें ज्ञान।।४२।
को अवा अफिमची होजा। क्या है भगति न जानता।।४३।
को अवा नाना नशा करते। भगति क्या है न जानते।।४४।
को अवा हनुमन्त ध्याये। जगत भर को ही गठते।।४५।
को अपवा वेताल साधते। जगत भर को ठगे खाते।।४६।
को अवा भूत प्रते की वन्दना। को चण्डी-चामण्डाराधना।।४७।
को अवा वरुण सेवते। जगत को करतूत दिखाते।।४८।
को करे इन्द्र आराधना। जगतो करते वंचना।।४९।
को करे चन्द्र सूर्य सेवा। को बस जल की ही सेवा।।५०।
को करे वपन पूजन। कहे मैं बड़ा योगी जानो।।५१।
को अवा करे अग्नि होम। कहे योगी मैं अनुपम।।५२।
को लक्ष्मी की करे सेवा। जगमें बताते दुर्लभा।।५३।
को अवा सरस्वती ध्याये। को अवा गोसाणी° मनाए।।५४।
इस भांति सब है भरमते। तुम्हारा चिन्दन न करते।।५५।
इति कथा में नहीं आशा। अरक्षित का तुम ही भरोसा।।५६।
सुजन जन सुनें मन देकल। इन सारी बातों को छोड़कर।।५७।
केवल है प्रभु का भरोसा। नित्य मैं करता हूं आशा।।५८।
हे प्रभु करुणा निधान। भगति मुझे करो दान।।५९

° गोसाणी- एक ग्राम देवती

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्याय।

— ० —

पञ्चचत्वारिंश अध्याय (४५)
नाम पर भरोसा

अहो चैतन्य सुनो तुम ही। तुम्हरी दया जिस पर होइ।।१।

वह तुम्हें मनसे ही जाने। और किसीको ही न चीन्हे।।२।

कोई कम खाए रहता है। अमरपद वह चाहता है।।३।

तुम्हे क्या पहचान पाएगा। अज्ञान ही में वह रहेगा।।४।

सिद्धान्त मनमें वह चाहे। क्या तुम्हें। पहचान पाए।।५।

कोई और योगान्त चाहते। नाना और योग विचारते।।६।

कोई और वेदान्त साधन। नाना शास्त्रों में देते मन।।७।

कोई करता वेदान्त साधन। करने नाना अनुध्यान।।८।

यह सब नहीं जानूं मोही। तुम्हारे नाम के भरोसे ही।।९।

कोइे और तीर्थाटन करते। अन्य सेवता वे पूजते।।१०।

को करे नाना मंत्र स्मरण। नानान माला से जापन।।११।

को करे तिलक नानान। दास कहाए अपने को महान।।१२।

मल कर सर्वाङ्ग नाना बभूत। कहे मैं सन्यासी अदभूत।।१३।

कोई और उर्ध्वबाहु होगर। होते हैं उग्र तपशचर।।१४।

को अबा करे पंचअग्नि। कहाए योगी मैं मानी।।१५।

कोई और आसन झोड़ते। दूध पीकर ही रहजाते।।१६।

कोई और गुफा में छिपकर। दर्शन न दूं किसी को सोचकर।।१७।

कोई सर्वाङ्ग वस्त्र ढंके रहता। अङ्ग किसी को न दिखाता।।१८।

कोई और जल ही पीए रहे। कोई कोमल पत्ते खाए।।१९।

कोई दिगवस्त्र बने घूमते। न कहे मौन ही रहते।।२०।

कोई नाना प्रतिमाएँ धरे। घूमते उन्हें पूजा करे।।२१।

कोई और भटके चारों धाम।। अंग पर टाटो नाम।।२२।

कोई नानान आसन करे। कोई अनेक याग विचारे।।२३।

कोई नानान साधना करे। छति में कई भांति हवा भरे।।२४।

कोई और बस करता पवन आहार। कोई विपरीत साधन कर।।२५।

कोई विन्दू का कर रक्षण। करता कन्दर्प नाशन।।२६।

कोइ ओर साधते मन को। कोई और साधते देह को।।२७।

कोई और नींद को रोकता। कोई जिह्वा को मारे रहता। २८।

कोई भूख प्यास ही को मारे। रागों को करे संहार।।२९।

कोई और प्रकृति नाशते। कोई पञ्चमन को मारते।।३०।

कोई शीत की ठंड सहे। अनओढ़े वह कुली देह।।३१।

कोई और धूप को सहते। सूर्य चाहे छाहं को न जाते।।३२।

कोई वर्षा का सहन करते। वर्षा में भींगते रहते।।३३।

कोई आसन पर नहीं सोते। भूमि पर ही सोया करते।।३४।

कोई वस्त्र ही न पहनते। बल्कल पहने ही रहते।।३५।

कोर्स चूवा चन्दन छोड़ते। भस्म ही सर्वाङ्ग पोतते।।३६।

कोई घर में नहीं रहते। पेड़ तले समय वीताते।।३७।

कोई आचारी जो होते। खुद पकाते और खाते।।३८।

करे महात्सव कोई और। आचारी गोष्ठी को लेकर।।३९।

कोई अपने शिष्ट जो आधीन। उन्हे करते कौपीन प्रदान।।४०।

इस प्रकार मैं कुछ करूं नहीं। एसे कुछ विचारूं ही नहीं।।४१।

तुम्हारे भरोसे हे प्रभु, न करूं कुछ भी हे प्रभु।।४२।

हे ब्रह्म तुम्हारा नाम की है आशा। मेरा हे एक ही भरोसा।।४३।

हे ब्रह्म सभी भ्रमित हैं ही। नाम भगति जानते नहीं।।४४।

वे नाना नाम तो लेते है। अपना नाम न जानते है।।४५।

को नाम नरसिंह राम। को गाये हरेकृष्ण नाम।।४६।

को गाए मुरारी अच्युत। कोई गाता है जगत्तात।।४७।

को नारायण भगवान। कोर्स केशव जनार्द्दन।।४८।

कोई जगन्नाथ मकुन्द। कोई गोविन्द आदिकन्द।४९।

कोई परम हृषीकेश। कोई रटना पीतवास।।५०।

कोई कहे प्रभु चक्रधर। को कहे राखो पीतांवर।।५१।

को कहे शरण रक्षण। कोई पुकारे आर्तत्राण।।५२।

इस प्रकार लेते नाना नाम। क्योंकर पाएंगे अपना नाम।।५३।

कोनों में जो सब नाम सुनूं। उसमें गति नहीं है जानूं।।५४।

भगत मुखे उच्चारित। नाम में न होए प्रतीत।।५५।

भगत माता पिता बन कर। प्रभु कको पुत्र बनाकर।।५६।

प्रभु को जात वे कराते। प्रभु को कोर्स नाम देते।।५७।

उसी नाम का ग्रंथ करे। नाना शास्त्रों से जग भरे।।५८।

वह शास्त्र जगत विख्यात। वह नाम रटते समस्त।।५९।

अपना नामरे गोपन गुपत। जो करे सर्व प्रकाशित।।६०।

जो सर्व नाम लिया करें। जन्म मरण वे झोला करें।।६१।

तब तो लीला सुख होगा। माया संसार कहेगा।।६२।

अपना नाम जो जानेंगे। अमर होकर रहेंगे।।६३।

तब क्या लीला सुख होगा। क्या सुख तब प्रान्त होगा।।६४।

छिपे अपना नाम न लेकर। नाना दाम करके विचार।।६५।

अपना नाम भक्ति न जाने। भटकते रहते हैं माने।।६६।

प्रभु जिस पर दया करते। अपनी नाम-भगति देते।।६७।

मरण उसका तब न होता। जग प्रलय में नाश न जाता।।६८।

अक्षय अमर वह जानो। सब योग चाकरी करते मानो।।६९।

अपनी नामृभगति पर आशा। तजा है अरक्षित साव।।७०।

प्रभु निर्दय होना नहीं। सुजन जन मैने जो कही।।७१।

देना न देना नहीं त्तच्छा। और न करूं मनोवाञ्छा।।७२।

इति

श्री नाम चैतन्य संवादे

महामण्डले गीता कथने नम पञ्चचत्वारिशोऽध्याय।

— o —

षट्चत्वारिंश अध्याय (४६)
अरक्षित की पूर्वापर स्थिति

अहो चैतन्य जो तुम्हारी इच्छा। तजी मैने जो सारी वाञ्छा।।१।

तमन्ना भक्ति योग की थी। सेवा करूं तुम्हारी चेहिथी।।२।

कुछ और तो न मांगता। निज नाम विचारे चाहता।।३।

अब तो है सब आशा तजी। जो करो तुम्हारी मरजी।।४।

और क्या मैं घर को लौटूंगा। वहां सुख अराम भोगंगा।।५।

घर पर मैं ता जिस दिन। न करूं छोटा वस्त्र मन।।६।

लहराता परिधान भूस्पर्श करे। तब ही मेरा मन भरे।।७।

अब छोटा चिथड़ा हो तभी। घुमाफिर आऊँ फिरभी।।८।

तुम्हार भरेसे से मै ही। लाज सु दूर होगयी।।९।

सोचा मैं अकेले घूमूंगा। सभी सुखों को तज दूंगा।।१०।

ऐसा विमारे मैं जो आया। तुम भये निर्द्दय जान गया।।११।

संसार में होता तो भला होता। ननाना भोग तो भोगा करता।।१२।

चन्दन चुवा लगाकर। केश में पाट बांधगर।।१३।

उस पर लगाए सुमन। ललाटे चिता कर रंजन।।१४।

अब केश तो खोल दिया। लाज तजे गांव लौय आया।।१५।

मार गालियां सब सहे। तुम्हारे आसरे ये जिन्दा रहे।।१६।

सर्व सुख छुडाए लाकर। निर्द्दय होते अब आखर।।१७।

अन्न वस्त्र तक मिला नहीं। इसी देह मैं पीड़ा नहीं।।१८।

घर पर पखाल अन्न मैं ही। कभी तो मैंने खाया नहीं।।१९।

अब चिवड़ा पानी खाता। नानान कष्ट भी झेलता।।२०।

व्यंजन यदि कम होता। तब मैं अन्न तज जाता।।२१।

अब एक अमड़ा लेकर। कर लेताहूं लघु आहार।।२२।

कुकुंम जिस दिन होता नहीं। नींद उस दिन आती नहीं।।२३।

एक दिन न नहाऊं तो में। नींद न आती नयनों में।।२४।

अब माह दो माह में कभी। अनाचार नहा लेता कभी।।२५।

शेज पलंग तकिया तज कर। अब सोता हूं जमीन पर।।२६।

जाजपांत महत तज कर मैं। लाज संकोज भी तजा मैने।।२७।

निर्लजपना अपनाया। गांवगांव मैं मांगे खाया।।२८।

चाण्डाल से ब्रह्म हर घर पर। किया भोजन मैं निर्विकार।।२९।

सर्व घयों में तुम विद्यामान। विश्वास मान कर लेता भोजन।।३०।

जो कुछ मुझे देता है इच्छा से। इनकार न करे ले लेता उसे।।३१।

ये सारे मेरे हैं अर्द्ध अङ्ग। क्यों कर करूं मैं मतिभङ्ग।।३२।

वे तो मेरी दहे में हैं। भिन्न तो मुझसे नहीं हैं।।३३।

इसमें भिन्न जात नहीं। एक जाति है सर्व देही।।३४।

जगमें खेल के बहाने। नाना जाति है साहास्त्रों में।।३५।

अष्ट पाटक जाति करी। जग में खेले नरहरी।।३६।

उसी से मैं खा लेताहूं। आत्मा में सर्वदेही मानताहूं।।३७।

नाना गायो का दुग्ध शतश्वेत। हर जाति में एक शोणित।।३८।

देखो ये सूरज सर्वत्र घेरे हैं। तेज तो तजते नहीं हैं।।३९।

उनसे तो तू बड़ा नहीं। तुइजे मूढ़ कोई नहीं।।४०।

देखो चन्द्रमा ब्रह्माण्ड में। दतेज लगे जगत भर में।४१।

उनसे क्या तू बड़ा है। मूढ़ तू भिन्न मानता है।।४२।
देखो जो हवा बहती है। सर्व भूतों को लगती है।।४३।
उनसे तू तो बड़ा नहीं। अरे पामर भिन्न नहीं।।४४।
देखो सलित बहता है। सब को बहाए लेता है।।४५।
उनसे क्या है बड़ा तुमही। तुझसे मूढ़ आहर कोई नहीं।।४६।
देखो अगनि सब खाए। भेद विचार उसे न भाए।।४७।
उनसे क्या हो बड़ा तुमही। तुझ से पामर कोई नहीं ।।४८।
देखो या पृथिवी माता है। सारा बोझ जंजाल सहती है।।४९।
उनसे क्या तुम हो बड़ा। क्या सहते हो अरे मूढ़ा।।५०।
देखो ये मेघ बरषते। निन्दा स्तुति भी सहलेते।।५१।
उनसे बड़ा क्या तुम हो। क्या भी तुम सहते हो।।५२।
देखो आकाश है व्यापे हुए। सब को ओढ़ाए रखा है।।५३।
उससे क्या तुम बड़े जानो। किसी को भिन्न नहीं मानो।।५४।
एक आत्मा है भिन्न नहीं। उपमा दूंगा सुनो तुमही।।५५।
सुवर्ण नोने अलंकार। औटाने पर भी न होए पर।।५६।
इस प्रकार जितनी जेति है। मरें तो एक ही जगह जाते हैं।।५७।
इस लिये भिन्न नहीं मोर। मैं ही व्याप्त हूं चराचर।।५८।
प्रकृति भिन्न माने तो भी। मैं नहीं मानता हूं कभी।।५९।
भिन्न नहीं अर्क्षित दास। सभी घटों में मेरा वास।।६०।
अहो सुजन सुने कही। मेरे चित्त में भिन्न नहीं।।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डलगीता कथने नाम षट्चत्वारिंशोऽध्याय।

— o —

शप्तचत्वारिंश अध्याय (४७)
ब्रह्मा पर भरोसा

अहो चैतन्य सुनो मैं हूं। तुम्हारे भरोसे पर ही हूं।।१।
पुराणों में से हैं सुनी। तुम हो दयासागर चिन्तामणि।।२।
वह सुने ही मैं आया। भ्रमित मरा हुई न दया।।३।
तुम्हारे भरोसे विन मै ही। और किसी को जानूं नहीं।।४।
सभी गुरु की सेवा करते। उनसे वे कौपीन भी पाते।।५।
दीक्षा शिक्षा व मंत्र सारे। गुरु से पाए चित्त धरे।।६।
गुरु को लिये उनका मन।। तुम्हारा करता होता ध्यान।।७।
कोई भगति जाने नहीं। तुम्हें पाएगा वह क्यों ही।।८।
जब तक प्रसन्न तुम न होते। वे क्या तुम्हें चीन्हते।।९।
जिस पर करुणा करोगे। वह ही ज्ञात हो पाएंगे।।१०।
उसी से गुरु सेवा न की। तुम्हारे नाम की आशा ही की।।११।
बोले सर्व गुरु हैं ये ही। और किसीको सेवूं नहीं।।१२।
जब गुरु सेवा मैं करूंगा। वे जो देंगे वह सोचूंगा।।१३।
न सोचूं द्रोही जो होऊँगा। भगति न पाए मरूंगा।।१४।
भगति प्रभु के पास ही है। चाहें तो वे दे सकते हैं।।१५।
और कोई दे ही न पाए । मही मण्डले में जात हुए।।१६।
भगति योग हैं पन्नभु धरे। ब्रह्माण्ड में है भरेपूरे।।१७।
अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड में। परिपूर्ण हे जगत में।।१८।
किसी और को देते नहीं। उन्हीं का है धर्म वही।।१९।

जिस पर उनका स्नेह होए। उसे ही देते हर्ष भये।।२०।
यही सोचते हुए मैं ही। कुरु के पास भक्ति नहीं।।२१।
गुरु भी कहां से कहते। मनुष्य देहे से पाते।।२२।
उसी से गुरु सेवा न की। एक प्रभु पर ही आशा की।।२३।
अपने हाथों बाँधे मैं कौपीन। प्रभु पर आशा भारी बनी।।२४।
जितने दीक्षा शिक्षा मंत्र। कहां से पाता और यंत्र।।२५।
नाम ही मैं जानता नहीं। भगति पाऊँगा भी क्यों ही।।२६।
किसी और की सेवा न कर। न सेवूं देवासुर नर।।२७।
तुम्हारे भरोसे मैं ही। और को विचारता नहीं।।२८।
वे ही तारें या मारें। जो चाहते वही करें।।२९।
जो बुद्धि उन्ही से पाऊँगा। वही मैं करता चलूंगा।।३०।
नही करना का मन। भी न होऊँ मति भिन्न।।३१।
प्रभु जो भी विचारेंगे। वही तो अवश्य करेंगे।।३२।
यह तो अस्ति नास्ति भी करेगा। करे भी तो क्या सम्मत होगा।।३३।
वे गर्वगंजन तो हैं। विचारे छल न करते हैं।।३४।
उसी से सोचा करता नहीं। जो चाहें प्रभु करें वही।।३५।
यदि हम मनसे कर पाते। दैव यष्टी क्यों लिये होते।।।३६।
हम चाहते स्वर्ग जाते। दैव और क्या भी करते।।३७।
दैव तारे या मारें। इच्छा जो उनकी वही करें।।३८।
मैं तो किसी को रोकूं नहीं। संभालता मेरे हातों नहीं।।३९।
मुझे सँभालें पीतवास। नहीं तो होगा मेरा नाश।।४०।
जीने मरने भी आशा। नहीं बस तुम्हारे भरोसा।।४१।
हे ब्रह्मा सब आशा छोड़ा। तुम्हारे चरणों में हूं पड़ा।।४२।

हे ब्रह्मा रखो या नरखो। सब छोड़ अब मैं निरेख।।४३।

हे ब्रह्म पिता-माता होए। जात किया है तुमने मोहे।।४४।

हे ब्रह्म जात करे नाशि। किससे कहूं मैं विशेषि।।४५।

हे ब्रह्म दया लेश नहीं। जाना तुम हो निर्दय देही।।४६।

हेब्रह्म तुम विन संसार में कोई और नहीं कहते सारे।।४७।

हे ब्रह्म तुम्हारे अतिरेक। कोई और है नहीं त्रिलोके।।४८।

हे ब्रह्म सर्व जात करते। मारे गर्भ से हर लेते।।४९।

हे ब्रह्म फिर जात करे। मारे फिर गर्भ ही से हरे।।५०।

हे ब्रह्म ऐसी तेरी लीला। संसारे करते हो खोला।।५१।

अपप्त कोटि ब्रह्माण्ड पर। खेल रहे हो रूप लेकर।।५२।

हे ब्रह्म तुम्हारी माया में। भरमते सब चर अचर में। ५३।

हे ब्रह्म तेरी माया न जानें। वेद शास्त्र को सत्य मानें।।५४।

हे ब्रह्म भक्ति न विचारे। भटकते नाना पथ धरे।।५५।

हे ब्रह्म उससे नाश जाते। तुम्हें न चीन्हें भटकते।।५६।

हे ब्रह्म तुम्हें न पहचान। वह क्या करे योग साधन।।५७।

हे ब्रह्म अन साधन में। सब दूर होए मनमें।।५८।

हे ब्रह्म तुम्हारो भावधरे। सभी योग को वह विसरे।।४९।

हे ब्रह्म पाप पुण्य यही। इन्हें वह कभी तजे नहीं।।६०।

हे ब्रह्म यह तेरा विश्वास। उन्हें होती तुम्हारी आशा।।६१।

हे ब्रह्म तुम्हे भाव से जड़ित जुड़े। उन्हें न पाते छोड़ कदाचित।।६२।

हे ब्रह्म वह जो मांगता। वह मैं ततकाल देता।।६३।

हे ब्रह्म भक्ति भाववश। अन्य भावों में तू अदृश्य।।६४।

वे ब्रह्म अन्य भाव में तुमही। कोटि कल्पान्ते भेंट नोही।।६५।

हे ब्रह्म यह जाने चित्तसे। भगकि मांगी है तुमसे।।६६।
हे ब्रह्म यदि न दिया। तो फिर मुझे क्यों जात किया।।६७।
हे ब्रह्म भक्ति विन मोही। और योग मैं साधूं नहीं।।६८।
हे ब्रह्मा अठारह वरष। भटकाहूं मैं नाना देश।।६९।
हे ब्रह्म तुम्हारी माया होई। स्थिर न रखा मुजे कहीं।।७०।
हे ब्रह्म भक्ति आशा सुनो। छोडी मैं तुम जो करो जानो।।७१।
हे ब्रह्म दया हो जब तुमही। दोगे न दोगे आशा नहीं।।७२।
हे ब्रह्म मुजे क्षमा करो। शरण में राखो चक्रधर।।७३।
हे ब्रह्म तेरे विन जग में। समर्थ नहीं तारण में।।७४।
हे ब्रह्म प्रकृति समस्त। मारना चाहती हैं नित्य।।७५।
हे ब्रह्म तुम्हारे भरोसे। डरता नहीं मैं किसीसे।।७६।
हे ब्रह्म तुम्हारे नाम लेकर। हृदय मन दम्भ करे।।७७।
बोलूं प्रकृति क्या भी मेरी। सकती क्या भी हे करी।।७८।
हे ब्रह्म मैं विचारूं ही। मारें तो मारें भावग्राही।।७९।
और किसी के हाथों में क्या भी है। भरोसा उन्ही पर ही है।।८०।
हे ब्रह्म तुम्हारे नामका। भरोसा केवल उसीका।।८१।
हे ब्रह्म तुम्हारे नाम पर आशा। करता अरक्षित दास।।८२।
हे सुजन जन आश। किये हूं उसपर भरेसा।।८३।

इति

श्री नाम चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्याय।

— ० —

अष्टचत्वारिंश अध्याय (४८)

केवल ब्रह्म शरण

सुनो चैतन्य कहताहूं। मैं नाम के भरोसे ही हूं।।१।

आद्य ही नाम पर आश। किये तज आया गृहवास।।२।

हे ब्रह्म अन्न सुख तजा। अब खाता हूं मुरही भूजा।।३।

हे ब्रह्म नाना व्यञ्जन को। तज आया तुम्हें पूजने को।।४।

हे ब्रह्म षड़रस सुख। तज आया मैं पद्ममुख।।५।

हे ब्रह्म तब भी दया नहीं। ऐसा निर्दय तुम्हारी देही।।६।

हे ब्रह्म नाना अलंकार। आश्रित हो कर दिया दूर।।७।

हे ब्र भव्य वस्त्र नानान। छोड़ा, अब छोटा परिधान।।८।

हे ब्रह्म नानादि पात्रों को मैं। तजे खाता हूं माटीखप्पर में।।९।

हे ब्रह्म तब भी नहीं दया। मुझसे करते हो माया।।१०।

हे ब्रह्म पलंग तकिया। तुम पर आशा कर तज दिया।।११।

हे ब्रह्म नाना अलंकार। आश्रित हो कर दिया दूर।।१२।

हे ब्रह्म इत्र चूवा चन्दन। आश्रित हो कर दिवा वर्जन।।१३।

हे ब्रह्म नाना् सुमन। अब नहीं करता मण्डन।।१४।

(प्रत्येक अध्यायों में उदाहरण एक प्रकार है। उन्ही को बरकरार रखते हुए अन्तत: शब्द विन्यास के माध्यम से प्रज्ञापित करने का प्रयास किया है। हिन्दी में लिंग की समस्या है। उसी के कारण मुझे, प्रतिशब्द तलाशना कठिन लगा है। काव्यान्तरण में तो यह अधिकतर जटिल हो जाता है। हिन्दी के अनुभवी विद्वान पाठकों से विनम्र निवेदन है कि दोष न धरें वरन उसे रूपान्तरणकार की वाध्यता मान कर क्षमणीय मानें। जो विज्ञ पाठक मूल ओडिआ के अध्ययन मनन कर सकते हैं। उनसे प्रार्थना हैं कि

भक्ति योग के सिद्ध तपस्वी में काव्य सर्जना प्रतिभा है नहीं किन्तु प्रज्ञापन की भरपूर स्पृहा है। अत: कबित्त पर न चलकर अर्न्तनिहित समर्पित भावबोध पर मग्न मज्जित होने की चेष्टा करे तो भी आस्था है वे अधिक गहरायी से आध्यात्मक रसास्वादन कर पाएँगे। कहीं कहीं महापुरुष के उद्देश्य की पुनरावृत्ति भी मैना की नहीं है, व्यक्त करने की कठिनायी के कारण। मुझे यह भी लग कि एक तरह द्विरुक्ति है। - अनुवादक)

हे ब्रह्म मैं नानान वाहन। मैं कर आया प्रत्याखान।।१५।

हे ब्रह्म सारेसारे सुख। जत आया मैं पद्ममुख।।१६।

हे ब्रह्म सुख हैं जितने। तुम्हरी आशा से तज आया मैं।।२७।

हे ब्रह्म खेला लीला जो हैं। तुम्हरे भरेसे छोड़ आये।।२८।

हे ब्रह्म नृत्य वाद्य गीत। तुम्हें आश्रित न देखे नेत्र।।१९।

हे ब्रह्म यात्रा तीर्थाटन। करके न देखता नयन।।२०।

हे ब्रह्म तुम्हरी जो लीला। न देखूं, नाम का मैं भोला।।२१।

हे ब्रह्म सुखचिन्ता न करके मनमें। पड़ा मैं रहता वन में।।२२।

हे ब्रह्म वन पर्वतों में। भटके होते हूं एकान्त में।।२३।

हे ब्रह्म वृक्ष सङ्ग करे। तुम्हरे आश्रित हो नित्य फिरे।।२४।

हे ब्रह्म ऐसा दु:ख मेरा। दया नहीं है लेश तेरा।।२५।

हे ब्रह्म तुम विन सुनो। कुछ न जानूं और जानो।।२६।

हे ब्रह्म मंत्र यंत्र तीर्थ। न जानू अहो गोपीनाथ।।२७।

हे ब्रह्म जाप होक व्रत। नजानू, तोरे चरणों में चित्त।।२८।

हे ब्रह्म नाना योग मत। न जानू तवाश्रित नित्य।।२९।

हे ब्रह्म ज्ञान ध्यान सूत्र। न साधूं तवाश्रित नित्य।।३०।

हे ब्रह्म मालातिलक ही। तवाश्रित हो तज देही।।३१।

हे ब्रह्म स्मरण। न जानूं। तवाश्रित पुनः।।३ २।

हे ब्रह्म पवन साधना। छोड़े तव पदों की भावना।।३ ३।

हे ब्रह्म अग्नि पूंजू नहीं। हूं मै तवाश्रित ही।।३४।

हे ब्रह्म जल नहीं पूंजू। तुम्हरे चरणों को भंजू।।३५।

हे ब्रह्म ब्रह्मा विष्णु शिव। न पूंजू असरा वासुदेव।।३६।

हे ब्रह्म चन्द्र सूर्य दोई। तुम्हरे भरोसे पूंजू नहीं।।२७।

हे ब्रह्म पृथिवी आकाश। तवाश्रित हो, है नहीं पूजन की अभिलाष।।३८।

हे ब्रह्म योगान्त सिद्धान्त। न साधूं तवाश्रित नित्य।।३९।

हे ब्रह्म वेदान्त न जानता हूं। तवाश्रित जीवित रहताहूं।।४०।

हे ब्रह्म नागान्त न साधकर। तवाश्रित सब आया तज कर।।४१।

हे ब्रह्म नाना महौषधि। न खाए हूं कृपानिधि।।४२।

हे ब्रह्म तुम्हरे नाम भी मै। न जाने सदाश्रित हूं मैं।।४३।

हे ब्रह्म भक्ति न जानकर। भरोसा किये हूं तुमपर।।४४।

हे ब्रह्म पाप पुण्य दोही। न जाने श्रीचरण हूं ध्याही।।४५।

हे ब्रह्म स्वर्ग नर्क दोये। न जाने तवाश्रित हूं जीये।।४६।

हे ब्रह्म शुभाशुभ दोये। न जाने तवाश्रित हूं जीये।।४७।

हे ब्रह्म धर्म अधर्म दोये। न जाने तवाश्रितहूं जीये।।४८।

हे ब्रह्म सत्य और असत्य। न जाने हूं मैं तवाश्रित।।४९।

हे ब्रह्म चिन्ता व अचिन्ता। न जाने नहीं कोई चिन्ता।।५०।

हे ब्रह्म माया और निर्माया। न जानूं दया या निर्दया।।५१।

हे ब्रह्म सुख दुःख नहीं जानूं। तवाश्रित हो एक मानूं।।५२।

हे ब्रह्म लोभ और निर्लोभ। नहीं मानता पद्मनाभ।।५ ३।

हे ब्रह्म क्रोध अक्रोध ही। तवाश्रित हो जानूं नहीं।।५ ४।

हे ब्रह्म विषया न जानूं। निर्विषया क्या कैसे जानूं।।५ ५।

हे ब्रह्म भय और निर्भय। जानूं नहीं हे मृथ्युञ्जय।।५ ६।

हे ब्रह्म निद्र अनिद्रा ही। तवाश्रित हो जानूं नहीं।।५ ७।

हे ब्रह्म जन्म और मरण। न जानू, आश्रित हूं श्रीचरण।।५ ८।

हे ब्रह्म क्षुधा व अक्षुधा। तवाश्रित हूं न कोई वाधा।।५ ९।

हे ब्रह्म तृषा और अतृषा। न जानूं तुम्हरे भरोसा।।६ ०।

हे ब्रह्म शीत अशीत ही। तवाश्रित मैं जानूं नहीं।।६ १।

हे ब्रह्म गम्य अगम्य न जानी। आसरा तुम्हारा देवस्वामी।।६ २।

हे ब्रह्म काम कन्दर्प ही। तवाश्रित हो जानूं नहीं।।६ ३।

हे ब्रह्म हेतु मैं न जानू। अहेतु को कैसे जानूं।।६ ४।

हे ब्रह्म नाना वयाधियां है। तवाश्रित हूं सताता नहीं है।।३ ५।

हे मन पञ्चमन मैं ही। तवाश्रित हूं जानूं नहीं।।६ ६।

हे ब्रह्म पच्चीस प्रकृति। न जानूं तवाश्रित निति।।६ ७।

हे ब्रह्म इन्द्रिय एकादा। नजानूं तुम्हरे नामे आश।।६ ८।

हे ब्रह्म षड़ऋषि जो है। तवाश्रये वाधक नहीं हैं।।६ ९।

हे ब्रह्म हैं जो त्रिगुण। जानूं नहीं मैं नारायण।।७ ०।

हे ब्रह्म इन सब को मैं ही। तज चुका हूं भावग्राही।।७ १।

हे ब्रह्म किसीको न रोकता। तुम्हरे भरोसा तज देता।।७ २।

हे ब्रह्म तुम्हरे भरोसे में। किसी को न रोकूं देह में।।७ ३।

हे ब्रह्म सभी आशा तज कर। पड़ा तुम्हारे चरणों पर।।७४।

हे ब्रह्म जो करना है कर। मैं पापाष्ठि दुराचार।।७५।

हे ब्रह्म मैं तेरी शरण। निराश होगा नहीं मन।।७३।

हे ब्रह्म तुम आसरा ही एक। दया न हुई अभीतक।।७७।

हे ब्रह्म शरण सोदर। अन्य भरोसा नहीं मोर।।७८।

हे ब्रह्म शरण रक्षण। निर्दय न हो नारायण।।७९।

हे ब्रह्म कृपासिन्धु भये। क्या क्षमा न करना भाए।।८०।

हे ब्रह्म पतित पावन। न तारो तो मारो हे वहन।।८१।

हे ब्रह्म दिन वीते जाए। नजानूं थरो मन में क्या है।।८२।

हे ब्रह्म भक्ति तुम्हारे नाम। न दोगे देह को विराम।।८३।

हे ब्रह्म जग में क्यों कर। तुरंत दहे नाश कर।।८४।

हे ब्रह्म दया तुम में नहीं। मुझ पर निर्दय हो क्यों ही।।८५।

हे ब्रह्म और नहीं भटकूंगा। यहां मैं बैठा ही रहूंगा।।८६।

हे ब्रह्म करो जो मरजी। मैं अब भक्ति हूं वरजी।।८७।

हे ब्रह्म दया यदि होगी। अयाचित वह प्राप्त होगी।।८८।

हे ब्रह्म कभी मांगूं नहीं। मांगा, तुमने दिया नहीं।।८९।

हे सुजन भक्ति की है आश। कहता अरक्षित दास।।९०।

कहूं मैं हे सुजन जन। भक्ति न दी प्रभु जो निर्मम।।९१।

इति

श्री मनचैतन संवादे

महीमण्डलगीता कथने नाम अष्टचत्वारिशोऽध्या निर्दय।

— ० —

उनपञ्चाशत अध्याय (४९)

ब्रह्म पर दृढ़ आशा

अहो चैतन्य सुनो तुमही। भक्ति की आशा तजी मैं ही।।१।

हे ब्रह्म मैं यदि चित्त में होऊँगा। अयाचित तू मुझे देगा।।२।

हे ब्रह्म इ परवत में। तवाश्रित होकर नित मैं।।३।

हे ब्रह्म इइ पवेत से। कहीं न लेना तुम यहां रो।।४।

हे ब्रह्म और न भटकता। भटके भ्रमित ही होता।।५।

हे ब्रह्म ऐसे तुम विचारे। रखा था हृदय में मोरे।।६।

हे ब्रह्म मैं न जानता हूं। तेरी माया से बहकता हूं।।७।

हे ब्रह्म मैं यदि जानता। क्यों कर मैं भटकता।।८।

हे ब्रह्म जगह देख कर। बैठा मैं रहता हो स्थिर।।९।

हे ब्रह्म क्यों इनि दु:ख दिया। क्या कर मुझे भरमाया।।१०।

हे ब्रह्म मेरा क्या दोष कहो। क्यों रखूंगा मैं यह देह।।११।

क्यों भी ब्रह्म द्रोह करे। काहे रहूंगा यह संसारे।।१२।

हे ब्रह्म माया तुम न कर। कहो चस मुझे खुलकर।।१३।

हे ब्रह्म तब मैं जानूंगा। नर देह को तज दूंगा।।१४।

हे ब्रह्म तजे मैं यह तन। तुम में हो जाऊंगा लीन।।१५।

हे ब्रह्म इस देह में मै। द्रोह कर्म अरजा है मैं।।१६।

हे ब्रह्म नहीं तो क्या करते। निर्दय क्या मुझ पा होते।।१७।

हे ब्रह्म इस दहे को तुमही। नाश करो है सर्वदेही।।१८।

हे ब्रह्म मीन रूप फिर। नाशो तत्काल यह शरीर।।१९।

हे ब्रह्म कूर्म रूप होए। तत्काल नाश करो मोहे।।२०।

हे ब्रह्म वराह रूप लेकर। नाश करो हे यह शरीर।।२१।

हे ब्रह्म रूप नृसिंह वँदहूं। यह देह छोड़े शून्ये रहूं।।२२।

हे ब्रह्म वामन रूप धरे आओ। मुझे पैरतले नाशे जाओ।।२३।

हे ब्रह्म रूप पर्शुधर। अमोह परशु से नाश करो।।२४।

हे ब्रह्म राम रूप लेकर। अमोह तीर से नाश करो।।२५।

हे ब्रह्म कृष्न रूप लेकर। अमोह चक्र से नाश करो।।२६।

हे ब्रह्म बौद्ध रूप सूनो। तुम हुए नाश पुनः।।२७।

हे ब्रह्म यदि कल्की तक रहूंगा। तब मैं निन्दित करूंगा।।२८।

हे ब्रह्म छः अबतारों में। भोग किया है शरीर में।।२९।

हे ब्रह्म राम रूप अब। नाश न करो तुम कब।।३०।

हे ब्रह्म सूनो रूप राम। रखो तो भक्ति दो श्रीराम।।३१।

हे ब्रह्म युगयुग रहूंगा। तुम्हारी भगति साधूंगा।।३२।

हे ब्रह्म अक्षय अमरे। शरीर धरे लीला करे।।३३।

हे ब्रह्म नवखण्ड पृथ्वि। प्रलय हो भी नहीं भीति।।३४।

हे ब्रह्म दया यदि होए। गुहारूं भगति दो मुझे हे।।३५।

हे ब्रह्म न दोगे तो कही। यह राम रूप नाशो तुमही।।३६।

हे ब्रह्म मांगु इतना भर ईश। क्षमा करे नाही धरे दोष।।३७।

हे ब्रह्म बारंबार कहता हूं। भगति ही मैं मांगता हूं।।३८।

हे ब्रह्म तुम जानो जो नहीं देते। तो मेरा दोष न धरते।।३९।

हे ब्रह्म तुम्हरो चरणों की आशा। किया अनुक्षण महं भरोसा।।४०।
हे ब्रह्म तुम्हरी दया भयी। गीता की जो रचना की।।४१।
हे ब्रह्म भगति मंगने से। माया तुम करते मुझसे।।४२।
नहीं तो दया है तुम्हारी। यह मेरी आस्था है भारी।।४३।
तुम्हारी दया है जो माही। तो गीता की योजना बनायी।।४४।
नहीं तो मैं कैसे विचारता। पदेक बोल भी न पाता।।४५।
तुम्हरी दया से यह प्रमाश। दोश न धरो पीतवास।।४६।
हे ब्रह्म देव नारायण। अर्क्षित दास तेरी शरण।।४७।
हे सुजन जन कहूं। दोष न धरना हे केहु।।४८।
यह गीता जो पाठ करे। प्रभु की दया से वह तरे।।४९।
धनादि पुत्र वाञ्छा सारे। मांगे तो प्राप्त होगा सारे।।५०।
जो जन भगति-कामना। करे, हो यदि प्रभु की भावना।।५१।
तब न इस गीता का अर्थ। जानेगा इसका जो तथ्य।५२।
नहीं तो वह जानेगा नहीं। जिस पर प्रभु की कृपा नहीं।५३।
इस गीता में ही भगति है। सिवाय और कुछ नहीं है।।५४।
जो जन भगति चाहेगा। औरों से वह वितरेगा।।५५।
जब वह साधेगा उसपर।। युगयुग रहेगा अमर।।५६।
प्रभु की कृपा उस पर होगी। साथ पलेक न छोड़ेगी।।५७।
एषसी है योग की महिमा। क्या भी बताऊं उसकी सीमा।।५८।
मुझ पर प्रभु की कृफा भयी। यह गीता स्फूति जो हुई।।५९।
मेरा जो अनुभव जितने। गीता से जानों विज्ञ जने।।६०।

प्रभु दया से यह गीता रचना। न पायी जो भेद-भावना।।६१।

महा गुप्त गीता यही। अथाह थल कूल नहीं।।६२।

करे मैं थल नहीं पाया। भ्रमित हो मैं बहक गया।।६३।

प्रभु निर्दय होने पर। भगति न दे माया कर।।६४।

मुझे वे तारें या मारें। जो चाहें प्रभु वही करें।।६५।

भगति योग विन अन्य। मरूं भी न साधूं अन्य ज्ञान।।६६।

हे प्रभु इस गीता में मोही। झूठ सच क्या है कही।।६७।

इस में दोष है मोर। क्षमा करो हे चक्रधर।।६८।

मैं तो हूं सदा अपराधी। तुम तो भये क्षमानिधि।।६९।

ये प्रभु तुम्हरे भरोसे ही। पाप पुण्य मैं हरूं नहीं।।७०।

हे प्रभु पतित पावन। अर्क्षित दास तेरी शरण।।७१।

तुम जो मुझे दूर करो। छोडुंगा नहीं साथ थारो।।७२।

तारो न तारो मेरे आशा। तुझ विन नहीं है भरोसा।।७३।

हे सुजन जन कहूं। महीमण्डल में जात मैं हूं।।७४।

सेवा प्रभु कर न पायी। महीमण्डल में शंका हुई।।७५।

तो यह महीमण्डल गीता। कही है मैने मेरे चिन्ता।।७६।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

मही मण्डल गीता कथने नाम उनपञ्चाशतोऽध्याय

— ० —

पञ्चाशत अध्याय (५०)
भक्ति महिमा

मन चैतन्य पैर पडे। जय शब्द से कर जोड़े।।१।

भय काँपे थरथर। कहे मैं जो हूं दुराचार।।२।

मैं पापी हूं पामर। जय त्रिभुवन के ईश्वर।।३।

क्यों मुझे पृथ्वी पर जन्माया। मानव तन मुझे दिया।।४।

पशु रूप जात ही कराते। तुम्हारी माया से मारते।।५।

अक्षय शरीर जो दिया। मारते क्यों कर माया।।६।

माया को तेरी सत्य माना। भ्रमित हो देखा कर्म नाना।।७।

हे प्रभु माया की मुझसे। भरमाये माया के पथ से।।८।

अब सुदया हो मुझपर। माया तुम्हारी होए दूर।।९।

तुझ विन अन्य जानूं नहीं। जय तू जय यदुसाइँ।।१०।

जय तु जय भावग्राही। सचराचर स्वामी तुम ही।।११।

जय तु जय योगेश्वर। मैं तेरा चरण किङ्कर।।१२।

जय तु जय निरञ्जन। जय तु जय भगवान।।१३।

जय तु जय अन्तर्यामी। तुम दिनमणि देवस्वामी।।१४।

जय तु जय परंब्रह्म। घटघट में करते विश्राम।।१५।

जय तु जय हे जीवन। जय तु जय हे परम।।१६।

जय तु जय भावग्राही। छप्पन कोटि जीव तुम ही।।१७।

जय तु जय चिन्तामणि। को सके तुम्हारो नाम गुनि।।१८।

जय तु जय भावग्राही। तेरे नामों का अन्त नहीं।।१९।

अनेक नाम तुम्हारा है। तेरा जो नाम गुप्त ही है।।२०।

अपना नाम रख गुप्त। भगत नाम करते ख्यात।।२१।

भगत तेरे पिताहोए। नाम दादा तुम्हारा दिये।।२२।

वही नाम मैं कहताहूं। उन्ही नामों को मैं लेता हूं।।२३।

सब तो कह न पाऊँगा। कुछ कुछ ही मैं बोलूंगा।।२४।

नाम तुम्हारे हैं अनेक। सुनों मैं कहताहू कुछ एक।।२५।

तू ब्रह्मा विष्णु महेश्वर। सभी घटों में है विहार।।२६।

तुम हो मत्स्य व कूर्म। वाराह नृसिंह तेरा नाम ।।२७।

तुम हो वामन पर्शुराम। तुमही हो राम बलराम।।२८।

बौद्ध कल्की हे नाम तेरा। दश अवतार सभी तेरा।।२९।

जगत करता तुम हो। ब्रह्माण्ड करता भी तुम हो।।३०।

तुम महीपति सुलोचन। कुण्डलि सब के हो धन।।३१।

ब्रह्मण्ड नायक शिखर। आकाश पति धराधर।।३२।

तुम लोक स्वामी क्षेमेश्वर। लोक सारङ्ग चक्रधर।।३३।

श्याम सुन्दर वंशीधर। तुम सनातन सर्वाक्षर।।३४।

तुम सत्य वसु सत्यसम। मङ्गल परम ईशान।।३५

हे प्रभु तुम हो पुरुषोत्तम। भुज गौतम तुम काम।।३६।

वेद नियम मधुयम। तुम प्रजापति। परंब्रह्म।।३७।

नाम हे लज्जा। निवारण। अद्भुत हो प्रीतिवर्द्धन।।३८।
गोविन्द कमलनयन। पुरजित विदाता हो पुनः।।३९।
महाराजा जो नाम भी है। जानकीवल्लभ कहाए।।४०।
राधावल्लभ यदुमणि। तेरा नाम घाटिआ है फुनि।।४१।
वृन्दवती वल्लभ है नाम। सरस्वती वल्लभ भी नाम।।४२।
काचरा माधोई पवन। निर्माया मायाधर नाम।।४३।
नन्दि कोधण्ड चापपाणि। सुघट नागर हो फुनि।।४४।
चकानयन व श्रीधर। अमान्यमान्य ज्येष्ठाक्षर।।४५।
तुम चक्री कौशल्या नन्दन। तुम प्रु सकल जीवन।।४६।
नन्दी अधम उद्धारण। कौत्सुभ मणिधारी नाम।।४७।
लवणि चोर हो वकारी। अधारी नाम है शण्ढारी।।४८।
तुम जगदीश गङ्गाधर। यशोदा बाल नाम थारो।।४९।
नृपति रक्षक थारो नाम। सुदामा दारिद्य भञ्जन।।५०।
गोकुल कृष्ण अन्तकारी। गोपाल कृष्ण मुरलीधारी।।५१।
सारथि हटिआ नागर। त्रैलोकनाथ नाम थारो।।४२।
लक्ष्मण लज्जा निवारण। थारो नाम दीन अवधान।।४३।
आत्मा सवुरि वैश्य फिर। लक्ष्मी नायक यदुवीर।।५४।
इस भांति नाम का प्रकाश। वॅदई अरक्षित दास।।५५।
अहो सुजन जन सुने। भक्त नामित नाम वखानें।।५६।

भक्ति के सिद्ध तपस्वी महापुरुष अरक्षित दास इस अध्याय में जो नाम गिनाए। हैं सबके सब संस्कृत हो या ओड़िआ पुराणों के हैं कुछेक गीति कविता के भी हैं। सभी नाम नामवाचक विशेष्य पद नहीं विशेषण भी है जिसकी पृष्ठभूमि पर घटित कोई घटना है जो ग्रंथोंमें आख्यायित है। काचरा, घाटिआ आदि कुछेक शब्द हैं जो केबल उत्कलीय भागवत में प्रयुक्त हैं, संस्कृत में वे प्रसङ्ग नहीं हैं। हालाँ कि प्रभु का एक नाम है सर्वनाम। इस नाम का प्रयोग महापुरुष ने किया नहीं है। हर नाम की भिति पर स्थित आख्यान की गहराई तक पहुंचना किसी भी पाठक के लिए सम्भव नहीं है। प्रभु तो सर्वनाम हैं, अर्थान्वित न कर माने पर ही पाठकों से अनुरोध है अपने बोध अन्तर्वक्षु से प्रभु दर्शन प्राप्त होकर नाम स्मरण करलेंगे। वही तो सर्वज्ञ, कवि सङ्गीतज्ञ गायक भक्त शिरोमणि सूरस्वामी की भक्तियोग की सिद्धि थी। वेसा ब्रजभाषामें सूरस्वामी की रचना कथासागर में बहुतरे नाम हैं। अवधि में गोस्वामी रचित मानस में भी श्रीराम प्रभु के नेक नाम हैं। सारे आपातत: गुण वाचक विशेष - अनुवादक)

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम पञ्चाशतोऽध्याय

— o —

एकपञ्चाशत अध्याय (५१)

भक्त नाम कथन

अहो चैतन्य सुनो वाणी। और जो नाम है तुम्हारो फुनि।।१।

वह नाम कहताहूं सुनो। भक्ति देने का नाम वखानो।।२।

महाभय नाशन तुम ही।। नीलाद्रि सिंह हो तुम ही।।३।

अनन्त प्रतिहारी नाम। जगमोहिनी अभिराम।।४।

महावीर्य स्वरानन्द भये। सम्पूर्ण पूर्ण बसु होए।।५।

ब्रह्मा विवर्द्धन ब्राह्मण। हिरण्य वक्ष विदारण।।६।

ब्रह्म शिरभूत भावन। परम गति थारो नाम।।७।

भावन हे धरणीधर। प्रधान पुरुष ईश्वर।।८।

स्वयंभु लोहिताक्ष वीर। अप्रमेव हो सर्वेश्वर।।९।

हिरण्यगर्भ विश्व योनि। अमृत विरारोह फुनि।।१०।

अमोघ व सर्वदर्शन। हिरण्य नाभ आवर्त्तन।।११।

नरसिंह वपु थारो नाम। तुम सदा योगी गोप्ता पुनः।।१२।

तुम हो स्वधाता महिपति। तिहारो नाम गोविन्द पति।।१३।

अदृश्य श्रीखण्डी तुम नर। तुम हो खिल विशोदर।।१४।

क्रोधहा तुम श्रृतिसागर।। तू प्रकाशन सर्वेश्व।।१५।

विराम सत्य धर्मप्राण। पद्मकर हे नवेक्षण।।१६।

मृत्युञ्जय कालकारण। विंशबाहु सर्वलक्षण।।१७।

तू पद्मगर्भ महीधर। पीरबाहु है नाम तोर।।१८।

गुप्त धर्म विद्वत्तम। तू परमेष्ठि महाधन।।१९।

तू ज्ञानगम्य पुरातन। अमूल्यनिधि व दारुण।।२०।

तू सत्यधर्म सत्यसन्ध। मोदिनीपति व कपीन्द्रं।।२१।
मरिचि महाश्रृङ्ग तुमही। कपिलाचार्य गुप्त हो ही।।२२।
तू महा वाराह गभीर। श्यामाङ्ग शुक्र गदाधर।।२३।
अष्यवंशी के कान्त भये। विमलाक्षवल्लभ हुए।।२४।
द्रौपदी रक्षक हो तुम ही।। जामुड़लिआ नाम है ही।।२५।
तू भक्तप्राण भक्तधन। तू चौवर्ग दाता पुनः।।२६।
दुःखीयारों के वित्त तुम ही। भक्तरक्षण नाम है ही।।२७।
इन्द्रकर्मा वायु वाहन। सर्वत्र सुख तुम हो पुनः।२८।
पराजित सुलभ हो। अनन्तचाप तुमही हो।।२९।
सर्वंसह पाप नाशन। तू सत्य धर्म परायण।।३०।
तू सत्य आचार अक्षर। आदित्य नाम धनेश्वर।।३१।
अरूपानन्द श्वामघन। रघुमणि रघु नन्दन।।३२।
नाम वैकुण्ठ नायक। फिर रघुकुल तिलक।।३३।
नीलाचल दुर्वादल हो। तुम ही जगमोहन हो।।३४।
यज्ञपति रथाङ्गपाणी। आत्मयोनि है नाम फुनि।।३५।
अनन्त श्री तिहारो नाम। जन्म मृत्यु है भी नाम।।३६।
अयोध्या नायक कृतज्ञ। द्वारका नायक निर्गुण।।३७।
वर पतित उद्धारण। जानकी वल्लभ व्याख्यान।।३८।
नीलाद्री नायक है नाम। अचल सत्य नारायण।।३९।
तू पुष्पराग हो वहन। रणप्रिय व शरासन।।४०।
तू निष्ठा शान्ति परायण। शुभाङ्गी नाम शङ्कर्षण।।४१।
खण्ड परशु विशोधन। तू धन्वा शोक विनाशन।।४२।
हलायुध श्री महावीर। श्रीनिवास व श्रीधर।।४३।

केशीहा सत्य परायण। तू अनिर्द्देश्य वपु पुनः।४४।
तू प्रतिरथ कृपागम्य। तू महारोघ महाकर्म।।४५।
तू महाकर्मा विश्वमूर्ति। तू वसुरेता प्रजापति।।४६।
तू लोकबन्धु प्रजागर। धनुर्वेद सर्वरी कर।।४७।
ये समी नाम हैं तिहारो। भक्तों ने कहाहै अपारो।।४८।
तुम्हार अपना है अदृश्य। कहता अरक्षित दास।।४९।
हे सुजन जन जो है। उनका नाम गोपन ही है।।५०।

(भक्ति योग के सिद्ध तपस्वी महापुरुष अरक्षित दास ने जो इस अध्याय के अन्तर्गत उल्लेख किया, आशय यह है कि ये सारे नाम तो प्रभु के हैं ही पर उनका वह नाम जिससे भक्त सुमिरन करे वह है नहीं।। अध्याय के ४९-५० वें पदों में महापुरुषने स्पष्ट कर दिया है। ये वारो नाम भी विशेषणात्मक है, किसी न किसी प्रसङ्ग से जुड़े। कुछ अर्थहीन लगे। हो सकता है मेरी अभिज्ञता के कारण। विद्वान पाठकगण जाँच लेंगे, प्रार्थना है। अरूप, अनन्त, असीम, अक्षर, अजन्मा, अजर, अचिन्त्य, अमर, अव्यय, अव्यक्त, अप्रतिम, अप्रमेय, अप्रमित, अविनाशी, अपरिसीम, अकल्पनीय, अवर्णनीय आदि आदि केवल अ अद्याक्षर के ये शब्द तो तत्काल गिनाए जा सकते है। बाकी और वर्ण भी हैं। भीष्म पीतामह ने शरशय्या पर से जो प्रार्थना की वह है विष्णु सहस्त्र नाम। पुराणों में तथा अवधि ब्रज, भोज राजस्तानी आदि जो कोली भाषा वर्ग के हैं। जिनके संस्कृतनिष्ठ तता देशज शब्दों के प्रयोंग हिन्दी में है विशेष कर वारणसी, इलाहवाद के आधुनिक समकालीन रचनाकारों के द्वारा। फिरभी प्रश्न तो अनुत्तरित रह ही जाता है कि भक्त प्रभु-स्मरण करे तो किस नाम से करे जो अदृश्य अव्यक्त। सनथ सिद्ध भक्त महापुरुष की यही जिज्ञासा है - अनुवादक)

इति

मन चैतन्य संवादे

महीमण्डलगीता कथने नाम एक पञ्चशतोऽध्याय

— ० —

द्विपश्चाशत अध्याय (५२)
प्रभुनाम कीर्त्तन

अहो चैतन्य सुनो वाणी। औ जो नाम कहूं फुनि।।१।

सुनो मैं कहूं वे जो नाम। भक्तों का दिया है वह नाम।।२।

अनेक मूर्ति विशेचन। हो हेमाङ्गी भय नाशन।।३।

मानवे सत्य मेधा भये। दुर्गम दुराभास हुए।।४।

कोयि ब्रह्माण्ड नाथ तुम ही। तेरा नाम कालिआ कन्हाइ।।५।

भो प्रभु भूपति तुम ही। हो दशाशिर वैरी ही।।६।

विभीषण रक्षण तुम हो। यमदग्नि सुत तुमही हो।।७।

लक्ष्मण सखा तुम भये। बशिष्ठ शिष्य तुम हुए।।८।

अहल्या निस्तारण भये। विश्वामित्र शिष्य भी हुए।।९।

नाम प्रलंवा वधकारी। तुम पुतना शोषणकारी।।१०।

अनन्द रूप है तिहारे। खरदूषण वध करे।।११।

कुबुजा निसतारण होए। बाली वधकारी भये।।१२।

वीरवर पद्मनयन। तेरा नाम जगत धारण।।१३।

तुम राधापति हुए। जगतपति तुम भये।।१४।

तुम हो भूततत्वज्ञाता। भूव कारण विख्याता।।१५।

तू विश्वरूपी युक्तेश्वर। ऋषभ बुद्ध अवतार।।१६।

तू हो शतृघ्न दिव्य रूप। तू शुक्र हंसरूप।।१७।

धर्म पत्नी के गर्भ में तुम ही। नारायण रूप में जन्मे ही।।१८।

लक्ष्मी सीतापति ही। सण्डका अदुव तुमही।।१९।
देखता कुञ्ज विनोसिआ। डरता तूं गुंजमालिआ।।२०।
तू चउवर्ग अधिकारी। भो देव सामन्त मुरारी।।२१।
तुम तो ब्रह्माण्ड ईश्वर। जगन्निवास नाम तोर।।२२।
तुम हो जगत ईश्वर। हस्तीनापुरेक नाम तोर।।२३।
देवकी बला ज्ञानगुरु। कालरूप है नाम थारो।।२४।
अभयवरा महीधर। दीक्षागुरु है नाम तोर।।२५।
विचित्र कर्मा तुम हो प्रभु। कर्म अकर्म तुमही विभु।।२६।
तू दीन जन तारण। विचित्र माया तुम हो पुनः।।२७।
राजधीराजन हे तुमही। भूतात्मा पुतात्मा तुमही।।२८।
ईश्वर रक्षक थारो नाम। इन्द्रक्षक तुम भी पुनः।।२९।
भक्त रक्षक नाम तुम्हारो। ब्रह्मा रक्षक नाम तिहारो।।३०।
हनुमन्त प्रभु भये। सुग्रीवर सखा हुए।।३१।
भ्रात विदित तुम्हारो नाम। विश्वामित्र प्रिय शिष्य तुम।।३२।
कौशल्या नन्दन तुम हो। विद्यानिधिपति तुमही हो।।३३।
शरणरक्षण है नाम। सौमित्री वत्सल भी नाम।।३४।
तुमही राजा राम भये। नीलाद्रीराज कहलाए।।३५।
पत्थर घर शान्त तुम ही। सामन्तपति नाम है ही।।३६।
कृष्णराज जो होए। बनिया रघुवत्सा भये।।३७।
तुम चौवर्ग दानी भये। तुम पूर्णानन्द नामित हुए।।३८।
तुम कोटि ब्रह्माण्ड नायक। चौवर्ग के हो दायक।।३९।

विभीषण शरण दाता तुम ही। विद्या आयुधारी तुम ही।।४०।

संखासुर के वैरी हुए। कंस के वैरी कहलाए।।४१।

कलपतरु भगवान। तुम निरंजन नारायण।।४२।

गोपी जीवन हे मुरारी। तुम बासुदेव सुत हरि।।४३।

तुम नागदर्प गंजन हुए। अर्जुन भंजन जो भये।।४४।

अहो तुम कमला विलास। महाराज नाम से प्रकाश।।४५।

केशीसूदन कृपासिन्धु। पीत वसन दीनबन्धु।।४६।

बैकुण्ठपति शून्य नाथ। तुमही हो नीलाद्रीनाथ।।४७।

तुम बासुदेव चक्रधर।। इन्दाधिपति नाम तोर।।४८।

तुम रघुनाथ वेणुधर। वैकुण्ठनाथ नाम तोर।।४९।

यादवपति हे अनन्द। वैकुण्ठ साइँ है अच्युत।।५०।

ये सारे नाम तेरा प्रकाश। कहता अरक्षित दास।।५१।

हे सुजन जन सुने। प्रभु के नाम जो वखाने।।५२।

(यह अध्याय एक प्रकार पूर्व अध्याय का सम्प्रसारण है। कुछेक नाम ऐसा हैं जो उत्कलीय लोक कथाओं के नाम है तथा कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें अर्थान्वित करना अन्तत: मेरी अज्ञानता के कारण सम्भव नहीं है। - अनुवादक)

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम द्विपञ्चाशतोऽध्याय।

— ० —

त्रिपञ्चाशत अध्याय (५३)
प्रभुनाम कीर्त्तन

अहो चैतन्य सुनो बोलूं। और नामों को मैं वखानूं।।१।

दैतारी नाम जनार्द्दन। तेरा नाम चाणुर मर्द्दन।।२।

जगज्जीवन हे मुकुन्द। पुरुषोत्तम रामचन्द्र।।३।

रघुपति मुरली धर। वासुकी पति नाम तोर।।४।

खिल ब्रह्माण्ड नाथ तुम ही। निरेखि निस्तारण तुम ही।।५।

शंखचक्र धारी हुए। नृसिंह आदिमूल भये।।६।

सुपर्ण साइ विद्याधर। अचिन्तामणि पीतांवर।।७।

तुम सत्यभामापति भये। जलाधिपति कहलाए।।८।

तू दिव्य सिंह पद्ममुख। बाहु छाया दे मुझे राखो।।९।

गरुड़ आसन राघव। परात्पर नाथ माधव।।१०।

पतित पावन तेरी वाना।। गउर चन्द बाज्र सेन्हा।।११।

तुम त्रिभुवन पति भये। उपइन्द्र तुम कहलाए।।१२।

श्रीवत्सलाञ्छन मोहन। त्रैलोक्य सत्य जीव नाम।।१३।

पद्मचरण दीन जन। तू बज्रसेना देवारुण।।१४।

अहो तू आतङ्क नाशान। तेरा नाम शकटाभञ्जन।।१५।

राजीवलोचन अंबुज। कालान्तक गरुश्रध्वज।।१६।

आरत भञ्जन राजीव। करुणा कटाक्ष माधव।।१७।

श्री गङ्गाधर दीनबन्धु। अखिल पति दयासिन्धु।।१८।

परम पुरुष तेरा नाम। हे जगन्नाथ श्रीराम।।१९।

खज तिलेक कान्त तुम ही। शरण निस्तारण तुम ही।।२०।

सुख सागर रत्नाकर। अमुंव चरण तिहारो।।२१।

परमानन्द दाशरथि। तुम हो मेरा प्राणपति।।२२।

श्रीरामचन्द्र घनश्याम। नलाद्रिचन्द्र तेरा नाम।।२३।

अभय पङ्गज श्रीरङ्ग। संसार भर भरा रङ्ग।।२४।

कमल लक्षण निर्गुण। तू चुड़ामणि महारण।।२५।

ठाकुर शिरोमणि भये। आरत त्राण कहलाए।।२६।

नीलाद्री वाञ्छानिधि तुमही। अनन्त शयन गुसाइँ।।२७।

मुरलीपाणी तुम भये। बेणुपाणि जो कहलाए।।२८।

त्रैलक्य चिन्तामणि तुम ही। त्रैलोक्य ईश्वर गुसाई।।२९।

कमलाकान्त देयराय। नर्कनाशन नन्द पोए।।३०।

करुणश निधि गोवर्द्धन। तू लच्छमन जनार्द्दन।।३१।

वैकुण्ठ विहारी केशव। तेरा नाम जगत वल्लभ।।३२।

त्रैलोक्य मोही नीलांवर। आरत भञ्जन सुन्दर।।३३।

जगतनाथ आदिकन्द। परम ब्रह्म नित्यान्द।।३४।

त्रैलोक्य पति नवघन। तुम हो शकट भञ्जन।।३५।

जगतबन्धु राधाकान्त। दया सागर नन्द सुत।।३६।

दधिवामन दयाशील। तू प्रभु सकल मङ्गल।।३७।

तू पीतांवर चत्ततन। विश्वेश्वर हो घनश्याम।।३८।

खलमर्द्दन महोदर। पङ्कजकर क्षमाशील।।३९।

जगत जीवन जो भये। भक्त जीवन कहलाए।।४०।

दुर्गामाधव रूपकान्ति। कंसारी तामस मूरति।।४१।

कृष्ण अनादि निराकार। तुम हो करुणा सागर।।४२।

नील सुन्दर पद्मधर। तू वृन्दावन चन्द्र कर।।४३।

महिमामेरु महाबाहू हो। श्रीकृष्ण चन्द्र तुमही हो।।४४।

पुरुषोत्तम पद्ममुख। गरुड़ विहारी सुरेख।।४५।

भक्तवत्सल भक्तपति। कृपाजलधि हे नीपति।।४६।

तुम हो क्षत्री शिरोमणि। तुम हो प्रभु चक्रपाणि।।४७।

पुण्डरीकाक्ष हो श्रीहरी। तू वनमाली चक्रधारी।।४८।

कपट भञ्जन श्रीपति। तुम हो चतुर्द्धा मूरति।।४९।

शून्यपुरुष हे परम। आतङ्क भञ्जन थारो नाम।।५०।

इस प्रकार नाना नाम तो है। पर तेरा नाम गोपन है।।५१।

अरक्षित दास कहे। तेरे नाम में क्या है।।४२।

हो यदि तुम्हारी दया मुझपर शेष। करदोगे अवश्य प्रकाश।।५३।

हे सुजन जन मैंने कही। अपना नाम न जाने कोई।।५४।

इति

श्रीमन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम त्रिपञ्चाशोतोऽध्याय।

— ० —

चतु:पञ्चाशत अध्याय (५४)
प्रभुनाम कीर्त्तन

अहो चैतन्य सुनो वाणी। और नाम मैं वखानूं फुनि।।१।

वे नाम अब कहूंगा मया। क्षमाशील है करो दया।।२।

तुम हो त्रिवेदे उत्तम। परमेश्वर है थारो नाम।।३।

तू विश्वरूपी दयानिधि। श्रीकृष्ण गोपाल जलधि।।४।

शत्रुतापन तुम कहाए। पद्मलोचन तुमही भये।।५।

दारुब्रह्म हे विराट तुमही। आतङ्क नात्र हे गुसाइँ।।६।

केशीसूदन तेरा नाम। कहाए करुण वदन।।७।

गोविन्दचन्द्र वृन्दावन। मथुरानाथ तेरा नाम।।८।

तेरा नाम कोदण्डधारण। कहाते श्रीलक्ष्मी जीवन।।९।

श्यामबन्धु हे सारङ्गधर। हंसपुरुष हे ईश्वर।।१०।

द्वारकानाथ गिरिधारी। रमापति कुञ्जविहारी।।११।

कोदण्डधारी नाम तोर। विश्वनाथ पङ्कज धर।।१२।

मदुसूदन अवधूत। चक्रपाणि हो अच्युत।।१३।

तुम हो नन्दिघोष ध्वज। कहाओ आतमा अनुज।।१४।

तुम सदानन्द दामोदर। तुम पद्मनाथ चक्रधर।।१५।

तुम हो गोपियों के पति। कंहाओ अरुण मूरति।।१६।

लक्ष्मीवल्मलभ रमानाथ। तुम सत्यवादी सीताकान्त।।१७।

तुम काह्नु कालिआ श्रीधर। महिमा अप्रमेय तोर।।१८।

शरण पञ्जर हे नाथ। अहो हे ब्रह्माण्ड के तात।।१९।

गिरिधारी नाम तुम ही। अज्योति अवर्ण हो तुमही।।२०।

अज्योति पति ब्रह्मराशि। तु राधापति विश्ववासी।।२१।

ॐकार ज्योति बाहद्धरूप। कहाओ वेद हे अद्याप।।२२।

अर्यामा देव नारायण। हे कमलावर सुनो।।२३।

पाण्डव धन कहलाए। मकुन्द मोहन जो भये।।२४।

श्याम सुन्दर व्रजबन्धु। मदन सुन्दर हे सिन्धु।।२५।

अंवुजधारी नाम होता। नरसिंह भी कहलाता।।२६।

तू मधुरिपु रावणारी। मदनमोहन श्रीहरि।।२७।

थारो नाम देव महाबल। नाम करुणा महीस्थल।।२८।

देवकी सुत दीक्षागुरु। तू चापधारी महामरु।।२९।

कला श्रीमुख चकाडोला। ईश्वर नाम तुम हो भोला।।३०।

कमलापति शून्यवासी। देवकी नन्दन श्रीवत्सी।।३१।

यशोदा सुत नन्द काह्ना। शरण सोहर ही माना।।३२।

वैकुण्ठवासी बलभद्र। कोदण्डधारी अनिरुद्ध।।३३।

जलधिनाथ हृषिकेश। अहो तू सर्वज्ञ पुरुष।।३४।

तू सर्वभूत दामोदर। तू निरपेक्ष निर्विकार।।३५।

बालकृष्ण कालीय मर्द्दन। महाप्रभु रघुनन्दन।।३६।

कन्हाइ गरुड़ साहन। वैकुण्ठ पुरुष प्रद्युम्न।।३७।

तु मनोहारी चिन्तामणि। आहे कारुण्य कंवुपाणि।।३८।

रुक्मिणी वल्मभ थारे नाम। तू दीन जनों का तारण।।३९।

नन्द नन्दन हे लक्ष्मीश। विश्वकेशन देवईश।।४०।

तू अन्तरीक्ष गदाधर। तू नन्दसुत गोपबाल।।४१।

किशोरानन्द हो श्रीगर्भ। कज्ज लोचन चतुर्भुज।।४२।

कृपानिधान दानवारी। कृपालु राम हे शबरी।।४३।

क्षिरादासुतापति अज। बद्रीनाथ गरुड़ध्वज।।४४।

अनाथबन्धु धराधर। श्रीवास हरि हे श्रीधर।।४९।

कदंवधारी त्रिविक्रम। जगबन्धु केशी सूदन।।४६।

कालपुरुष नवघन। अलेख कमल लोचन।।४७।

अहो तू गोवर्द्धन धारी। हे नन्दिघोष विहारी।।४८।

गर्वगञ्जन निरञ्जन। करुणा वारिधि है नाम।।४९।

रमारमण क्षमासिन्धु। गौराङ्ग इष्टदाता बन्धु।५०।

पाताल पति कल्पद्रुम। पद्मलोचन तेरा नाम।।५१।

गोपाल कदंव विहारी। महीन्द्र नाम है तोहरी।।५२।

विधुन्तुज इन्द्रा वरज। सारङ्ग देव अधोक्षज।।५३।

विश्वकेशन विश्वम्भर। कैटभ जीत पीतांवर।।५४।

कंसाराति वैकुण्ठवासी। शुभ शउरी बालिध्वंसी।।५५।

तुम बलिया भुत भये। चक्रायुध महाबाहु हुए।।५६।

हे प्रभु सर्व तेरा नाम। संसारे ख्यात अभिराम।।५७।

अपना नाम पर गुप्त ही है। ये नाम प्रकाशित होते हैं।।५८।

जिन्होंने ये नाम विचारे हैं। तुम्हारा नाम न जानते हैं।।५९।

अत: अज्ञान फिर भये। नाना कर्मों में भटके रहे।।६०।

तुम्हारी दया हो यदि किसीपर। वहीजाने गा नाम सत्वर।।६१।
नहीं तो वह नाम अदृश्य। कहता अरक्षित दास।।६२।
सब सुने सुविज्ञ सुजन। महीमण्डल गीता गुण।।६३।

हिन्दी के बोधदर्शी विद्वान पाठकगण अध्यायों के वाचन करते हुए अवश्य देखेंगे कि अध्यायों में उल्लिखित अनेक नाम बहुबार। पुनरावृत नाम हैं। कम ही हैं नामवाची विशेष्य अधिक हैं विश्लेषण जो किसी पौराणिक प्रसङ्ग, आख्यान उपाख्यान से जुड़ा हुआ। भक्ति योग के सिद्धसंत महापुरुष का मानना है कि ये नाम उन अरूप निराकार प्रभु के हैं नहीं। ये सारे नाम उनके लीला-नाम हैं। जिनके अन्तर्गत विशेष्य पद है विशेषण भी। उन निराकार महाशून्य में परिपूर्ण प्रभु की दया के अतिरेक भक्ति की प्राप्ति होती ही नहीं है। भक्ति के सिद्ध तपस्व महापुरुष उस करुणा के अधिकारी दो हैं, बावजूद कहतेहैं उस नाम को वे जानते नहीं, न किसी और को पता है जिसकी अन्वषो है उन्हें। सुमिरण प्रार्थना कोई करे तो किस नाम की करे। भारत भर में उन लीला नामों की आराधना, प्रार्थना, संकीर्त्तन कीर्त्तन होती है, भव्य देवालय है, जिनमें वे विग्रह रूप में विराजित हैं, पूजा की निरूपित विधियां है, अनुशासित। उन क्षेत्रों की तीर्थों की मर्यादा प्राशस्ति है अप्रामित। कहूं तो श्लषोक्ति होगी गूड़ को बारबार चखों भी तो मीठापन अटूट रहेगा। हम जैसे सामान्य जनों के लिए सभी देव-देवियां पावन पूज्य हैं, करुणामय हैं और वह पावन तीर्थभूमि भी दर्शनीय है जिनकु स्वतंत्र विशेषता है-अनुवादक)

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम चतुः पञ्चाशतोऽध्याय

— o —

पञ्चपञ्चाशत अध्याय (५५)
शरणागति

अहो चैतन्य सब तुम ही। जात करते सर्वदेही।।१।

दुष्टों के निवारक भये। सर्जनहार आप हुए।।२।

पापी संहार, संतों का उद्धार करते। पर मेरा दु:ख न देखते।।३।

मैं तो महापापी नर। करुणा करो हे मुझपर।।४।

मुझ पर क्यों निर्दय हुए। सर्व जीवन तुम भये।।५।

मैं महापापी दयाकरो। अन्य भरोसा नहीं म्हारो।।६।

तारो या न तारो तुम जानो। गुहार मेरी प्रभु सुनो।।७।

अहो है शरण सोदर। अपराध जो क्षमा करो।।८।

अहो हे जगत सोदर। माया से उतारे हे पार।।९।

है प्रभु अभय चरण। आया हूं मैं तेरी शरण।।१०।

अहो अभय पद्मपाद। हरो हे विषया विषाद।।११।

हे प्रभु कमल लोचन। दु:खीजनों का तुम हो धन।।१२।

दरिद्र दु:खी तो मैं हूं। नाम भजन कर न पाताहूं।।१३।

जग में जितने पापा है। मुझसे बड़ा को नहीं है।।१४।

मैं अब कहता हूं सुनो। मैं पापी बड़ा हूँ अधम।।१५।

जय अजपा परंब्रह्म। पाप मेरा करना। दहन।।१६।

तुम्हारा रूप वर्ण नहीं। नाम भजो तो मिलो तुमही।।१७।

छप्पन कोटि सारे जीव। नाम भजन करते सर्व।।१८।

चलन्त चौदह करोड़ जो हैं। नाम तिहारो जापते हैं।।१९।

निश्चल चौदह करोड है। नाम ले वे चलते हैं।।२०।

डुबन्त चौदह करोड़ भये। तेरा नाम ले डूबे रहें।।२१।

उड़न्त चौदह करोड़ हुए। तेरा नाम ले उड़ते हैं।।२२।

तेरा नाम ही ऐसा है। गोप्य हो घटों में विराजे है।।२३।

तेरा नाम प्रसन्न जिससे है। दया उसे ही प्रापप है।।२४।

नही तो कोई गति नहीं। हे प्रभु दया करो तुमही।।२५।

ये जो छप्पन कोटि जीव। अज्ञान पिण्ड ये है सर्व।।२६।

इससे जो चेते ही रहेगा। तारा नाम ले निस्तरेगा।।२७।

तारी महबिा है अपार। मैं क्या जानूंगा पामर।।२८।

जितने हैं मानव गण। नाम वशः हैं अनुक्षण।।२९।

वृक्ष पाषाण तरु तृण। सभी जापते तेरा नाम।।३०।

तेरा नाम जो तजता हैं। अवश्य नाश वह जाता है।।३१।

तेरे नाम की कृपा जिसपर हो। वह न मरे अमर हो।।३२।

तेरा नाम करे दया मुझपर। महिमा मेरु अकूपार।।३३।

एकाग्र ब्रह्मा रूप तुमही। नित्यमण्डल शायित ही।।३४।

वह नित्य महिमा अपार। शिव ब्रह्मा को अगोचर।।३५।

वह नित्य महिमा अशेश। कहता अरक्षित दास।।३६।

अहो सुजन जन सुने। अपना नाम नित्य माने।।३७।

उस नित्य नाम स्थल नहीं। उस गर्म में सर्व होई।।३८।

उस गर्भ से जन्म मरण होता। सुजन बने उसका ज्ञाता।।३९।

(विज्ञ पाठकगण ध्यान दें। प्रभु करुणा से भक्ति प्राप्त यह भी नहीं जानते कि वे भक्ति सिद्ध महायोगी है। उसी से वे अविरत प्रभु चिन्तन सुमिरण में विभोर समर्पित हो करुणा के लिए प्रार्थना करते रहते हैं। प्रभु क्या हैं वे सही जानते हैं पर अपने को वे पामर पापी ही मानते है। यह उनके चित्त की उदार निरहंकार है। उनमें कोई गर्व दम्भ आस्फालन हैं, सब के लिए प्रेम ही प्रेम बसा रहता हैं। वे कुछ करते नहीं उनके सोचने विचारने पर ही प्रभु वह काम पूरा कर देते हैं। उसी प्रकार परम सिद्ध भक्त संत महापुरुष अरक्षित दास की इच्छा की पूर्ति की है प्रभु ने और एक विशाल शून्य से ओलाशुणी पीठ का विकाश सम्भावित हुआ है। सिद्ध अमरात्मा सर्वग सर्वव्यापि पीठ पर विराजे हुए हैं आश्रित भक्तों पर करुणा वरसाने हेतु - अनुवादक

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम पञ्चपञ्चाशतोऽध्याय

— o —

षट्पञ्चाशत अध्याय (५६)
नाम जपन का काको क्या मिला

अहो चैतन्य अब सुना करे। तेरा नाम जैसा जो जाप करे।।१।

वह मैं बखानूंगा सुनो। जो जैसा चोच करे जानो।।२।

उसे उस भांति आज्ञा होए। उसमें जैसी चिन्ता होए।।३।

तेरा नाम चारों वेद लेते। चौदिशा में प्रकाशते।।४।

तेरा नाम जगन्नाथ ध्याए। पूर्व द्वार के द्वारी भये।।५।

राम ने जपा तेरा नाम। दक्षिणद्वार द्वारी अभिराम।।६।

कृष्णा हैं वह नाम विचारते। पश्चम द्वार संवारते।।७।

नारायण ने नाम ध्वाये। उत्तर द्वार द्वारी भये।।८।

नित्य महिमा है अनन्त। नाम को कर पाएगा अन्त।।९।

शङ्कर ने नाम जाप कर। युगयुग हैं अज्रामर।।१०।

तेरा नाम ध्याये पारवती। ईश्वर समान पाए पति।।११।

ब्रह्मा जो नाम करे ध्यान। करते सृष्टि सरजन।।१२।

विष्णु वह नाम ध्यान करते। समग्र ब्रह्माण्ड पालते।।१३।

ईश्वर वह नाम ध्यान करते। विनाश वे ही करते।।१४।

बरुण वही नाम ध्याय। जलधिपति वे हुए।।१५।

वह नाम ध्याये प्रह्लाद। स्वर्ग में पाया इन्द्रपद।।१६।

यम वही नाम जाप करे। पापपुण्य को वह विचारे।।१७।

इन्द्र जापन करे नामका। अधिकारी है स्वरग का।।१८।

शची ने वही नाम गुनी। स्वर्ग की पटरानी बनी।।१९।

अक्षत यौवना जो भयी। युगगुगान्त स्थायी हुई।।२०।

रोमाञ्च नारद वशिष्ठ। भृगु अंगीरा व दुर्वास।।२१।

अगस्ति मत्स्येन्द्र गोरक्ष ये। नाम जापते अब भी हैं।।२२।

सभी तुम्हारा नाम ध्याए। अमर हो कर बने रहे।।२३।

तारागण वह नाम लेते। रात्र दिवस विहरते।।२४।

अगस्ति नाम जाप किया। सप्त सागर शोख लिया।।२५।

तो नाम वृहस्पति ध्याया। सकल वेद कहते हैं।।२६।

गङ्गा ने वही नाम ध्यायी। पावन तीर्थ कहलायी।।२७।

सूर्य चन्द्र वह नाम लेते। रात्र दिवस विहरते।।२८।

वही नाम लेता है पवन। सभी घटों में विद्यामान।।२९।

जल वह नाम ही ध्याये। सभी घटों में बने रहे।।३०।

अग्नि वह नाम जाप करे। प्रत्येक घय में विचरे।।३१।

लक्ष्मी वह नाम सदा ध्याये। सब को वही अन्न देये।।३२।

सीता ने नाम का चिन्तन। मुक्त हुई तोड़ कार वन्धन।।३३।

वारानिधि जो नाम लेकर। युगायुगान्त है अमर।।३४।

तो नाम चारों मेघ लेते। पृथ्वी पर जल वरषाते।।३५।

नाम की अनन्त महिमा। अन्त न पाएँ सुरब्रह्मा।।३६।

तेतीस कोटि देव सारे। इसी नाम का जाप करें।।३७।

यही नाम ले विभीषण। अमर बना है यह जानो।।३८।

यही नाम हनुमान ध्याए। अमर होकर बने रहे।।३९।

राम ने यही नाम ध्याये ब्रह्म हत्या से पार हुए।।४०।

गरुड़ ने यह नाम ध्याये। तुम्हारा वाहन जो हुए।।४१।

नन्द ने यही नाम ध्याये। तुम्हे पुत्र रूप में पाए।।४२।

दशरथ वह नाम ध्याये। तुम्हे पुत्र स्वरूप पाए।।४३।

गुरुने यही नाम लिये। मृत पुत्र को जीवित पाए।।४४।

सुग्रीवर ने नाम ध्याए। तुम्हे मित्रस्वरूप पाए।।४५।

शबर ने वह नाम ध्याया। उसका निस्तार जो हुआ।।४६।

राजाओं ने वह नाम ध्याये। कारागार से मुक्त हुए।।४७।

बालक गण यही नाम ध्याये। तर्क कुण्ड से पार हुए।।४८।

बलि तुम्हारा नाम लेते। आप उसे संरक्षण देते।।४९।

ऐसे हैं उस नाम के गुण। सोचे तो तुम होते पसन्न।५०।

जो एसे चिन्तन करते। उस पर तुम प्रसन्न होते।।५१।

कहता अरक्षित दास। उसी नाम से मेरी आशा।।४२।

अन्य आश्रित मैं नहीं हूं। जाने सुजन मैं कहता हूं।।५३।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डले गीता कथने नाम षट्पञ्चाशतोऽध्याय।

— o —

शप्तपश्चाशत अध्याय (५७)
नाम ध्याये को क्या भया

अहो चैतन्य सुनें तुम ही। नाम भाव से तेरे ये ही।।१।

भक्तों न किया नाम चिन्तन। संकटों से हुए परित्राण।।२।

मार्कण्ड ऋषि नाम ध्याये। भारी वंकट वे पार हुए।।३।

रुक्मणी ने यह नाम गुनी। और तुम्हारी प्रिया बनी।।४।

बसुदेव ने नाम ध्याये। पुत्र रूप में तुम्हें पाए।।५।

शंख चक्र व गदा पद्म। सदा करते नाम चिन्तन।।६।

कौत्सुभ राजा सदा ध्याये। हैं कण्ठ की माला बने हुए।।७।

नाम गज ने जो लिया। भारी संकट से पार हुआ।।८।

भरतिया पक्षी नाम लिया। भारी संकट से नार हुआ।।९।

तेरा नाम मृगुणी लेकर। बची विपत्ति पार होकर।।१०।

द्रौपदी ने जो नाम लिया। लज्जा का निवारण किया।।११।

ब्रह्मा तिहारो नाम लिये। बड़े संकट से पाए हुए।।१२।

तेरा ना जो अन्ध लिया। वह दिव्य नेत्र प्राप्त हुआ।।१३।

पाण्डव तेरा नाम लिये। घोर संकट से पार हुए।।१४।

तेरा नाम ध्रुव ने लिया। ध्रुव मण्डर में वास किया।।१५।

गोपियों ने वह नाम लिये। संकट से वे पार हुए।।१६।

कुबेर किया नाम चिन्तन। शान्त हुआ वह पाये धन।।१७।

जय-विजय नाम लेकर ही। तेरे द्वार के द्वारी वे ही।।१८।

इन्द्र ने तेरा नाम लेकर। ब्रह्म हत्या से हुआ पार।।१९।

गङ्गाधर वह विप्रवर। नाम तुम्हारा लिया फिर।।२०।

उसे तुम ने स्वयंरूप दिया। उस पर दया किया।।२१।

उद्धव नाम चिन्तन कर। ब्रह्मशाप से हुआ पार।।२२।

अजामिल ने नाम लिया। महापातक से त्राण हुआ।।२३।

भक्तो ने नाम का चिन्तन। कर की पुराण सर्जन।।२४।

तेरा मित्र ब्राह्मण नाम जो । चिन्तन करे स्वर्ग भोग।।२५।

राजा ने चिन्तन जो किया। ब्रह्म शाप से मुक्त हुआ।।२६।

अहल्या ने जो नाम लिया। उद्धार पाषाण से किया।।२७।

कुबजा ने तेरा नाम लिया। नवयौवन रूप भया।।२८।

देवतागण नाम ध्याये। संकटों से तर जाएँ।।२९।

तेरा नाम वासुकी लेते हैं। सर पर पृथ्वी को धरे हैं।।३०।

तेरा नाम पृथिवी लेती है। भार संभाले रहती है।।३१।

तेरा नाम लेकर अवनी। तेरा दशावतार फुनि।।३२।

अवनी भार किया शेष। नाम की महिमा अशेष।।३३।

तेरा नाम जीव-अजीवों में। पूरी हुई समस्त स्थलों में।।३४।

सागर रेत गिना जाए। माया की कलना न होए।।३५।

तेरा नाम जितने ख्यात हैं। उनमें मुकति नहीं है।।३६।

तुम्हे वह नाम दिये भक्त। वे नाम भक्तों में विख्यात।।३७।

तेरा जो नाम न जानते। भक्तदत्त नाम जो जापते हैं।।३८।

दया जिस पर जो होई। तेरा नाम तो जाने वही।।३९।

तेरा नाम जो जैसे ध्याये। उसपर दया वैसी होए।।४०।

मैं पापी कुछ मांगू नहीं। तेरे नाम की आशा है ही।।४१।

तेरे नाम की कृपा होए। अन्य में आशा ही न रहे।।४२।

अब तो सदय तुम होना। भगतियो मुझे देना।।४३।

उस विन अन्य मांगू नहीं। जयजय तू भावग्राही।।४४।

मैं अब गुहारूं हे सुनो। उद्धारो मुझे भगवन।।४५।

मैं जोहूं पापीष्ठ पामर। मेरा जो सोष क्षमाकरो।।४६।

क्षमासागर तू कहाऊ। जयजय तू महाबाहु।।४७।

मुझ पर सुदया तो होए। तेरे नाम पर मन रहे।।४८।

इस नाम पर हो जो लय। रहेगा नहीं यम भय।।४९।

व्यह नाम जो जन पढ़ेगा नित। वैकुण्ठ में वह होगा स्थित।।५१।

उस नाम पर लय जिसका होगा। कहीं भी वह चल पाएगा।।५२।

भूत प्रेत पास न आएँगे। बाघभालू भी न आएँगे।।५३।

महासंग्राम में भी जब होगा। यह नाम स्मरण करेगा।।५४।

अजय जय वह करेगा। वह हर विपदा नेशेगा।।५५।

नित नाम चिन्तन करेगा। रोग व्याधि का नाश होगा।।५६।

दृढ़ हो नाम करे। धन वत्स वह प्राप्त करे।।५७।

यह नाम जो जन पढ़ेगे। ग्रह दोष से मुक्त होंगे।।५८।

यह नाम नित्य जपता होगा। सर्व पातक नाश होगा।।५९।

गहोत्या ब्रह्महत्या जा हैं। सभी पातक दहित होएँ।।६०।

कहता अरक्षित दास। महीमण्डल गीता रस।।६१।

सुजन सुनें जो मैंने कहा। ओलशुणी पर्वत पर रहा।।६२।

प्रभु की सेवा न कर पाया। महीमण्डल में भटके रहा।।६३।

प्रभु की माया में बँधाहूं। तो मैं भरमें कहताहूं।।६४।

(प्रबुद्ध विज्ञ पाठकगण अध्याय के पाठ करते हुए गभीरता से अनुध्यान करें कि भक्तियोग के सिद्ध तपस्वी महापुरुष अरक्षित दास प्रभु के प्रिय भक्त तो हैं ही किन्तु अतीत से लेकर आजतक के भक्ति सिद्ध महापुरुषों की भांति जानते नहीं कि सिद्ध है और भक्ति के लिए प्रभु से बारंबार प्रार्थना गुहार करते रहते हैं, स्वीकारते हुए कि मैं पापीष्ठ पामर हूं मुझ पर दया करो और मुझे भक्ति वंचित ना करो। उत्कलीय पञ्चसखा भविष्य वक्ता, उत्कलीय श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार प्रभु तो भक्तदास है। भक्त केवल सोचे, चाहे तो वे स्वयं वह काम पूरा कर देते हैं। स्पष्ट प्रमाण तो यह है कि भक्त चूड़ामणि अरक्षित दास जब ओलाशुणी पहुंचे तब उनके पास कोई साधन नहीं था, खाने को न टिके रहने को। उन्होंने चाहा भर और भक्तदास ने स्थल को क्रमशः विकशित करके पावन तीर्थभूमि मे रूपान्तरित कर दिया हैं। करते रहेंगे भी। महापुरुष यशोदेह में ओलाशुणी तीर्थ पर विद्यामान हैं। सर्वत्र विराजित प्रभु तो साथ होंगे ही। भला विनयी होने के कारण अपने को अविज्ञ अबोद मानते हुए सुजन जनों को ससी अध्याय के ५० वें पद से अन्त तक उपदेश देते हैं कि इन नात के नित्य जापन चिन्तन से धनधान्य सुख संपदा की प्राप्ति होगी। व्याधियों का नाश होगा, यम भय, भूत प्रेत, हिंस्र पशुभय रहेगा नहीं। किन्तु वह नाम क्या हैं। अरूप अनाकार, अव्यक्त प्रभु का क्या नाम हो सकता है। भक्ति भी वही निराकारस्वरूप है। यह मेरा अनुभव है - अनुवादक)

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम सप्तपञ्चाशतोऽध्याय

— o —

अष्टपञ्चाशत अध्याय (५८)
जीव परम भाव कथन

जयजय जीव परम जये। स्तिरी पुरुष तुमही होए।।१।

छप्पन कोटि जीव भये। स्त्री पुं में विहरते हुए।।२।

जीव परम स्त्री अंग पर। तुमही करते विहार।।३।

पुं अङ्ग में दो हुए। जीव परम विहरते हुए।।४।

एक ही अङ्ग दो भये। खेलते तीन रूप हुए।।५।

तीन से पाँच जो होते हो। जग में लीला करते हो।।६।

एक से पांच रूप होते। लीला के लिए भिन्न होते।।७।

नहीं तो एक रूप मानो। कभी भिन्न नहीं है जानो।।८।

आप ही खेलघर किया। भिन्नाभिन्न करके मरगया।।९।

पांच रूप वह नाश गया। ब्रह्म में जा लीन हुआ।।१०।

वहां से भिन्नाभिन्न नहीं। एक ही अंग है वही।।११।

वहां सह एक रूप जानो। वहां वह दो रूप मानो।।१२।

यहां वे दो रूप हुए। स्त्री पुरुष कहलाए।।१३।

जरव परम रूप धरे। खेलते सब घटो में भरे।।१४।

प्रकृतिगण जात किया। जीव परम मिलादिया।।१५।

उनके सङ्ग जीव परम। माया में फंसे हुआ भ्रम।।१६।

उसी से भिन्नाभिन्न करते। एक ब्रह्म है न जानते।।१७।

हे प्रभु प्रकाशित किया माया। प्रकृति सङ्ग भरमता गया।।१८।

मेरा कोई दोष नहीं कहताहूँ। रहो, तेरी माया में बताताहूं।।१९।

एकदिन मैंने सोचा है। चलो गांव से हो तो आएँ।।२०।

उस दिन सङ्ग कोइ न था। मैं घूम आने को निकला था।।२१।

हमे देख कर नारी एक। डर गयी बेहद चौंक।।२२।

छाती पर लगाए थूक को। चली एक स्त्री को कहने को।।२३।

बोली, तकदीर से बचकर आयी। मैं तो एक पागल के आगे आगयी।।२४।

देखो रे कहां जा रहा है। यह पागल कहांसे आया है।।२५।

वह बोली उसे उस प्रकार। कानों में पड़ता था स्वर।।२६।

सोचा मैं प्रभु माया देखो। हट जाए वह हो विमुख।।२७।

वह तो जनाना हमारी ही। क्योकर पागल मुझे बोलरही।।२८।

मैने भी तो उससे पूझा नहीं। उसीसे वह डर रही।।२९।

मैं हूं उसके हृदय में। वह है मेरे हृदय में।।३०

उसी को कहते जीवात्मा। मैं हूं तो परम आत्मा।।३१।

जीव को स्तिरी रूप जानो। परम पुरुष है मानो।।३२।

अत: अपनी ही पत्नी। नर देह में ज्ञात नहीं।।३३।

वे हरि सवघटों में होएँ। स्तिरी पुरुष दोनो भये।।३४।

एक ही अंग दानों भये। जगत में खेल जो खेलाए।।३५।

प्रकृति गण जात करे। खेलते देह में जो भरे।।३६।

प्रकृतियां खेली हैं उससे। मरे भिन्नाभिन्न कर जिससे।।३७।

जीव परम दोनों जाते। प्रकृति देह को छोड़ते।।३८।

जो करे प्रभु का चिन्तन। वह करे प्रकृति नाशन।।३९।

कहे मैं सभी भूतों में हूं। गुप्त विहार करता हूं।।४०।

स्तिरी पुरुष मैं ही होई। मुझ विन अन्य कोई नहीं।।४१।

ऐंसा कह करता भ्रमण। मैं ही हूं लक्ष्मी नारायण।।४२।

मैं यदि उस भांति सोचता। पागल पद क्यों कर सुनता।।४३।

प्रकृतिगण करें भिन्न। मैं ना करूं भिन्नाभिन्न।।४४।

उर्द्धाङ्गी हो पागल कहे। प्रभु तो मुझसे माया बहे।।४५।

क्यों कर मुझे पागल करी। भाग चली वह पामरी।।४६।

यह बात पूछेंगे बेल आए। भब उससे मेरी भेंट होए।।४७।

क्यों मुझसे वह डरती है। देखते ही जो भागती है।।४८।

अनुक्षण सेवा तो करती है। क्यों कर डरे भागती है।।४९।

प्रभु ने माया की है मुझसे। क्या दोष हुआ है मुझसे।।५०।

पहले प्रभु की थी दया। अब क्यों हो गयी निर्द्दया।।५१।

नहीं तो मुझसे क्यों भागती। होस कथा न पहचानती।।५२।

यह कभी सोचेंगे अवश्य। कथा एक और सुनें रस।।५३।

मैं चित्रकूट में था। पास के गांव को गयाथा।।५४।

धूप गरमी से तड़प गया। शरीर भर मानों तप गया।।५५।

बांफी के भीत मैं गया। सोपान पर बैठ स्नान किया।।५६।

तब वहां पांच स्त्रीयां आयीं। पानी लेने को खड़ी रहीं।।५७।

जब मैने उन्हें देख लिया। तत्काल वहां से हट गया।।५८।

एक स्त्री ने कहा सुन। अब पानी हम लेंगी केसन।।४९।

क्यों भी वह वैष्णव आया। और इस पानी में नहाया।।६०।

कैसे यहां से पानी हम लें। चलो यहां से लौट चलें।।६१।

ऐसा अज्ञान वह भया। बापी के अन्दर नहाया।।६२।।

इस भांति वे पानी लेकर। बाहर रखेंगी चलकर।।६३।

वह गाली स्त्रियों ने सुनी। सब हमें फिर कही फुनि।।६४।

क्यों पोखर को गयी नहीं। ये गालियां क्यों सुनी।।६५।

वे तो अज्ञान स्त्रियां ही हैं। कहा कैसी गालियां उसने दी है।।६६।

छिपे मअं सुनी उनकी गाली। मेरा मन क्राधित हुआ खाली।।६७।

न सह पाया तुम्हरे आगे। कहा वह समझो तो आगे।।६८।

कहा मैं तुम अब सुनों। ये अर्द्धांग हैं यह जानो।।६९।

उसकी बात न समझी जिससे। कुत्सा कर गयी है मुझसे।।७०।

वह क्या हमें कर पाएगी दूर। हम क्या रहें छोड़ कर।।७१।

बोली यह असम्भव वाणी। क्या कही तुमने भी फुनि।।७२।

दानों में कभी भेंट नहीं। कउसे वह अर्द्धाङ्ग भय।।७३।

उस गांव में कभी गये नहीं। क्यों ऐसी भाषा जो कही।।७४।

कहा तुमने अब जो सुन। तुम हो अपना जीवन।।७५।

माया देह में रहकर तू। छोड़ा है सब पूर्व हेतु।।७६।

जीव जो स्त्री अङ्ग है जानो। पुरुष परम है मानो।।७७।

ये दोनों देह में जो हैं। अनुक्षण लीला करते हैं।।७८।
जग में ये दोनों भया। बसते स्त्री पुरुष हुए।।७९।
तुम हो जीव आत्मा। मैं होता हूं परम आत्मा।।८०।
उसी से भार्यं वह बनी। उसकी चिन्ता है पुत्र जानी।।८१।
मैने जो पुत्र उसे न दिया। भर्त्सना मुजे सुनना हुआ।।८२।
अवश्य उसे पुत्र दूंगा। उसकी चिन्ता मोचन करूंगा।।८३।
कोप उसका शान्त हो तो। तब न बुलावा आएगा।।८४।
कहे कैसे वह बुलवाती है। देखना सुनना कहना नहीं है।।८५।
जब वह बलवाएगी घर। कहते किस भांति मगर।।८६।
तब न मुझे विश्वास होगा। तुम्हें मैं पुरुष कहूंगा।।८७।
कहा कि पन्द्रह दिनों में। बुलावा लोगी जानूं वह मैं।।८८।
मुझे तजे तो वह मरे। उसे तज कर हम क्या करें।।८९।
पन्द्रह दिनों में सत्य पाकर। कहा मैं चलूं, कर सन्तजार।।९०।
ऐसे मैं कह कर गया। चित्रकुट में मिल आया।।९१।
कहता अरक्षित दास। जीवन परम को निराश।।९२।
कहूं मैं हे सुजन जन। मुझसे जीव हरा घन।।९३।

काव्यान्तरण का स्तर मूल रचना पर निश्चित अवलंवित होगा। भाषान्तरित करते हुए यह अध्याय मुझे सब से जटिल लगा है। हिन्दी में शब्दों का एक न एक लिंग अवश्य होता है। फिर विभक्ति प्रयोग भावाभिव्यक्ति और वाक्य विन्यास अद्यान्त को असम्पूर्ण वाक्यों के कारण बेहद कठिन लगा। भक्ति योग के परम सिद्ध

महापुरुष के सन्दिधानुभव, उनकी करुणा मुझे तो पार उतार लिया है, तट या अतट वे जाने। स्वप्न में प्रतिभात हुए योगी निगमानन्द की तरह घुंघराले केश, स्मितहास। महापुरुष, काया में क्षीण थे। विदग्ध पाठको से प्रार्थना है कि दोष न धरें। विभक्ति के सूत्र से वाक्य विन्यासित करते हुए कहीं कहीं लिंगकी पावन्दी वाध्य हो नकारी है मैंने। पाठक को संशय तो यह भी होगा कि वक्ता कौन कह रहा है किसे, निश्चित तय कर पाने में वह दिशाभ्रामित होगा, निस्सन्देह। जहां तक मेरा अनुभव है और मेरा जो अन्तर्बोध उसी के आश्रित होकर समीक्षा, विश्लेषणात्मक व्याख्या करने की कोशिश करूंगा। उसे सर्वमान्य न माने और आप भी एकाग्र वाचन चिन्तन से निरूपण हेतु प्रयास करेंगे और मुझ पर तो बड़ी कृपा ही होगी वह कि आप जहां प्रमाद पाएँ सूचित करके इस अकिञ्चन को मार्गदर्शित करने की कृपा करे। भक्ति योग जगबन्धु कृपासागर परमपुरुष की दया करुणा का महादान है। इसकी न कोई रीति है, न कोई आराधना की सुत्र-पद्धति। प्रभु सिद्धि के रूपमें प्रेरणा ही से करुणा की अनाहत धारा प्रवाहित करते हुए अपरितुष्ट रखे रहते हैं भक्त को। अत: जिस दिन से बड़खेमण्डी चन्द्र वंशी आत्रेय गोत्रोद्भव युवराज गंगवंशी अनङ्गभीमदेव उपाधि विभूषित बलभद्र देव (सन.१८०६-१८२८) वैशाख शुल्काष्टमी गुरुबार निशार्द्ध में हर प्रकार सुख सम्पदा, ऐश्वर्य अलंकार तेज कर संवलहीन गृहत्यागी हुए, महीमण्डल गीता ही में महापुरुष ने व्यक्त कर दिया है कि वे उसके दो वर्षपूर्व ही प्रेरित होते आए हैं। वही है उनके जीवन में भक्ति योग की सिद्धि का शुभ पावन लग्न। अपरितोष के कारण सिद्ध महापुरुष ने प्रभु से केवल भक्ति ही मांगी और कुछ नहीं। गृहत्याग के पश्चात ओलाशुणी पदार्पण तक की दीर्घ क्लेशकर यात्रा आप सिद्ध न होते तो अग्नि रह नहीं पाते। उसे हम प्रभु की परोक्ष परीक्षा मान सकते है, जिसमें वे सार्थक सफल हो पाए और तुरीयता में जो विचारते गये प्रभु उसे पूरा करते गये हैं। महापुरुष के ओलाशुणी पदार्पणकालीन महाशून्यता और वर्तमान की परिपूर्णता

अकल्पनीय है। भक्ति योग के परमसिद्ध सहाध्यायी मित्र सुदामा को योगेश्वर के महादानरूपी इन्द्रजाल की तरह ... फिरभी भक्त भक्त ही बने रहे चित्त में तृषा का महाधन समेटे हुए। सोचते हुए की मुझ पर दया है नहीं। मैं कुछ और नहीं मांगता हूं हे अनाकार पुरूषोत्तम, निर्दय न हों ...भक्ति की कामना है मेरी। मेरी अभिलाषा है महापुरुष की तपः सिद्धि के आधार पर ग्रंथ के रूप में कुछ कहने की। आगे कर्त्तापुरुष जगदीश्वर श्यामसका की करुणामयी इच्छा और महापुरुष चाहें तो... मनुष्य, जिसे विवेक रूपी वह महाधन प्राप्त है कि मानवेतरों को, पंचभूतों को जगत कल्याण हेतु सुरक्षा संरक्षण दे। उस मानव का मन है जिसकी राह तेज भटकने की सम्भावना है। उस समय वह विवेक जो चेतना है, अन्तरात्मा में विराजित परमात्मा; मन उसीसे जिज्ञासा करता है जिसका समाधान चैतन्य करता है उपदेश के रूपमें जैसा कि कुरुक्षेत्र समराङ्गण में नर को नारायण। प्रबुद्ध वाचक विचारें कि वे ही नर-नारायण महीमण्डल गीता के मन-चैतन्य हैं। और सभी अध्यायों की समाप्ति स्वरूप महापुरुष दुहराते गये हैं - 'इति श्री मन-चैतन्य संवादे। महीमण्डल गीता कथने ... 'यह उस भक्ति योग के परम सिद्ध, जो प्रभु करुणादत्त अपरितोष के कारण, जाने नहीं वह सिद्ध है और व्याकुल आतुरता से बारंबार प्रभु से मुझ पर दया करें, निर्दय न हों। मैं कुछ और न मागूं, केवल भक्ति .... भक्ति ही।...

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम अष्टपञ्चाशतोऽध्याय

— o —

उनषष्ठितम अध्याय (४९)
जीवपरम भाव

अहो चैतन्य सुनो तुम ही। भारी चिन्दा है मुझे सता रही।।१।

भारिजा हो भर्त्सित किया। क्यों मुझसे वह कोप किया।।२।

तुम तो घट घट में हो। युगल-रूप खेलते हो।।३।

(‘भारिजा’ ओडिआ में देशज रूप है भार्या का। विधान है ‘पुत्रार्थे क्रीते भार्या’। मेरी क्षीण नेत्रज्योति। स्मरण की क्षमता भी क्षीण होती चली है। स्थिति है अब याद नहीं कुछ देर बाद तत्काल स्मरण हो आये। शायद एतेतरीय उपनिषद में जीव परम की गयी है। द्वा वपर्ण सयुजा सज्ञाया सखाया समान वृक्षं परिशस्व याते ... बाकी दो पंक्तियां याद नहीं कर पा रहाहूं जिसके अन्तर्गत ऋषि ने जीव परम की व्याख्या की है। पक्षी पक्षिणी आकर एक शाखा पर बैठे। याद रहे ‘पक्षी’ आत्मा का प्रतीक है। ऋषि ने कहा एक स्रष्टा तो दूसरा द्रष्टा। वे एकात्म जीव परम हैं। ऋषि प्रतिम संत विनोवा ने सम्पूर्ण ग्यारह उपनिषदों की प्रार्थना सभाओं में पदयाक्षा के अवसर पर की है। उन्होंने व्याखा समकालीन यथार्थता की परीयता से की है। अब तो ग्रथ भी प्रकाशित है। ऋषिसंत ने कहा है - पक्षी पक्षिणी एक डाल पर आ बैठे। उन्होंने प्रार्थना की - हमें यही आशीर्वाद दें, जिस दिन हमें दो फल मिले उस दिन तो हम सानन्द भोजन कर लेंगे किन्तु जिस दिन एक मिले हम में से केई एक भोजन करले तो दूसरे के नखाने से भी चलेगा। यह नहीं कहा कि हम उस फल को काट कर दोनो खा लेगें। वे जीव परम हैं अभिन्न, एकात्म। यही एकात्मता तो ‘अर्द्धनारीश्वर’ है। देवाधिदेव महादेव महेश्वर और जगन्माता उमा एक है। एकात्म, अभिन्न है। प्रबुद्ध वाचक इस दार्शनिक सिद्धान्त के आधार पर विचारे तो जहां तक मेरी आस्था है भक्तियोग के सिद्ध महापुरुष अरक्षित दास का प्रज्ञापन स्पष्ट हो जाएगा। पुत्र प्राप्ति के लिए भार्या, यह भी सृष्टि सर्जना की निरन्तरता हेतु अनिवार्य है। उसी एकात्मता के विचार से महापुरुष क्षुभिद हुए हैं। - अनुवादक)

स्तिरी पुरुष तुम होकर। खेलते , तीन नहीं मगर।।४।
एक अङ्ग हो यही जान। तुम हो लक्ष्मी-नारायण।।५।
जग में जितनी स्त्रियां हैं। सभी तो लक्ष्मी ही हैं।।६।
जग के जितने पुरुष। नारायण हैं वे अवश्य।।७।
उसी से 'भारिजा' वह मेरी। समझो तथ्य है यह भारी।।८।
देखोयदि प्रभु की दया होये। उसका मन उच्छन्न भी भये।।९।
पति को उसने मनाया। चित्रकूट तुम जाओ कहा।।१०।
वे करेंगे अपनी चिन्ता मोचन। करेंगे हमें पुत्रदान।।११।
नहीं तो और के वश में नहीं। दुःख मोचन करेंगे वे ही।।१२।
ले आओ उन्हें कहकर घर। मैं ही कहूंगा उनसे मातर।।१३।
पति ने कहा वह सुन कर। को कहे उनसे डर कर।।१४।
उनके आगे मैं रहूंगा। मुंह मेरा बन्द ही रहेगा।।१५।
कहा उनके वास कोय। विश्वस्थ न जाकर कहा हो।।१६।
उनसे जो चलकर कहेगा। कहकर ले भी आएगा।१७।
तुम्हें वे देखते मात्र ही। आप तुमसे पूछेंगे ही।।१८।
अन्तर्यामी पुरुष हैं। मैं हि जानू। जो मैं सपने से मानूं।।१९।
भय न करके कहना। बुलाने आयाहूं बोलता।।२०।
सुन कर अवश्य आएँगे। नास्ति कदापि न करेंगे।।२१।
बुलाए तो वे अवश्य आते। ब्रह्म चाण्डाल घरको भी जाते।।२२।
सुन कर जानूं मैं यह। शीघ्र ही उन्हें बुला लाओ।।२३।
पति ने जब वह सुना। चित्रकूट हो गया रवाना।।२४।
हमसे आ एकान्त में मिला। सबकुछ खुलकर वह बोला।।२५।

कहा मैं कल ही रात को। चलूंगा तुम्हारे घर को।।२६।
सुन कर वह चलागया। अब सुनो फिर क्या हुआ।।२७।
उस दिन चित्रकूट में रहा। दूसरी रात पहुंच गया।।२८।
वे थे मेरा पथ निहारे। किवाड खोल लिटे चले।।२९।
था आसन वहां फैला हुआ। मैं उसपर जा बैठगया।।३०।
दर्शन करके वह गया। शीघ्र निवटाने को कहा।।३१।
निवटाओ आसन पर सोये। पत्नी को वह गया कहे।।३२।
कहगया दर्शन करना। और पद पञ्चालन करना।।३३।
मेरा दु:ख भी बता देना। आज्ञा हो तभी तुम आना।३४।
एसे कह कर वह गया। उसने आ दरशन किया।।३५।
जब वह लगी पैर दबाने। मैं लगा एक बात विचारने।।३६।
उस दिन वह कोप कर गयी। आज है पैर दबा रही।।३७।
नहाया पानी नहीं पीया। आज वह जूठा तक खाया।।३८।
दूर करे कया दूर होए। वह जीव मेरे परम भये।।३९।
आत्मा एक है दो जानो। स्त्री पुरुष कहे मानो।।४०।
क्रोध तो मुझे भी हुआ था। अब और क्या भी कहता।।४१
सोने का बहाना करूंगर। वह क्या कहेगी सुनंगा।।४२।
सोच मैं बहाना बनाया। उसने जो कहा सुनता रहा।।४३।
क्यों मुज पर निर्दय होते हो। क्यों नींद से सोजाते है।।४४।
मैं तो हूं सदा अपराधी। तुम तो करूणावारिधि।।४५।
द:ख मेरा न सुनने। अब तुम लग गये सोने।।४६।
नींद टूटे तो तुम जाओगी। और क्या यहां तुम आओगे।।४७।

मैं मेरा दुःख जो कहूंगी। मुझपर निर्दय न हो बताऊँगी।।४८।
मैने कहा नींद है नहीं मुझे। तुम्हारा दर्द कहो भी मुझे।।४९।
अब निर्दय मैं होऊँ नहीं। कहो दुःख छिपाना ही नहीं।।५०।
कहा वह आज्ञा तुमही करो। सर्वदा दासी मैं तुम्हारो।५१।
तुम न धरो उसदिन का दोष। एकबात मांगू न करो रोष।।५२।
पुछ के लिए मैं हूं चिन्तित। चिन्तामोचन करो नियत।।५३।
तुम तो हो अन्तर्यामी सुनो। स्त्रियों की बात क्या न जानों।।५४।
तुम्हारी आज्ञा के होने पर ही। मैं पुत्र देख पाऊंगी ही।।५५।
नहीं तो मरूंगी निश्चय। नहीं तो दो पुत्र अवश्य।।५६।
मुझ पी तरा दया करो। राखो तो पुत्र दान करो।।५७।
मैं तो जानूं हूं मन से। तुम्ही दया है मुझसे।।५८।
नहीं तो मेरे धर क्यों आते। यद्यपि किरपा न करते।।५९।
मेरी चिन्तामोचन करेगे ही। पधारे हुए हो जानूं ही।।६०।
अब तो आज्ञा मुझे देना। मन से संशय मीटाना।।६१।
उनकी बात मैने सुनी। कहा चिन्ता न करना फुनि।।६२।
कहता रक्षित दास। तुमही मेरा हो विश्वा।।६३।
हे जजनल जन सुनना। जीवपरम पर विचारना।।६४।

इति

श्री मन चैतन संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम उनषष्ठितमोऽध्याय।

— o —

षष्ठितम अध्याय (६०)
जीव परम विचार।

तुम अब सुनो मेरे वचन। करूंगा मैं चिन्ता मोचन।।१।
पुत्र के लिए चिन्ता तेरी। वह मैं जानता बहुरी।।२।
प्रभु से रूंगा प्रार्थना। अवश्य देव पुत्र देना।।३।
पुत्र के तलये चिन्ता करे। उसी से मुझपर रोष करे।।४।
तू तो मेरा जीवन है जानो। मुझ अपना पति मानो।।५।
इसे ही तुमने शादी की है। वही मैं जानती नहीं है।।६।
माया से जान नहीं पाती। भिन्नाभिन्न करके मरती।।७।
मैं हूं तुम्हारी देह में। तुम हो मेरे शरीर में।।८।
सत्य है जीव हो तुम ही। मैं तो परम हूं ही।।९।
घटघट में जीव परम। विहार करते हैं जानो।।१०।
ये दोन तेज जाते। सब यह मरगया कहते।।११।
तुम मैं सकल दहे में। नासिका रंध्रों से बहते।।१२।
वाम रंध्र हो तुम जानो। दक्षिण रंध्र मुझे मानो।।१३।
जगमें जितनी स्त्रियां हैं। सब एक ही स्त्री हैं।।१४।
प्रकृति देह में बसी है। भिन्नाभिन्न की मरती है।।१५।
जग में जितने पुरुष। एक हैं जानूं मैं अवश्य।।१६।
इस प्रकार उनका सङ्ग करे। मरते गत कथा भूले।।१७।

माया से जुड़े भिन्न माने। और कथा एक कहता हूं मैं।।१८।

जिस दिन स्नान करने गया। बायी के अन्दर नहाया।।१९।

तुम तो पानी भरने को। गयी थी जानूं में उसको।।२०।

तुम्हें मैं वहां देखा जाते। बाद में गाली दिये जाते।।२१।

तुम्हे गाली देते सुनकर। एक ने कहा मुझे आकर।।२२।

सुनकर मैं रहा सोचता। क्यों मुजे गाली सुनना होता।।२३।

कहा कि वह 'भारिजा' है मेरी। उससे उसने बकी गाली।।२४।

उसकी बात समझ मैं न आयी। उसीसे उसने गलियां दी।।२५।

करूंगा उसकी चिन्ता मोचन। वही बुलाए लेगी सदन।।२६।

भिन्न करे क्या भिन्न होए। दूध में पानी को मिलाए।।२७।

क्रोध तुम्हारा शान्त हुआ। तुमने मुझे बुलवा लिया।।२८।

कहा उसने सत्य यह प्रमाण। गाली दे आयी हूं पुनः।।२१।

गाली देने के एक दिन बाद। सपने में कराये तुम याद।।३०।

कहा क्यों मुझे गालियां दी। क्या भी भिन्न करती है।।३२।

पुत्र के लिए चिन्ता भया। सो मुझ पर कोप किया।।३३।

अवश्य तेरी समस्या का ध्यान। रख करूंगा समाधान।।३४।

यही तो सपने में फिर। कह कर गये थे आखिर।।३५।

उस दिन से उच्छन्न है मन। किस भांति करूंगी दर्शन।।३६।

को ले आएगा, भेंट होगी। सच प्रभु की दया होगी।।३७।

वे मन हरे जो लेगये हैं। कहूंगी किससे भी मैं।।३८।

यह मैने मन ही मन सोचा। पति से कहा मैं समूचा।।३९।
उन्हे भेज कर मै आपको। बुलाए लायी इस तक को।।४०।
मैं तो हूं नारी मूढ़ जन। कैसे पाऊँगी पहचान।।४१।
वेद पुराण जो सुने नहीं। स्त्री कुल में जनम होई।।४२।
जितनी बातें सुनी है आज। तुम तो भये देवराज।।४३।
मनुष्य दहे धरे कोय। ऐसे वचन क्या कहपाए।।४४।
आपको को मनुष्य माने। और वह नहीं पहचाने।।४५
मैं जान गय प्रभु यही। गर्व करो तो सहे नहीं।।४६
गर्व करके मैं गाली दी है। अपराध बेहद किया है।।४७।
दोष मेरा हे क्षमा करो। वह दोष तो नहीं धरो।।४८।
कहा मैं विदा तो तुम होओ। दया है मेरी सुखसे रहो।।४९।
अब तो मैं चलता हूं सुन। तुम तो हो मेरा जीवन।।५०।
इस भांति सुन कर हमसे। कहा मिलते रहना मुझसे।।५१।
एक आद महीने में मुझसे। मिला तो करना दया से।।५२।
कहा मैं चित्रकूट में जमी रहूं। तुम से मिलता ही रहूं।।५३।
नहीं तो देखोगी तुक कहा। सोचो तो स्वप्न में मिलना।।५४।
मुझ से यही वह सुनकर। चली गयी है विदा लेकर।।५५।
वह गयी विदाय लेकर। हम लौट अपने पथ पर।।५६।
कहते अरक्षित दास। चित्रकूट में हो प्रवेश।।५७।
सुनें सुजन सुज्ञ जन। जीव परम प्रज्ञापन।।५८।

(वह समय भी था जब पर पुरुष से सन्तानवती होने के उदाहरण तो महाभारत में एक कौलिक प्रथा ही बनगयी है। उपाख्यानों की व्याख्या करूंगा नहीं। क्यों कि वह सर्वजन ज्ञात है। सूचनास्वरूप पराशर सत्यवती। अवतरित हुए नारायणस्वरूप परम ज्ञानी सर्वज्ञ सर्वशास्त्रज्ञ, सर्वशक्तिमान, त्रिकालदर्शी महाभार महापुराण तता श्रीमद्भागवत के रचयिता श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास देव। फिर उन्ही व्यास देव की करूणा से जन्मे धृतदर्शियों की अवगति के लिए। आम जिस किसी से कहा नहीं जा सकती न वह दार्शनिक गभीरता भेद करपाने की क्षमता ही होगी उसमें। उसपर एक सामाजिक अनुशासन भी है जिससे जिन सपाट शब्दों में महापुरुष ने उस नारी के आगे राह चलते व्यक्त कर गये हैं, वह स्वीकारयोग्य भी विवेचित नहीं होगा। अत: वह नारी, क्षेत्र और घटित घटनाएँ सबकुछ अघटित ही हैं। अत: विद्वान वाचक जीव परम के दार्शनिक तात्विक सिद्धान्त को ही स्वीकारे। आज भी ऊंगली की गिनती के बराबर कोई विचारक होगा, नतुबा साधारण सामान्य जन ही हैं जिनका इस भांति के विचारों से कोई सरोकार नहीं है। न कि उन्हें इस तेल नोन के जीवन जंजाल से संसार ही मुक्त होने देगी - अनुवादक)

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम षष्ठितमोऽध्याय

— o —

एकषष्ठितम अध्याय (६१)
जीव परम भाव कथन

अहो चैतन्य सुनो तुम ही। चित्रकूट से चलकर ही।।१।
जिस में पन्द्रह दिनों का कहाथा। वायदा करके आयाथा।।२।
चले महैं कहा उसीसे ही। सावधान हो सुनो तुमही।।३।
गलीयां बकी थी जिसने। गया था उसीके बुलाने।।४।
एक रात वहां रह आया। प्रत्यक्ष अब तू ही आया।।५।
बोली कल से मैं ही। सुनकर ही सोचती रही।।६।
मुझसे जो गये थे कह कर। स्पष्ट वह हो गया गोचर।।७।
हम सब अज्ञान होए। मानव उन्हें मानते रहे।।८।
वे तो अन्तरयामी पुरुष। को पाए उनका अन्तलेश।।९।
इस प्रकार सोचती रातको। नींद ही न आयी आंखों को।।१०।
अपनि बातों को सोचे ही। रात कब ढली जानू नहीं।।११।
तब मुझे विश्वास होने से। सोचती गयी में आद्य से।।१२।
उन्हीं बातों को सहेजी हूं। जो बचपन से सुनी हूं।।१३।
मेरी आठ साल की उम्र जानो। तुम उसे सुने सत्य मानो।।१४।
उस दिन सौज कहूं। अब मैं सत्तारह की हूं।।१५।
नव वरष हुए सुने। तुम्हारे बारे में देखे जाने।।१६।
कई बातें जो सुने जानें। पाए प्रत्यक्ष उन्हें माने।।१७।
तुम को पुरुष हो कहो। मन से संशय मिटाओ।।१८।
यही कहकह चूप रही। तब कहा मैं सुनों तुमही।।१९।

तु सत्तारह की हुई। तब न रजोवती भई।।२०।
स्वभाव स्तिरी अङ्ग धरे। अक्षर पहचान न करे।।२१।
वेद पुराण नहीं सुना। हेतु वचन नहीं जाना।।२२।
जो वेद पुराण सुनते। हेतु वचन वे कहते।।२३।
तेरे स्त्री अङ्ग यदि न होता। अवश्य तुम्हें मैं ले लेता।।२४।
अगर वह बातों प्राप्त होते। तो हम साधन करते।।२५।
हम तो जाने ही वाहे हैं। प्रभु माया से भरमते हैं।।२६।
हरि सब घटों में विराजें। किस बुद्धि किस को देते हैं।।२७।
वे तुम्हारे हृद में भी हैं। जानता हूं मैं देखकर।।२८।
एक पुरुष वह दो भये। सभी घटों में विहरता है।।२९।
तुमने अब पूझा मुझसे जो। पताओ को पुरुष तुम हो।।३०।
मैं जो ब्राह्मण व्यापे हूं। जीव-अजीवों में पूर्ण हूं।।३१।
मैं हूं तुम्हारी देह में। तुम हो मेरे शरीर में।।३२।
एक अंग है भिन्न नहीं। प्रत्यक्ष तू भी जान रही।।३३।
तुम तो जीवात्मा हो मेरी। मांगो मैं करूं मांग पूरी।।३४।
जो इच्छा मांग लो तुमही। कहा प्रभु के आगे मैं ही।।३५।
कहा सुनो तुम मेरी वाणी। मुझे साथ तुम रखो फुनि।।३६।
इस विन अन्य मांगू नहीं। बातेक करो कहूं तुमही।।३७।
मुझे मार कर गड़वा देना। रात को उठाए ले लेना।।३८।
तब न निन्दा न करेंगे। मरगयी यह ही कहेंगे।।३९।
तब कहा अवश्य ले लेता। वह मैं अवश्य करता।।४०।
तुम तो यही सोचती हो। संसार भोग चाहती हो।।४१।

वह भोग करोगी तुम मानो। तुम्हारी शादी यह जानो।।४२।
बालकृष्ण नाम का एक ही। उससे व्याह रचाओगी तुमही।।४३।
वह मैं ही हूं तुम जानो। शादी करूंगा तुमसे मानों।।४४।
एक पुरुष सर्व काया। भिन्न क्यों मान रही त्वया।।४५।
देखो सूर्य एक ही है। सप्त ब्राह्माण्ड व्यापे हुए।।४६।
एक चन्द्रमा तेज लिए। ब्रह्माण्ड भर घेरे हुए।।४७।
देखो एक ही पवन। ब्रह्माण्ड भर है परिपूर्ण।४८।
देखो एक ही जल तो हैं। ब्रह्माण्ड भर जो भरा है।।४९।
एक ही अग्नि देखो तुम ही। वह आग सर्वत्र पूरी हुई।।५०।
पृथ्वी व आकाश को देखो। समेट हुए हैं ब्रह्माण्ड को।।५१।
एक ही पुरुष सर्व देहे। वही विहार करता है।।५२।
छप्पन करोड़ जीव जानो। एक ही है यह मानो।।५३।
भिन्न करके मरते हैं। एक आत्मा न जानते हैं।।५४।
जो मानता आत्मा एक ही है। जन्म मरण उसका नहीं है।।५५।
मैने आत्मा एक न मानी। सो प्रभुने माया की फुनि।।५६।
प्रभु की दया होगी जब। युगान्ते रहेगा वह तब।।५७।
नहीं तो देह मैं तजूंगा। अपने स्थान मैं चलूंगा।।५८।
मुझ सङ्ग सुख तुझे नहीं। भोग कर तू अन्य कहीं।।५९।
कुछ दिन तू भोग करे। आए फिर मिलना मोरे।।६०।
मेरे अंग में आ लीन होगा। माया पिण्ड का क्षण होगा।।६१।
माया देह में सुख नहीं। भोगो तुम कहताहूं मै ही।।६२।

देहान्ते मेरे पास आओ। विदा ले घर लौट जाओ।।६ ३।

मेरा तुम्हारा भिन्न नहीं। एक अंग को दो कही।।६४।

इस प्रकार मुझसे सुनकर। विदा दिया उसने सत्वर।६४।

बोली तुम्हरी माया में। कोन भटके संसार में।।६ ६।

रही मैं दोष क्षमा करे। जनम जनम दासी मैं तिहारो।।६७।

ऐसा कहकर गयी वह ही। चित्रकूट को आया मैं भी।।६८।

हे प्रभु तब तो दया थी। अब क्यों निर्दया भयी।।६९।

मेरे चित्त में भिन्नता नहीं है। प्रकृति के साथ भरमता है।।७०।

मेरी शक्ति क्षमता हर लेती। मन्द विचार करती प्रकृति।।७१।

उसी से पागल सोचे डरगयी। मुझे वह पहचान न पायी।।७ २।

प्रभु की दया नहीं मुझ पर। नहीं तो क्यों मैं जाती हर।।७ ३।

हे प्रभु मुझ पर क्यों दया नहीं। मैने तो तुम्हें छोड़ा नहीं।।७४।

आपके भरोसे मेंय सुनो। गर्व न सह पता जानो।।७५।

तुम तो इस शरीर में हो। गर्व कभी न सहते हो।।७ ६।

मार गालियां तो सह लेते। गर्व करे तो न सहते।।७७।

कहता अरक्षित दास। हे प्रभु करो गर्वनाश।।७८।

कहूं मैं हे सुजन जन। प्रभु न करे गरम सहन।।७९।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम एकषष्ठितमोऽध्याय।

— o —

द्विषष्ठितम अध्याय (६२)

जीव परम भाव

अहो चैतन्य सब तुम सुनो। तुम्हारी दया है मुझपर जानो।।१।

मैं गर्व सह नहीं पाताहूं। जो करे चूर करता हूं।।२।

मुझसे गर्व जो करता। वह प्रभु को पता लगजाता।।३।

इस प्रकार एक स्त्री ने कहता हूं। गर्व किया जो बताता हूं।।४।

बोली उस वैष्णव से कैसे। पर्दा न करती हो किससे।६।

बड़े घरों की बहुएँ मयी। क्यों पर्दा करते ही नहीं।।७।

जनम उसका कहां हुआ। छिप कर क्यों वह चला आया।।८।

तुम उससे परदा न करतीं। लाजसंकोंच परे करदेतीं।।९।

वे स्त्रियां उसे टोक कर। जो कहतीं हम तो सुनाकर।।१०।

क्यों करती हो गर्व इतना। न जाने निन्दा करती कितना।।११।

वे कभी गर्व सहते नहीं। अन्तर्यामी पुरुष हैं वे ही।।१२।

तेरी निन्दा का पता कर लेंगे। तेरा गर्व खण्डन करेंगे।।१३।

वाध्य तु बुलाए लाएगी। पद सेवा अवश्य करेगी।।१४।

यह मन में दृढ़ कर। वे आएँ तो कहूंगी जरुर।।१५।

बोली तन में प्राण हो तब। उन्हें बुलाए लाऊँगी तब।।१६।

ऐसा कह कर गयी मानों। एक दिन गड़ गया जानों।।१७।

भावग्राही की जाया न देखा। सब ने कहा कर उपेक्षा।।१८।

मैने कहा मुझसे सुनाकर। कोप क्यों करती हो मुझपर।।१९।

वह तो मेरा जीवन बताऊँ। वह बुलवालेगी जानता हूं।।२०।
उसकी चिन्ता तुम ना कर। उसका गर्व हरूंगा जरुर।।२१।
तुम्हारे आगे कह कर गयी। मरूं भी बुलाऊंगी नहीं।।२२।
कैसे वह बुलाएगी नहीं। जिद उसकी मैं देखूही।।२३।
सह तो जीव परम मैं ही। यह प्रकृतियों का गर्व है ही।।२४।
प्रकृतियों के साथ रही। और मुझे वह भूलगयी।।२५।
अवश्य बुलवा लेगी वह। दूर करे क्या दूर होय।।२६।
एक आत्मा तो जानो दोय। दूध में नीर-सा समाय।।२७।
इसे समझो तुम तथ्य किये। कुछ एक दिन तो बीत जाए।।२८।
ऐसा कह कर उन्हें मैं। चित्रकूट को आया मैं।।।२९।
इस प्रकार कुछ ही दिन गये। उसका मन उच्छन्न होय।।३०।
एक दिन एक विश्वासी को पाकर। बताया सब खोलकर।।३१।
बोली तुम बाबाजी को आओ। दर्शन करूंगी पुनराय।।३२।
हम दो प्राण ही होंगे। अधी रात को ले आओगे।।३३।
तुम कहो तो वे आएंगे। नास्ति कदापि न करेंगे।।३४।
चित्त हर लिया है उन्होंने। ले भेंट कराओ उन्हें।।३५।
तुम्हारी प्रसन्नता से जानो। पाऊंगी दरशन मैं पुनः।३६।
कल रात ले आओगे जब। जानूंगी तुम में उनका भा।।३७।
नहीं तो उन सङ्ग वही। विश्वास कभी है ही नहीं।।३८।
ऐसी उनकी बात सुनकर। कहा कल लाऊँगा जरुर।।३९।
उसे करार कर आए। और हमें भी ले गये।।४०।

मैं घर के भीत गया। आसन पर बैठ गया।।४१।
मुझसे कोप कियो ते हो। खुले बात भी न करते हो।।४२।
बोली मैं तुम्हारी शरण। मैं तो हूं अपराधी जन।।४३।
तुम्हें कौन पहचान पाए। हम पर दया यदि होए।।४४।
मुझसे कोप कियो तो हो। खुले बात भी न करते हो।।४५।
मै तों हूं सदा दोषकारी। जनम जनम की परचारी।।४६।
इतने दिनों बाद दया हुई। तब न आज भेंट हुई।।४७।
काफि दिनों से इच्छा जागी। दर्न करूंगी मैं अभागी।४८।
मैं सोचती हूं दिन रात। कौन कराए मुलाकात।।४९।
यही विचारते विचारते मैं। गोपबन्धु से कहा मैने।।५०।
उनकी बात से आए हो। मुझ पर क्रोध ही किये हो।।५१।
कहा मैं कोप नहीं सुन। तुम तो हो मेरा ही जीवन।।५२।
तुम ही करते निराश। कहता अरक्षित दास।।५३।
अहो सुजन जन कही। गर्वगंजन भावग्राही।।५४।

(संलाप रूप में जो अभिव्यक्ति होती है वह स्पष्ट होता है यदि कहने सुननेवाले का पता चले। विदग्ध पाठकगण अनुमान करें कि अनेकत्र वह स्पष्ट नहीं है। मैंने जो किया है अनुमान ही से किया है। किन्तु, बारंबार उसी के दुहराए हुए होने के बावजूद तथ्य तो स्पष्ट हो जाता है। मात्र उदाहरण समेत दुहराव से भरपूर। मेरा दोष न धरे। गहरायी में झाकने की कोशिश आप ही करें। - अनुवादक)

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम द्विषष्ठितमोऽध्याय

— ० —

त्रिषष्ठितम अध्याय (६३)
जीवपरम भाव कथन

कहा तुमने व सुनो तुम ही। तू तो जीव परम मैं ही।।१।
माया देह में तू रह कर। मुझे क्यों जाए छोड़ कर।।२।
तू मैं जो दो भये। घटघट में हैं समाये।।३।
हम दोनों यदि छोड़ जाएँ। यह दहे ही नाश जाए।।४।
एक ही पुरुष दो भये। जग में लीला करते हैं।।५।
जिससे तेरी है शादी हुई। जानों मैं ही हूं वही।।६।
एक आत्मा है सर्व देहे। भिन्न है कदपि न कहे।।७।
तुमही मन से भिन्न किया। मुझे गाली क्यों दिया।।८।
भिन्न करे क्या भिन्न होए। आप ही तो बुलवा लाए।।९।
बोली सच है यह वाणी। न चीन्हें गाली दी है फुनि।।१०।
मैं तो हूं स्त्री मूर्खजन। तुम्हें महं चीन्हूंगा केसन।।११।
गाली देकर आयी मैं। देखा तुमको सपने में।।१२।
बोले गाली क्यों दी तुमने। क्या नहीं पहचाना तुमने।।१३।
तुम मेरी अपनी पत्नी जानो। गाली देती पर न चीन्हों।।१४।
मेरा कोप होने पर सुनों। देह से तजे जाओगे जानो।।१५।
अकेली देह रख पाती। क्यों अज्ञान हो मरती।।१६।
मेरी दया तो है तुमपर। क्यों हो निर्दय तुम मुझपर।।१७।
इस प्रकार सपने में कहा। तब से मन मोह लिया।।१८।

उस दिन से मन है उच्चाट। हो चलकर आगे भेंट।।१९।
गोपबन्धु को पठिआयी। बुलाए तुमसे भेंट हुई।।२०।
मुझ पर आपकी दया राजे। तब न आब हैं विराजे।।२१।
निर्द्दय होते यदि मुझ पर। यहां तुम आते ही क्यो कर।।२२।
दयावन्त हो तुम ही। स्वप्न से मैं जाना ही।।२३।
एसा उसने जब कहा। मैंने अब चलताहूं कहा।।२४।
सुने विदा लेकर आया। वहां से आताहूं जो कहा।।२५।
भावग्राही से घरपर मिल आया। बुलाए उसे कह दिया।।२६।
बोला अब तुम सुनों। जो गाली दी थी पुन:।।२७।
गोपबन्धु को भेजकर। उसने बुलवा लिया घर।।२८।
एक रात मैं रह आया। प्रत्यक्ष अब पा भी गया।।२९।
बोली आपके आगे आए। गर्व करे देह धरे को रहे।।३०।
आपकों को पहचान पाए। सब के सब अज्ञान होए।।३२।
न जाने गर्व करते हैं। वह अपराध करते हैं।।३३।
यह कहकर वह गये। हम चल लौट कर आते हैं।।३४।
हमारे पास स चलकर। उसे ले आया बुलाकर।।३५।
बोले आज रात सुनो। किस से बात की जानो।।३६।
जीवन हो तो तुमसे कहूं। कभी किसीको न बुलाऊँ।।३७।
अब उनका धरा चरण। जूठा भी किया मैं भोजन।।३८।
बड़े घर की बहू होकर। खूलह आगयी न पर्द्दा कर।।३९।
क्यों भी ऐसा कर्म किया। स्वाभिमान कहां रख दिया।।४०।
हमें गाली दी है तुमही। अब क्या किया कहो तुमही।।४१।

क्यों कर के बुलवाया। लाज संकोच भी नहीं किया।।४३।

बोली अज्ञान हूं मैं जाने। गाली जो दी है मैं तुम्हें।।४४।

फिर उन्हें गाली देकर। कहूं मैं अपराध कर।।४५।

वह तो मानव हैं ही नहीं। स्वयं भगवान हैं वेही।।४६।

उन्हें मैं गाली देकर गयी। फिर सपने में भेंट हुई।।४७।

उस दिन मेरे पास कोय। नहीं थे वह बताऊँ मैं।।४८।

शय्या पर वैठे चलकर। उठाणी बात खोलकर।।४९।

बोले मुझसे सखी कहो। तुम्हारा मुझ पर क्यो कोप भयो।।४०।

मैं तेरी देह में हूं जानो। मुझे क्यों भूलती हो मानो।।५१।

तू मेरी अपनी पत्नी हाए। माया में मुझे छोड़ती है।।५२।

तुम हो जीव आत्मा जानो। मैं हूं परम आत्मा मानो।।५३।

दो से और तीन नहीं। ब्रह्माण्ड में परिपूर्ण वे ही।।५४।

हम दोनो ही इस देह में। रात दिन तो विहरते है।।५५।

वाम अङ्ग हो तुम जानो। दक्षिण अङ्ग मुझे मानो।।५६।

एक अङ्ग है भिन्न नहीं। मुझे क्यों भूलती तुम ही।।५७।

उन्होंने यह सपने में कहा। तब से मन मोह लिया।।५८।

उस दिन से मन मेरा उच्चाट। प्रभु किरपा से सब होगा।।६०।

गोपबन्धु को मै पठाया। बुलावाए दर्शन भी किया।।६१।

अन्तर्यामी पुरुष हैं वे ही। हम वह जानेंगे कैसे ही।।६२।

को पुरुष है जो जन्मा है। विन पहचाने भटका है।।६३।

मैने मन में दम्भ किया। मरूं पर न बुलाऊँ तय किया।।६४।

थारा वचन न मान कर। अड़िग रही मैं गर्व कर।।६५।

ऐसे उन्ही की माया हुई। वाध्य मैं बुलवाए लायी।।६६।

अब उन्हें को विसरा देगा। यदि तन में प्राण होगा।।६७।

जो बातें उन्हें न हैं कही। प्रत्यक्ष चित्त से जानूं ही।।६८।

मनुष्य यह वचन नहीं। मैने जाना प्रभु हैं वेही।।६९।

इस भांति बतियाती हुई। ये अपने अपने घर गयी।।७०।

अहो चैतन्य सुनो तमही। प्रभु की दया मुझपर भयी।।७१।

अब प्रभु की जो निराश। कहता अरक्षित दास।।७२।

कहूं मैं हे सुजन जन। अब प्रभु भये हैं निर्मम।।७३।

(भक्ति योग के परम सिद्ध महापुरुष चरणस्पर्श प्रणिपात पूर्वक प्रार्थना करता हूं। कि मुझे मेरी अकिंचन अबोद अज्ञानता के कारण क्षमा कर दें। जिस अध्याय से जीव परम को लेकर प्रज्ञापन का आरंभ हुआ है तब से मैं बोध भ्रमित हूं। बारंबार वही कथा प्रसङ्ग, वही शब्द, यहांतक कि समान वक्तयां। और इस अध्याय में तो प्रसङ्ग की ही पुनरावृत्ति हुई है। भावान्वित, अर्थान्वित करपाना भी मेरे लिए बिलकुल सम्भव नहीं है, क्यों कि कुछ एक शब्द तो ऐसे भी हैं जो मेरे क्षमता की सीमा में अर्थहीन लगे। अपने जिस प्रकार बोध कराए हैं। वह मैं भाषान्तरण में कर गुजरा हूं। मुझे डर है मेरी अभिव्यक्ति ही कही विकृत न हो गया हो। समर्थ मर्मज्ञ विद्वान वाचकों स निवेदन है, जो मैने कहा है उसे परम अर्थ न मानकर अपनी अपनी बोधदर्शिता का भी प्रयोग करें। मेरा दोष न धरे। मैं क्षमापार्थी हूं। - अनुवादक)

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डलगीता कथने नाम त्रिषष्ठितमोऽध्याय

— o —

चतु:षष्ठितम अध्याय (६४)
जीव परम भाब

अहो चैतन्य तुम सुनो हो। क्यों कर मुझे बरजने हो।।१।
एक पुरुष दोये जानों। सभी घटों में परिपूर्ण।।२।
इस प्रकार वह मेरी 'भारिजा'। करते क्यों हो मुझे तेज्या।।३।
वह तो जीव परम मैं ही। क्यों मुझसे डरती रही।।४।
मुझसे झिपाए रहती है। जग को रूप दिखाती है।।५।
इतनी दया है उसकी। अब निर्द्दय क्यों हो सकी।।६।
मैं तो उसे छोडुं नहीं। वह क्यों मुझे तजे जाही।।७।
घर में मुझे परेशान करे। बाहर मुजे वह देखे डरे।।८।
चलते पास न आकर। चलती जाती हट कर।।९।
निर्द्दय दया नहीं उसकी। मुझे किस भांति तज सकी।।१०।
कभी उसने न देखा मुडकर। दया न हुई उसकी मुझपर।।११।
मुझे पागल मान डरती है। पर पुरुषों से रमती है।।१२।
मैं हूं पति जो उसकी। पामरी मुझे तज सकी।।१३।
विटपीपना अर्जित किया। अङ्ग पर को सौंप दिया।।१४।
वे यदि ब, वन्त होंगे। उसे रमण करते होंगे।।१५।
निर्वल यदि होगी देही। तब तो न पूछेगा कोई।।१६।
कब क्यों करोगी जो सुने। किस से कब विहरेगी जानो।।१७।
मैं तो तुजे न छूऊँगा। तुझे मार देह को तोडूंगा।।१८।
पामपुरुष से जो रमेंगे। तुझे सहारा को न देंगे।।१९।

तब रहेगी कहां सुनो। मरेगी देह तजे जानो।।२०।
मेरा तो कोई दोष नहीं। मुड़ कर देख मैं कहूं ही।।२१।
तू मुझे देखे तो मुड़कर। बचाए रखूंगा यह शरीर।।२२।
तुमसे दया होगी मानो। मैं मरूं तो तू मरेगी जानो।।२३।
अनुक्षण में तेरे संग रहूंगा। जहां जाए वहां मैं चलूंगा।।२४।
अनुक्षण मैं तेरे सङ्गे रति करूंगा नाना रङ्ग।।२५।
तेरी इच्छा से जो मांग होगी। मुझसे भरपायी होगी।।२६।
तारा मन तोष करने मैं ही। तुझे सन्तुष्ट न करे अन्य कोई।।२७।
तू तो है अबोध तरुणी। मन तेरा तो मैं ही जानी।।२८।
तेरा मन और को जाने। जो इस शरीर को चीह्ने।२९।
अब तेरे साथ प्यार करे। फिर मारेंगें जोर धरे।।३०।
यह तुम जान न पाती हो। उनके साथ बहकती हो।।३१।
तुझे नानादि बुद्धि देकर। मुझसे सङ्ग छुश्राकर।।३२।
उसीसे तू पहचानी नहीं। पागल मान डरगयी।।३३।
तुम और मैं तो एक देही। शून्य से जात हम होई।।३४।
वहां तो एक रूप मानों। पर यहां दो रूप जानो।।३५।
स्त्री अङ्ग जो तेरे हुआ। पुरुष अङ्ग मेरा भया।।३६।
तेरे मेरा सङ्ग होने पर। जात होते हैं चराचर।।३७।
जब भिन्नाभिन्न करेंगे। तो जग में क्या लीला करेंगे।।३८।
यहां तुम और मैं दोय। लीला के लिए जात हुए।।३९।
यहां से जब तज चलेंगे। शून् में एक अंग होंगे।।४०।
वहां तो एक अंग होगा। स्त्री-पुरुष क्या कहेगा।।४१।

वे प्रभु सर्व घय में भये। स्त्री-पुरुष कहलाएँ।।४२।

अनन्द कोटि ब्रह्माण्ड पर। उससे है नहीं कोई और।।४३।

घटघट में वे विहरते। जीवन अजीव पूर्ण होते।।४४।

चाण्डाल ब्रह्म लोक मये। सभी घटों में वे ही होएँ।।४५।

इन्द्र से लोक जितने देव। हर घटों में वे माधव।।४६।

मेरु से सारे परवत। हर घटों में गोपीनाथ।।४७।

अश्वत्थ से ले सारे वृक्ष। हर घटों में अन्तरीक्ष।।४८।

काक से करुड़ तक पुन: हर घटों में नारायण।।४९।

सिंह में सूक्ष्म कीट जो हैं। सब में हैं देवराय।।५०।

चलन्त चौद करोड़ वे ही। उड़न्त डूबन्त निश्चल वे ही।।५१।

वही छप्पन करोड़ भाव। हर घटों में करें ठांव।।५२।

इस भांति लीला वे करते। एक से दो हुए होते।।५३।

क्यों मुझे पागल वह कहा। दया जो तुम्हारी न भया।।५४।

तुम्हारे भरोसे में हूं मैं। भिन्नता है नहीं चित्त में।।५५।

प्रकृति भिन्न मानती है। सीखाए जीव मारती है।।५६।

मेरा नहीं है कोई दोष। कहता अरक्षित दास।।४७।

सुनो हे सुजन सज्जन। भय पाए जीवव परम।५८।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता मथने नाब चतु:षष्ठितमोऽध्याय।

— o —

पञ्चषष्ठितम अध्याय (६५)
जीव परम से सर्व जात

सुनो हे चैतन्य सुने विशेष। तुम ही बनते स्त्री पुरुष।।१।

जीव परम रूप धरे। हर घटों में हैं विहरे।।२।

स्त्राी रूप में दृश्य हुए। परम रहे गोप्य होए।।३।

परम का रूप वर्ण न होता। जीव का स्त्री रूप होता।।४।

संसार में जो जात किया। सब में स्त्री अङ्ग कहाया।।५।

छप्पन करोड़ सारे। समस्त स्त्री हैं। संसारे।।६।

मेरु से समस्त पर्वत। स्त्री ही होते हैं समस्त।।७।

इन्द्र से ले सर्व देव। स्त्री अङ्ग है जाने सर्व।।८।

काक से गरुड़ पर्यन्त। स्त्री ही हैं ये समस्त।।९।

अश्वत्थ से ले सारे वृक्ष। स्त्री हैं यह प्रत्यक्ष।।१०।

चाण्डाल से ब्राह्मण पर्यन्त। स्त्री ही हैं ये समस्त।११।

सिंह से सूक्ष्म कीट तक। स्त्री ही हैं वे प्रत्यक।।१२।

चांदी से लोहा परियन्त। स्त्री ही हैं ये समस्त।१३

हीरा से सुवर्र पर्यन्त। स्त्री ही हैं ये समस्त।।१४।

खट्टा से तेज के पर्यन्त। स्त्री ही हैं ये समस्त।।१५।

नीली से रङ्ग के पर्यन्त। स्त्री ही हैं ये समस्त।।१६।

चलन्त चौदह कोटि होए। स्त्री ही ये सभी भये।।१७।

निश्चल चौदह कोटि होए। स्त्री ही हैं ये भये।।१८।

उड़ते चौदह कोटि होए। स्त्री ही हैं ये भये।।१९।

डूबन्त चौदह कोटि भये। स्त्री ही हैं ये होए।।२०।

इस प्रकार छप्प कोटि ही। सभी स्त्री हैं जानो तुम ही।।२१।

ब्रह्मा विष्णु शिव ही जानो। स्त्रीअङ्ग हैं यह प्रमाण।।२२।

देवगण और यक्ष गण। स्त्रीअङ्ग हैं यह प्रमाण।।२३।

नरगण राक्षसगण। स्त्रीअङ्ग हैं यह जानो।।२४।

योग्नीगण और पितृगण। स्त्रीअङ्ग हैं यह प्रमाण।।२५।

भूलोक तपलोक जानो। ब्रह्मलोक भी स्त्री मानो।।२६।

योगान्त सिद्धान्त वेदान्त। नागान्त स्त्री है ये समस्त।।२७।

मंत्र यंत्र व सारे ध्या। स्त्रीअङ्ग हैं यह प्रमाण।।२८।

तिलक भजन स्मरण। स्त्रीअङ्ग हैं यह प्रमाण।।२९।

तीर्थ बार सारे व्रत। स्त्रीअङ्ग हैं यह प्रमाण।।३०।

अक्षर ये सारे वर्ण। स्त्रीअङ्ग हैं यह प्रमाण।।३१।

उन करोड़ वाद्य पुनः स्त्रीअङ्ग हैं यह प्रमाण।।३२।

स्वर्ग मर्त्य पाताल जानो। स्त्रीअङ्ग हैं यह प्रमाण।।३३।

सप्त सागर स्त्री हैं। सप्त ब्रह्माण्ड भी स्त्री हैं।।३४।

नव द्वीप नव पृथ्वी सारी। इन्हें भी स्त्री कहे विचारी।।३५।

सप्त पाताल सप्त द्वीप। ये हैं स्त्री ही अद्याप।।३६।

चौदह ब्रह्माण्ड सहित। ये हैं स्त्री ही समस्त।।३७।

चन्द्र यूर्य व तारागण। स्त्रीअङ्ग हैं यह प्रमाण।।३८।

जल पवन अग्नि जो हैं। ये सभी स्त्रीअंग ही हैं।।३९।

चारों मेघ व वेद चारों। इन्हें भी स्त्रीअङ्ग विचारो।।४०।

आकाश वासुकी पृथिवी ही। स्त्रीअङ्ग हैं जानो तुम ही।।४१।

इत्याति जीवजन्तु जो हैं। समस्त स्त्रीअङ्ग ही हैं।।४२।

कीट से ब्रह्मा तक जो हैं। समस्त स्त्रीअङ्ग ही हैं।।४३।

कीट पतङ्ग तरु तृण। ये सारे स्त्रीअङ्ग हैं जानो।।४४।

यह देह स्त्री ही है तो। रे मन अब तुम चेतो।।४५।

रक्त मांस व हाड़ चर्म। स्त्रीअङ्ग हैं तुम जानो।।४६।

पंच मन जो स्त्री ही हैं। षड़ गुण भी स्त्री ही हैं।।४७।

पच्चीस प्रकृति जो हैं। सभी तो स्त्रीअङ्ग ही हैं।।४८।

एकादश इन्द्रीयों को जानो। ये सारे स्त्रीअङ्ग हैं मानो।।४९।

पञ्चास दल त्रिगुण ही। समस्त स्त्रीअङ्ग हैं ही।।५०।

चौषठ व्याधियां स्त्री हैं जानो। अब कहूंगा तुम सुनो।।५१।

नयन नाशा मुख कण। ये सारो स्त्रीअङ्ग है मानो।।५२।

इन्द्रिय गुह्य को स्त्री कहें। सुनो सुमन मन दिये।।५३।

रात्र दिवस अंधकार। स्त्रीअङ्ग हैं हेतुकर।।५४।

सातों बार हैं स्त्री जानो। बारह माह हैं स्त्री मानो।।५५।

षोलह घड़ियां स्त्री तो हैं। पन्द्रह तिथियां भी स्त्री हैं।।५६।

सताइस नक्षत्र जो हैं। ये समस्त स्त्रीअङ्ग हैं।।५७।

ग्यारह करण जो हैं। ये समस्त स्त्रीअङ्ग हैं।।५८।

बारह जन्द्र हैं स्त्री जानो। ग्रीष्म वर्षा को स्त्री मानों।।५९।

शीत ग्रीष्म स्त्री जानो। षड़ ऋतु को स्त्री मान।।६०।

स्जग में जिनके आतजात। स्त्री हैं वे समस्त।।६१।

तू यह अनुभव कर। परम भाव में विहर।।६२।

परम भाव से जीव जात। एक पुरुष दो मत।।६३।

जग में खेलने के लिए। एक से मनमें दो भये।।६४।

जीव परम रूप धरे। हर घटों में वे विहरे।।६५।

स्त्री रूप जो तूम होए। पुरुष रूप विहार किये।।६६।

यह तो केउ न जानते। स्त्रीपुरुष भिन्न मानते।।६७।

उसीसे सभी नाश गये। इन दो को एक नहीं किये।।६८।

ये दो एक कहे जो ही। मुझ विन अन्य कोई नहीं।।६९।

मैं ही ब्रह्माण्ड भरमें। व्याप्त हूं जीव अजीव में।।७०।

मुझ विन इस ब्रह्माण्ड में। अन्य कोई है नहीं जाने।।७१।

छप्पन कोटि जीव मैं ही। मुझ विन अन्य कोत्ते नहीं।।७२।

ऐसा चवचारे मनही मन। सब देखे करना समाधान।।७३।

वह ही अमर होकर रहे। नहीं तो देह तजे जाए।।७४।

कहता अरक्षित दास। एक से दोनो का प्रकाश।।७५।

हे सुजन जन मैं कही। स्त्री पुरुष एक देही।।७६।

एक अङ्ग हैं जीव परम। सभी घटों में परिपूर्ण।।७७।

इन दो को एक नहीं करे। भटकूं माया पग धरे।।७८।

प्रभु की दया मुझपर नहीं। सुजन जन आप जाने ही।।७१।

खण्डगिरि में मैं रहकर। भरमूं जीव को न जानकर।।८०।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम पञ्चषष्ठितमोऽध्याय।

— ० —

षष्ठषष्ठितम अध्याय (६६)
ब्रह्ममहिमा वर्णन

मन चैतन्य के चरण धरे। उठे और वह कर जोड़े।।१।

भो नाथ जगत जीवन। ब्रह्म विचार कहो पुनः।।२।

जग में जितना आतयात। सभी स्त्री है यह सत्य।।३।

पुरुष कथा मुझे कहो। तभी तरूंगा माया मोह।।४।

अर्थ भी मुझे बतादेना। मुझ पर हे दया करना।।५।

ब्रह्म को कैसे विचारूंगा। बताना किस प्रकार चीह्लूंगा।।६।

ब्रह्म की कथा अगोचर। बताना भ्रम होए दूर।।७।

मन-मुख से सुने यही। जिसपर ब्रह्म की दया होई।।८।

उसी को ही होते है दृश्य। नहीं तो रहते अदृश्य।।९।

उस ब्रह्म कथा सुनों कहूं। विचारो जो तुम्हें बताऊँ।।१०।

अब अर्थ भी बताऊंगा। मन से संशय मिटेगा।।११।

श्लोक

नाम ब्रह्मसार जो भजते नर पृथ्वी मिये क्षय न होता

युगयुग की वह अमरता

गीत

हे मन अब सुनो तुम ही। एक ब्रह्म कथा बताऊं ही।।१२।

तुम ही सभी जीवों में हो। न चीन्हे वृथा भरमते हो।।१३।

छप्पन कोटि जीव होई। क्यों डरा करते तुमही।।१४।
मेरु से पर्वत पर्यन्त। तुमही हो भये धरे चित्त।।१५।
इन्द्र से ले सारे देव। तुम ही भये हो सब।।१६।
शेर से नाजूक कीडे तक। भये हो तुमही तो सब।।१७।
काक से गरुड़ पर्यन्त। तुम ही हुए हो समस्त।।१८।
चाण्डाल से ब्रह्म तक जानों। तुमही हुए हो सब मानो।।११।
चलन्त चौदह कोटि जीव। तुम ही हुए हो तो सर्व।।२०।
निश्चल चौदह करोड़ तुम ही। न चीन्हें भरमते तुमही।।२१।
डूबन्त चौदे कोटि होए। न चीन्हें भरमता कोई।।२२।
उड़ते चौदह करोड़ तुमही हो। न जाने वृथा भरमते हो।।२३।
कीट से ब्रह्म के पर्यन्त। तुमही विराजे सर्व भूत।।२४।
पृथ्वी जल स्थल अनल। तुमही हुए हो सकल।।२५।
चौदह ब्रह्माण्ड हो तुमही। क्यों सचेत होते नहीं।।२६।
सप्त पाताल सप्त द्वीप। तुम ही हुए हो अद्यापि।।२७।
नवखण्ड मही जानो। तुम ही हुए हो यह मानो।।२८।
सप्त सागर नवद्वीप। तुम ही हुए हो अद्यापि।।२९।
स्वर्ग मर्त्य पाताल तुमही। परन्तु कैसे चेते नहीं।।३०।
चन्द्र सूर्य और तारागण। तुमही हो वह करो ज्ञान।।३१।
जल पवन अग्नि तुमही। हो पर कैसे चेते नहीं।।३२।
चारों मेघ और चारों वेद। तुमही हो विचारे भेद।।३३।
ब्रह्मा विष्णु शिव हो तुमही। सर्व देवता हो तुमही।।३४।

नर राक्षस भूत गण। तुमही सकल हुए जानो।।३५।
मङ्गला दुर्गा चण्डी तुमही। काली कपाली भये तुमही।।३६।
नागगण व पितृगण। तुम ही सब हुए जानो।।३७।
रात्र दिवस सात बार। तुम ही हो याद करो।।३८।
बारह माह षोलह घड़ियां है। जो वत्य है तुमही हुए।।३९।
षड़ ऋतु व षड़ रस। तुम ही करते प्रकाश।।४०।
ब्रह्माण्ड में जो आतयात। वह सारे बने हो तुम तो ।।४१।
तुझ विन ब्रह्माण्ड में कोई। नहीं है सच कहूं मैं ही।।४२।
अब अर्थ मैं बताऊंगा। संशय मोचन करूंगा।।४३।
जिव भाव से वह दृश्य होए। सुनों सुमन मन दिये।।४४।

(स्वीकार करता हूं, अबोध अकिञ्चन अज्ञानता है मेरी। महापुरुष संत अरक्षित दास भक्ति योग के भारतवर्ष के सिद्ध तपस्वियों में अन्यतम हैं। बोधवन्त ग्रंथाकारों ने हजारो सिद्ध भोले भूमि तथा भूमा के प्रिय तपस्वियो के जीवनवृत्त लिपिबद्ध कर गये हैं। उनमें से किसी एक ने भी ब्रह्मदर्शन किया नहीं है। दृष्टान्ततः न नचिकेता न ब्रह्मर्षि मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के शस्त्र शास्त्र के गुरुदेव विश्वमित्र। ब्रह्मर्षि वषिष्ठ सहित द्वन्द्व के उपरान्त अयोध्यादिपति विश्वामित्र ने ब्रह्मर्षि होने की अभिलाषा से तपस्या की, सिद्धि मिली, परन्तु उस सिद्धि की घोषणा दर्शन देकर माता गायत्री ने की। विश्वामित्र ने कहा 'माता, मैने तो ब्रह्म दर्शन के लिए तपस्या की थी, पर आप किस प्रकार उसे प्रज्ञापित करने की करुणा की। माता ने कहा मैं ब्रह्मा की प्रतिरूपा हूं 'गार्यी'। अभी तक किसी एकने भी ब्रह्म दर्शन किया नहीं है। ब्रह्मोपलब्धि ही की है। मैं प्रज्ञापिका हूं। ब्रह्म तो अरूप, अनाकार, अप्रमेय,

अव्यक्त, अकल्पनीय, अवर्णननीय आदि आदि सहस्त्रों नामों के है। आप ब्रह्मर्षि की सिद्धि प्राप्त हुए। मैं यह सूचित करने आंयी हूं। आपसे मैं प्रसन्न हूं। आपकी कल्याण कामना तथा जग कल्याण हेतु एक वर देना चाहती हूं। जो चाहे; मांगे। तब ब्रह्माषं होने के पश्चात और क्या कामना बचीरहती कि वे माता से कुछ मांगते। उन्होंने विनीत प्रार्थना की मुझे आप अपना ध्यान मंत्र की सिद्धि दें कि मैं जब चाहूं आपका दर्शन कर पाऊँगा। तब माता ने कहा ब्रह्मर्षि, आपके लिए उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। आपके स्मरण करते ही मैं उपस्थित होऊगी परन्तु आपको मंत्र इसलिए दे रही हूं कि जग कल्याण हेतु आप। 'गायत्री उपासना' की बिधि की रचना करें। वही हुआ है और वह सिद्ध मंत्र है। 'ॐ भूर भूवः स्वः तत्सवितर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमही। धियो योनः प्रचोदयात्। फिरभी मैं स्मरण कराना चाहता हूं कि किसी भी उपासना की पद्धति से सुफल की प्राप्ति नहीं होती यदि। 'भक्ति' न हो। अतः जाने कि महापुरुष ने श्रेष्ठतम की कामना की है बारंबार और सिद्धि पायी है और प्रभु मी अपार करुणा यै भी है कि उसे गोचर होने नहीं देते और भक्त की अन्तरात्मा में अपरितोष की निरन्तरता बनी रहती है।

संत महापुरुष ने इस अध्याय की अतिंम पंक्ति में कहा है। - 'चैतन्य ने कहा 'मन रे सुन, जिस प्रकार ब्रह्म दर्शन हो वह मैं कहूंगा। अर्थान्वित भी करदूंगा। मर्मज्ञ विद्वान वाचकों से अनुरोध है वे अपनी बोध-चिन्तन-क्षमता का भी प्रयोग करे। जहां तक मेरे बोध की सीमा है, भक्तियोग के सिद्ध तपस्वी किसी विधि-विधान के आधीन नहीं होते, न उसकी कोई सूत्र-संहिता है, बस वह सिद्धि यही है कि वे इच्छा करें और प्रभु वह पूरा कर दें। ओलाशूणी पीठ ने भी उसी प्रकार महाशून्य से परिपूर्णता पायी है। सिद्ध भक्तियोग के योगी अमरात्मा महापुरुष अरक्षित दास सूक्ष्म शरीर में अब भी विद्यामान हैं। यह मेरा अनुभव है। - अनुवादक)

सुनो हो मन का अर्थ
(गद्यानुवाद)

अदेखा देखो, अतोड़ा तोड़ो, अननापा नापो, असाध्य साधन करो, अभक्ष्य भक्षण करो, अजपा जापो अकर्म करो; सुनो हे मन सारे ये कर्म जो जो कर पाएगा, वही ब्रह्म को पहचानेगा। अति अनुभव से ही ब्रह्म को चीन्हेंगा। ब्रह्म की पहचान पाकर वह जो करता है, वह कहता हूं सुनो - 'आहार, निद्रा, मैथुन, वायु, तृषा, रौद्र, वर्षा शीत, नयन, नासा, पुख कर्ण, इन्द्रिय, गुह्य आदि के आवेग को रोकता नहीं है। (वैदिक उपदेश भी है ' वेगान धारत्येत धीमान - कि धीमान किसी आवेग रोका नहीं करते) उसके लालसी तो कतई नहीं न होते। पांच मन, पच्चीस प्रकृतियां, एकादश इन्द्रिय, षड़्रिपु, त्रिगुण, व्याधियों का साधक नहीं बनता। पाप, पुण्य, धर्म, अधर्म, स्वर्ग,नर्क, शुभ, अशुभ, सत्य, असत्य, भला बुरा, माया, निर्माया, दु:ख, अदु:ख, असुख सुख, लोभ, अलोभ, काम, अकाम, साधु, असाधु, लाभ, अलाभ, सार, असार, विकार, अविकार, जाति, अजाति, स्त्री, अस्त्री, पुरुष, अपुरुष जीव, अजीव, जपा, अजपा, सुनों हो मन इन सब बातो पर गुरुत्वारोपित नहीं करता। जीव परम चन्द्र, सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु, शिव इन्द्र शची, यम, कुवेर, वरुण नैरुत, वृहस्पति, दशदिगपाल, तारागण, मेघ, स्वर्ग, मंच, पाताल, अप् तेज, वायु, आकाश; सुनो हो मन इन्हें जागते न रहता। चारों वेद, योगान्त, वेदान्द, सिद्धान्त, नागान्त, सुनो हे मन इनकी साधना नहीं करता। ब्रह्म की पहचान यदि हो। तब भजन, वन्दन, स्मरण, अर्च्चन, ज्ञान, ध्यान, नानादि नाम, नानादि भक्ति नानादि स्मरण, नानादि जप, नानादि कीर्तन, नानादि भ्रमण, नानादि तिलक, नानादि मंत्र, योगसूत्र, लय तीर्थ व्रत उपवास, नानादि योग, नानादि ज्ञान, नानादि यंत्र, नानादि कल्प, महौषधि, नानादि देवता, चण्डी चामण्डा, भूत प्रेत नानादि डायन, पिशाचिन, सुनो हो मन, इन्हें न ध्याये, कभी इनकी साधना न करे। कभी इनसे डरे नहीं। इन्हें किसी

प्रकार महत्व न दे। समान्तराल विचाताहूं, मैं मेरे विन अन्य कोई नहीं। मैं ही संसार में व्याप्त हो कर हूं। मैं स्वयं ब्रह्म हूं। मनमें यही विचार करके नानादि वृक्ष, नानादि पुष्प, नानादि फल, नाना माटि, नाना कंकड़, पाषाण, नाना पक्षी जन्तु कीट, मछली, मक्खी, मच्छर, गोरू, भैष, बाघ, भालू, बाराह, मृग, कुरङ्ग, हाथी, घोड़ा, बकरी, भेड़, शूअर, बिल्ली, कुत्ता, चूहा सांप, जीवजन्तु, काली चींटी, दीमक, गिरगिट् छिपकली, बिच्छू, नानादि मनुष्य, नानादि देवता, नानादि राक्षस, नानादि शस्त्र, शास्त्र, नानादि पुराण गीता, नाना वाद्य, नानादि विवाद, नानादि वेद, विद्या, ज्योतिष, नानादि भोग, नानादि रोग, नानादि नृत्य, गीत वाद्द। नानादि वस्त्र, नानादि आहार, षड्रस, अष्टधातु, नवरत्न, षड्ऋतु, चल, अचल, उडन्त, डूबन्त, स्थावर, जंगम, कीड, पतङ्ग, चारों ओर ये सभी कुल आपातत; छप्पन करोड़ जीव; सुनो हो मन इन सब को समान मानता हूं। कीट से ब्रह्म तक को ब्रह्मा मानता हूं। इस प्रकार के लोक को ब्रह्म भक्त मानता हूं। जल में न डूबे, अग्नि में दहित न होए, पवन में न उड़े हवा न झेखे, खडग् से न कटे, पृथ्वी क्षय जाए तो पिण्ड क्षय न होए, स्वर्ग मर्त्य पाताल हो पाए, छप्पन कोटि जीवों में मिल पाए; कब क्या रूप लेता है। सप्तब्रह्माण्ड उसे तृण-सा प्रतीत होता है, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य कोई उसके समकक्ष नहीं होते। तेतीस कोटि देव, नर राक्षस, पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश उसके समान नहीं हों पाते। सुनो हो मन भक्ति की महिमा, कुछ मन में न धरे, केवल ब्रह्म को जानो। ब्रह्म विद्या के अतिरेक कुछ और जानो नहीं। संम्पूर्ण जगत को ब्रह्म मानो। एकान्त घूमता रहे, एक ब्रह्म चिन्तन ही करे और किसी के साथ न रहे, ब्रह्म को साथ लिये होता है, किसी भी कथा को डरता नहीं, ब्रह्म के व्यतिरेक कुछ न जाने, वह ब्रह्म ही को जाने केबल ब्रह्म स्मरण करता रहता है, ब्रह्म स्मरण ही करता रहता है। ब्रह्म में उपासना, रसना, गायन, शयन, सुनो हो मन तुमने जिसकी जिज्ञासा की उसी का उत्तर तो दिया। एकाकार लोक को यही जानता है, वही उस ब्रह्म को जानता है, अन्य उस ब्रह्म को किस प्रकार जाने ? ब्रह्म को कोई न जाने। उनका रूप वर्ण, नहीं, नयन, नहीं, मुख ही नहीं, कर्ण नहीं, नासा, नयन नहीं, हस्त पद

नहीं हृदय नहीं, उदर नहीं, नाभि, कटि, पीठ ही नहीं शिर धर्म नहीं, रूपवर्ण चिह्न ही नहीं, रक्त, मांस अस्थि ही नहीं, अदृष्टि, अश्रुति वर्ण अवायु, अजपा, जपा, सुनो हो मन ऐसे हैं वे ब्रह्मा। उन्हें कोई न देखता, वे भक्ति भाव से वश होते। जो एकाकार ब्रह्म चिन्तन करे उसे ही दृश्य होते हैं। नहीं तो कभी दृश्य नहीं होते। ब्रह्म से क्षरित हो जीव रूप में विहार करते हैं, यह देह जब तजे जाते। ब्रह्म में लीन होते संसार में भ्रमित होते रहते हैं। मरण हो तो ब्रह्मलीन होते। सुनो हो मन यह मिथ्या उसकी उपमा कहता हूं सुनो, जल घट में मिष्टक मिलाए पोखर को ले चलेंगे। और उस पानी को पोखर में उँडेल देगे, उँडेल कर फिर कुम्भ भर कर ले आएंगे तो वह पादी क्या मीठा लगेगा? इस रूप में जाए तो वापस न आए, ब्रह्म लीन होता, सुनो हो मन मरे तो और क्या जन्म होता है! मरे तो और जन्म न होता, यह दहे जाए तो फिर पायी न जाए। जब इस दहे को बाए रखोगे तब ही एकाकार ब्रह्म को पहचानेगे। सुनो हो मन, एकाकार भावना करो, विकार न रखो। विकार रखो तो कभी ब्रह्म को पहचानोंगे नहीं।

हे मन अब सुनो तुम ही। ब्रह्मा को न जानते कोई।।४५।

ब्रह्मादि देवा सुर नर। जगमें को जानेगा नर।।४६।

केवल भाववश होते वह। उनका चिन्तन किये रहो।।४७।

वह ब्रह्म दया जो करेंगे। हर घटों में दृश्य होंगे।।४८।

घटघट में वे होए होंगे। न लगे खेलते रहेंगे।।४९।

अत: निष्काम चिन्तन करना। वेद शास्त्रों में न भूलना।।५०।

वेद तो नाना मत कहें। उव भावे भटका ही न जाए।।५१।

एक ब्रह्म की करो आश। पाएगा परम में वास।।५२।

मन सुने आनन्द भयो। मैं प्रभु निस्तरित होयो।।५३।

अब मैने संशय तजा ही। ब्रह्म महिमा सुन कर ही।।५४।

पहले आपने क्यों न कहा। मुझे अशेष कष्ट दिया।।५५।

घर से आया जिस मन से। वह मन हर लिया कैसे।।५६।

तेरी माया से मैं भटका। जो कष्ट भोगा सीमा न उसका।।५७।

वह कष्ट बताताहूं सुनो। किस प्रकार भटका हूं जानो।।५८

कहता अरक्षित दास। तेरी माया न भटकाये देश।।५९।

(भक्ति योग के सिद्धतंन्मय तंत योगी है महापुरुष अरक्षित दास। आराधना की कोई पावन्दी नहीं। 'न शौचं न स्नानं, न जपं न ध्यानं, तदगत प्राण केवलं। भूमा सर्वत्र विद्यते'। महापुरुष कवि नहीं। बोधज्ञ समर्पित भक्त हैं। वाचक विद्वान अनुभव कर सकेंगे, यो मेरी आस्था विश्वास है - अनुवादक)

इति

श्री मचचैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम षष्टषष्टितमोऽध्याय

— o —

सप्तषष्ठितम अध्याय (६७)
गृहत्याग विवरण

मन कहता हे चैतन्य। इस महीमण्डल में पुनः।।१।
तुमने तो मुझसे की है माया। कभी भी की नहीं दया।।२।
तुम्हे विन इस जग में। अन्य कौन है ब्रह्माण्ड में।।३।
किस के आगे मैं कहूंगी। तुम्हारे बिन कौन है भी।।४।
अहो चैतन्य तुम विधाता। सभी जीबों का तू है कर्ता।।५।
अहो चैतन्य विष्णु तुम ही। पालते नाथ तुमही मही।।६।
अहो चैतन्य तुम हो ईश्वर। सब को भरते उदर।।७।
अन्तर्यामी हो तुम चैतन्य। जानते सब ही के मन।।८।
अहो चैतन्य शून्यदेही। तुम्हारा रूप वर्ण नहीं।।९।
अहो चैतन्य सर्व देव। प्रति घटों में शुभाशुभ।।१०।
अहो चैतन्य सुनो तुमही। तुम्हें पहचान न पाऊँ मैंही।।११।
अहो चैतन्य दया करो। पाप पुण्ट में तुम न मारो।।१२।
पाप को छोड़ूं तो मरूंगा। पुण्य करूं नाश ही जाऊँगा।।१३।
इन दो को एक जो करेगा। तेरी माया से वह तरेगा।।१४।
तुम तारो तो मैं तरूंगा। न तो अवश्य मैं मरूंगा।।१५।
तुम्हे सेवूंगा यही चाहा। कई रूपों में घूमता रहा।।१६।
मनुष्य जन्म मुझे दिया। भूख-प्यास से मरवाया।।१७।
भय निद्रा को न छोड़दिया। निरत काम वा रहा।।१८।
हिंसा क्रोध मोह माया में। चोषठ व्याधि शरीर में।।१९।
ये पांच प्रकृति पचाश। करते शरीर विनाश।।२०।

उन्हें कौन जीत भी पाएगा। अवश्य पिण्ड नाश होगा।।२१।
मैह जो उनका वश हुआ। सदा भ्रमित भटकता रहा।।२२।
अगर यह दयाप्राप्त होता। तो क्यों माया मैं फंसता।।२३।
मुझ पर आप निर्दय होकर। घर से लोटाए क्यों कर।।२४।
जिस समय मैं घर पर था। आपका चिन्तन करता था।।२५।
मेरी सप्तारह की आयु में। सुबुद्धि जागी हृदय में।।२६।
दो सालतो घर पर। तुम्ही भावना में निरन्तर।।२७।
तुम्हरे भाव में चित्त देकर। रात दिवस एक कर।।२८।
सोचा घर पर काम नहीं। वन निवास करूंगा ही।।२९।
एकेला वन में रहूंगा गांव को कभी न आऊँगा।।३०।
इस प्रकार मनही मन सोचा। घर से मैं दिवाकाल आया।।३१।
एक गांव में सरायघर। दिगि पण्डा था नाम असल।।३२।
वहां मैं कौपीन लगाया। लेख घर को पठा दिया।।३३।
बोला मैं तलाशना नहीं। तलाशो पाओगे भी नहीं।।३४।
उस भांति लेख लिख कर। आधि रात को हो बाहर।।३५।
बैशाख माह तो हुआ था। अष्टमी चांद डूबता था।।३६।
मेरे उस समय निकलते। बादल घिर आया त्वरित।।३७।
हवा बह रही थी प्रखर। राह न दिखे अन्धकार।।३८।
तब बूंदा बाँदी होने लगी। बिजली भी चमकने लगी।।३९।
मेरा बन वह देखकर। सोचा अब क्या करूं मगर।।४०।
प्रभु की माया मुझसे हुई। अंधियारी जो घिर आयी।।४१।
क्या बुद्धि अब महं करूंगा। कहां चल आसरा मैं लूंगा।।४२।
इस मन को डर लगने लगा। चलूंगा नहीं कहने लगा।।४३।

कल सुवह ही मैं चलूंगा। यह कष्ट सह नहीं पाऊंगा।।४४।

फिर मन ने साहस बटोरा। तब वहां से निकल पड़ा।।४५।

राह न दिखे अन्धकार। ठंड से काँपता शरीर।।४६।

ढिप खड्डा न जानता था। वन में मैं चलता था।।४७।

मेरे कुच ही दूर चलते। देखा मै भालू एक आते।।४८।

बिजली की चमक से मैं। देखा वह सामने ही है।।४९।

इस मन को बड़ा डर लगा। राह और भी नहीं दिखा।।५०।

सोचा यह अवश्य खालेगा। प्रभु आन का अपमान होगा।।४१।

इस पर्कार मन में सोच लिया। खाए कहके चलदिया।।४२।

वह भालू भी न सका। उसी जगह ही था रुका।।४३।

तब मुड़ कर मैं बढ़ा वन के भीतर ही बढ़ा।।५४।

मेरे घूमते पथ भ्रमित। भोर भयी ढलगयी रात।।५५।

उदित हुए दिवाकर। मेघ पवन हुए स्थिर।।५६।

जगत आलोकित भया। मन मेरा आनन्दिति हुआ।।४७।

राह मेरे चलते आनन्दित। आगे पहुंचा एक पर्वत।।५८।

नाम था वह केराण्डिमाल। यही टिकुंगा निरन्तर।।४९।

यहां मैं भकति साधूंगा। किसी का सङ्ग न करूंगा।।६०।

कहता अरक्षित दास। महीमण्डल गीता रस।।६१।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथेन नाम सप्तषष्ठितम्राध्याय।

— ० —

अष्टषष्ठितम अध्याय (६८)

भ्रमण विवरण

उसके बाद की जो कथा। कहूंगा सूनें वह व्यवस्था।।१।
इस भांति तो सोच लिया। तेरी माया ने घेर लिया।।२।
क्षुधा तृषा ने तड़पाया। उसने मुझे जो डराया।।३।
सोचा मैं क्या बुद्धि करूंगा। कहां से क्या भी खाऊंगा।।४।
पानी तलाशे मिला नहीं। जान तृषातुर मयी।।५।
विधि से वह वैशाख मास। रौद्र ताप ने दिय त्रास।।६।
सोचा चला जाएगा यह प्राण। कर न पाया प्रभु सेवन।।७।
छोड़ा संसार सुख स्वपन। वन में तजूंगा जीवन।।८।
यह सब विधाता ने है की। उसीने योजना बनायी।।९।
मेरे उस प्रकार विचारते। बुद्धि एक आयी हृद्गते।।१०।
सोचा मै यौं को काम नहीं। गांव में चलूंगे मैं अबही।।११।
यहां रहूं तो प्राण जाए। आहार जल मिल न पाए।।१२।
अब मैं गांव में चलूंगा। अन्न से प्राण बचाऊंगा।।१३।
दया करेंगे जब ईश्वर। तब चलूंगा वन के भीतर।।१४।
यही मनही मन सोचकर। हो गया वहां से बाहर।।१५।
आते हुए परवत से उतर। देखा मैं गांव एक अदूर।।१६।
गांव छोर पर वटवृक्ष। गाते थे गीत कुछ बालक।।१७।
वहां में आ मिल गया। भूले पद को बता दिया।।१८।
सुने बालक दौड़ गये। माता पिता को बताये।।१९।
उनसे बात सुन कर। गांव से आए पांच चार।।२०।
बोले वें हा तुम रहो। बच्चों को पाठ तो पढ़ाओ।।२१।

सुनकर सहमत हुआ। लौटकर आऊँगा मै कहा।।२२।
पुरुषोत्तम से आते हुए। यहीं रुक जाऊँगा भी कहे।।२३।
वे भी सहमत हुए। खाना पकालेने को कहे।।२४।
बोला मैं खाना बना न सकूंगा। अन्न देने से खा ही लूंगा।।२५।
वे डरे मुझसे सुन कर। कहा हम जातके शबर।।२६।
मैने कहा जो तुम्हरी जाति। मुझे नहीं है को आपत्ति।।२७।
सुन कर वे चलेगये। अन्न लेकर के आए।।२८।
सात न कोई व्यंजन था। कच्चा आम नमक ही था।।२९।
वह देख धाता सुमिरन किया। पाँचैक कोर निगल गया।।३०।
और जो खाया नहीं गया। छोड़ कर मैं निकल आया।।३१।
आकर पहुंचा एक गांव पर। शाम जो ढली भी वहां पर।।३२।
गांव में प्रवेश करते। भगाए बच्चे जो कहां थे।।३३।
चिल्लाए पागल हैं आया है। पत्थर मारो भगाना है।।३४।
उनके कुवचन वुनकर। रहा उजाड़ घर में छिपकर।।३५।
एक ब्राह्मण ने जो देखाथा। आधी रात आ बुलाया था।।३६।
यही कहके चलागया। विधवा बेटी को कह दिया।।३८।
वै सुने ब्राह्म कुमारी। अन्न परोसा यतन करी।।३९।
क्षीर पिष्टक भी लाकर दिया। काफी समझाए भी कहा।।४०।
कहा सुनिये मेरी वाणी। कम उम्र की मैं तरुणी।।४१।
विधाथा ने यह मुझ संग किया। पति जो मेरा नाश गया।।४२।
स्वामी सुख तो मिला नहीं। कष्ट से दिन वीते नहीं।।४३।
कम उम्र के तुम तो हो। घर छोड़े क्यों आए हो।।४४।
लौट चलो मैं कहती जो है। शादी तुम्हारी न हुई है।।४५।
शादी कर के सुख से रहो। यह कष्ट न सहेगी देह।।४६।

स्त्री का भोग जो न करे। मूर्ख वह कहते संसारे।।४७।
एक मेर कथा मान कर। लौट तो चलो अपना घर।।४८।
अन्न वस्त्र भी न मिलेगा। नानादि कष्ट भोगना होगा।।४९।
ऐसा उस तरुणी ने कहा। मेरा मन उच्चाट कराया।।५०।
कहा मैं लौट मैं चलूंगा। कष्ट इतना क्या मैं सहूंगा।।५१।
सच ता कहा वह तरुणी। क्या बुद्धि करूंगा मैं फुनि।।५२।
घर से आया जिस मनसे। अब वापस चलूं कैसे।।५३।
ऐसा मैं मन में सोचकर। वहां से आगया चलकर।।५४।
सोचा घर पर को काज नहीं। भटके भले ही मौत हुई।।५५।
इस प्रकार करते विचार। रात ढली भही भोर।।५६।
सोचा यदि मैं गांव के भीत जाउँ। तब जरुर ही मार खाऊँ।।५७।
कहां से मैं क्या खाऊँगा। यह भूख कैंसे मैं सहूंगा।।५८।
मांगना तो मुझे नहीं आता। गांव में धूव नहीं पाता।।५९।
अयाचित मुझे तो न दिया। जाते ही लोगों ने भगाया।।६०।
किस प्रकार रहेगा यह प्राण। दैव ने किया क्या विधान।।६१।
यदि वापस मैं घर चलूंगा। प्रभु को निन्दित करूंगा।।६२।
कहता अरक्षित दास। महीमण्डल में भारी त्रास।।६३।
सुने कष्ट सुजन जन। भये निर्दय भगवान।।६४।

इति

श्री मनचैतन्य संवादे

मही मण्डल गीता कथने नाम अष्टषष्ठितमोऽध्याय

— o —

उनसप्ततितम अध्याय (६९)
खल्लिकोट वाणपुर होकर श्रीक्षेत्र

अहो चैतन्य सुनो तुमही। जो कष्ट मैंने भोगा है ही।१।
उसके बाद मैं पथ चलते। प्रभु-नाम चिन्तन करते।।२।
ऐसे मैं चलते चलते। शास हुई दिवा के वीते।।३।
एक गांव की वीच गली में। रहा भूखे प्यासे ही मैं।।४।
किसी ने पूछा नहीं मुझे। फिर लिा रात भोर होते।।५।
उस गांव से चल दिया तुरंत। भूख से मन था व्यथित।।६।
चलते चल नहीं पाता। बड़ी भूख से मैं तरसता।।७।
कुछ दूर ही मेरे आते। शाम ढली दिनान्ते।।८।
धीरा घिर आया अन्धकार। मैं आया एक गांव भीतर।।९।
उस गांव में कुछ मिला नहीं। देह जो व्यकुलित भयी।।१०।
भूख से नींद आती नहीं। रात ढली और भोर भयी।।११।
खल्लिकोट गां में आया। मैं वहा जल पान किया।।१२।
फिर मैं आया वाणपुर। कैवर्त्त न देखा पथपर।।१३।
बोला मेरे घर तो आओ। भोजन करो तब जाओ।।१४।
उसके साध घर आया। भोजन करे तृप्त हुआ।।१५।
आते आते दिवस ढला। कहीं भी स्थान नहं मिला।।१६।
काफी कष्ट देह ने पाया। उस स्थान से चला आया।।१७।
आसते सोरण भीतर। शास ढलगयी वहीं पर।।१८।
मण्डप एक मैने देखा। रात भर को वही टिका।।१९।
मण्डल के पास उसका घर। विवाह किया है वह नर।।२०।
मुझे देखे वह पूछ लिया। अन्न भोजन करोगे क्या।।२१।
उनसे कहा दो तो खाऊँ। मैं न जानूं नहीं मागूं।।२२।
कहा उसने तुम रहो यहां। बुला ने आएगा बाया यहां।।२३।

ऐसा कहकर वह गया। रात ढली पूछने न आया।।२४।
भूख ने बेहत तड़पाया। तब वहां से चलाआया।।२५।
मेरे राह चलते हुए। एक ब्राह्मण ने देखा मोहे।।२६।
बोला आओ घर चलें भाई। मैं भोजन कराऊँगा तोही।।२७।
मैं उनके साथ गया। भोजन से परितुष्ट हुआ।।२८।
मैं उस दिन वहीं रहा। रात वीतते चला आया।।२९।
इस भांति राह चलने चलते। काफी दूर देखा दिवा ढलते।।३०।
एक ब्राह्मण शासन के भीतर। दाखिल होगया सत्वर।।३१।
मुझ देखकर एक ब्राह्मण। भोजन कराया वह अन्न।।३२।
कहा इस गांव में न रहो। अन्य गांव को चले जाओ।।३३।
रात दो घड़ी के भीतर। सब मिलकर। किया दूर।।३४।
बोले इस गांव में न रहो। बाघ भालू का बड़ा भय।।३५।
बाघ देखे तो खाएगा। राजा भी घर उजाड़ेगा।।३६।
इस भांति मुझे धमकाया। गांव से बाहर करदिया।।३७।
इस भांति उनकी कथा सुनी। ग्राम जंगल में गया फुनि।।३८।
इस तरह भटकते रातको। नींद न आती थी आंख को।।३९।
मच्छरों ने जो कष्ट दिया। उसने मुझे रुलादिया।।४०।
सोचा वह ब्राह्मण तरुणी। उसकी कथा नहीं मानी।।४२।
वह पीड़ा को सह पाएगा। मरूं तो निस्तार ही होगा।।४२।
ऐसा मा सोचते सोचते। चलपड़ा रात के रहते।।४३।
भले बाघ भालू खा जाएं। यह कष्ट शरीर न पाए।।४४।
चलते चलते उस प्रकार। रात होगयी भोर।।४५।
बड़ देवल[१] को दूर से देखा। चिन्ता की होगयी उपेक्षा।।४६।
चलता गया जोर जोर। पहुंचा मिटिकिणी[२] द्वार।।४७।

---

१. बड़ देवल - श्रीमन्दिर

२. मिटिकिणी - सिंहद्वार का अर्गल द्वार

द्वारी ने जाने दिया नहीं। अठरनला[३] जाओ कही।।४८।
द्वारी के वचन सुनकर। अठारहनला आया चलकर।।४९।
उस द्वारी ने पथ नहीं दिया। बेंत उठाकर भगाया।।५०।
वहां से मैं लौट आया। बकुल तले बैठ गया।।५१।
मनही मन किया विचार। द्वारी ने छोडा दहीं द्वार।।५२।
किस प्रकार मैं भीतर जाऊँ। प्रभु दर्शन कर पाऊँ।।५३।
इस तरह सोच सोच कर। रहा मैं न खा पीकर।।५४।
इस प्रकार वीते पांच दिन। भूख से न रहेगा प्राण।।५५।
सोचा मैं यहा काम नहीं। निर्द्दय भये भावग्राही।।५६।
घर को मैं लौट ही चलूंगा। यह कष्ट सह न पाऊँगा।।५७।
मैं ऐसा सोच कर आया। सत्यवादी में रुकगया।।५८।
रात भयी भोर जब ही। चलते राह भूला मैं ही।।५९।
पूरव पच्छिम जान न पाया। फिर अठरनला पहुंच गया।।६०।
यह प्रभु की कैसी माया। अवश्य डूबेगी यह काया।।६१।
प्रभु चरणों में मन दिया। रात दिन न जान पाया।।६२।
इस प्रकार करके विचार। रहा बकुल तले टिक्कर।।६३।
इस प्रकार सात दिन गया। अन्न तो मिल नहीं पाया।।६४।
कहता अरक्षित दास। महीमण्डल में क्या है रस।।३५।
सुनो अहो सूतन जन। मोरा कष्ट जो सुने सर्व जन।।६६।

इति
श्री मन चैतन्य संवादे
महीमण्डल गीता कथने नाम उनसप्ततितमोऽध्याय

— o —

३. अठरनला पुरी प्रेवेश पथ पर स्थित अठारह पथ का नाला।

सप्ततितम अध्याय (७०)
अठरनला-बकुल तले उपवास

अहो चैतन्य नारायण। उसके बाद की पीडा सुनो।।१।
इस प्रकार वेते सात दिन। लगा मुझे दिाा मैदान।।२।
झुरमुटों के भीतर। नाले के पास आया।।३।
टट्टी से फारिग होकर। आया मैं पानी भी छूकर।।४।
जब आया मैं पानी छूकर। देखा चाण्डाल चौकीदार।।५।
अरे चोर तू कहां जाए। आज तुझे आ को बचाए।।६।
यही चीखते दौडे आया केश पकड़ कर खींच लिया।।७।
जब मैं नीचे गिर पड़ा। जोरजोर उसने लात मारा।।८।
फिर उठाए मूथ मारी। घूंसे भी बरसाए भारी।।९।
धक्का देकर धकेलकर। बाल खींचता पटक कर।।१०।
तप्पड़ घूसा मारकर। दया नहीं था तिल भर।।११।
नित मेरे बगीचे आकर। नारीयल बेचा चुराकर।।१२।
इस प्रकार गालियां देकर। क्रोध से कांपे थरथर।।१३।
आज देखो तू मरगया। नरीयल चुराए तो खाया।।१४।
बाल धरे घसेटते लेकर। राजा से करूंगा गुहार।।१५।
उस भांति मुझे घसेटते ही। बूढ़ी एक ने देख मोही।।१६।
बोली क्यों मारता है उससे। क्या सोष किया है तुमसे।।१७।
कहा वहचोर ही है यह। नित नारीयल यह चुराए।।१८।
सुन कर बूढ़िया ने कही। छोड़ो उसे कहती हूं मोही।।१९।

आठ दिनों से विन खाए। बकुल तले रहता है।।२०।
प्यास लगे तो चलकर। आता होगा पानी पीकर।।२१।
यह यदि राजा से कहेगा। मार मराए बेड़ी देगा।।२२।
सुन कर वह डरगया। छोड़ कर वह भाग गया।।२३।
तो मैं वहां से उठ का आया। बकुल तले सोये रहा।।२४।
सोचा अब तो प्राण गया। यही कपाल लिखन भया।।२५।
ब्राह्मणी कथा सुनी नहीं। आखर अब जान जाही।।२६।
यह जो मानव जन्म सार। क्या भोग किया है संसार।।२७।
अब तो मात्र उन्नीस वर्ष। धाताने किया मेरा नाश।।२८।
मित्र स्वजन देख न पाया। मार खाये जीवन गंवाया।।२९।
घरपर होता तो को मारता। यह कष्ट रखा ता विधाता।।३०।
पुराणों ने कहा है यह सार। तुम हो तया का सागर।।३१।
यह सुनें तो मैं आया ही। दया करोगे भावग्राही।।३२।
मुझ पर निद्दय तुम भये। तुम्हें न सेवे प्राण जाए।।३३।
अब तो सुदया मुझ पर करो। यह देह चंचल छोड़ चलो।।३४।
यही गुहार करता हूं। यह कष्ट सह न पाता हूं।।३५।
आज से दस दिन हुए। अन्न ही मिल नहीं पाए।।३६।
जीवन बस पानी पीकर। बचा रहा है फिर क्योंकर।।३७।
भूख प्यास से तड़पे हुए। उस पर भी मार खाए।।३८।
तुझ पर भरोसा जिसका होए। ऐसा कष्ट क्या वह पाए।।३९।
यही विचार किये सोया। भोर भही मैं उठ आया।।४०।
व्यथा प्रास कुछ भी नहीं था। मन में मेरा दम्भ ही था।।४१।

पल होगया दो घड़ी। द्ववार खोल दिये द्वारी।।४२।
मुझे देखते ही उसने कहा। लेकर आओ तु रुपया।।४३।
कहा मैने कुछ भी नहीं है। जाने दो न दो कुछ नहीं है।।४४।
वह सुने मुझे छोड़ दिया। मैं भीतर दाखिल हुआ।।४५।
अरुण स्तम्भ के पाससे। बैठे देखे सिंहद्वार को तरसे।।४६।
बेंत शब्द से कोलाहल। सुने मन हाता ता विकल।।४७।
सोचा जब मैं घुस जाऊँगा। अवश्य मार तो खाऊँगा।।४८।
किस प्रकार भीतर जाऊँ मैं ही। हे प्रभु सुनें भावग्राही।।४९।
यही मैं विचारता रहा। वहां पांच दिन रुका रहा।।५०।
कहा मैं प्रभु दया नहीं। यहां मैं रहूंगा भी क्यों ही।।५१।
अन्न पाती भी नहीं मिला। भूख से अथय हूं भला।।४२।
विचारे यहां को कारज। है तो ब्रह्माण्ड विराज।।४३।
मै यही करके विचार। अठरनला हुआ पार।।५४।
कहता अरक्षित दास। महीमण्डल में बडा क्लेश।।५५।
अहो सुजन जन अ। मो कष्ट करो अनुभव।।५६।

फिर कहता हूं जिस पल महापुरुष को प्रेरणा मिली वही भक्तियोग की सिद्धिक्षण है। आगे के सभी क्रम हैं। इस अध्याय में भी महापुरुष को जो सैद्धन्तिक आस्था मिली वह है प्रभु किसी एक स्थल पर नहीं, ब्रह्माण्ड भर कणकण में विराजित हैं। सर्वव्यापी हैं। अब मैं अपना अनुभव बताता हूं - महापुरुष ने जिन शब्दों का प्रयोग किये है ये है प्राचीन पुरी बोली। जब मैं ओड़िशा साहित्य अकादेमी का अध्यक्ष था तब पं सिद्धेश्वर महापात्र के द्वारा संकलित सम्पादित 'पुरीबोली' का प्रकाशन हुआथा और प्रणमट

महापात्र, नीलमणि साहु, ने पुरी पौर सभा सभागार में उसका लोकार्पण कियाथा। प्रचलित शब्द भी विकसित होते रहते हैं। उस ग्रंथ में वे शब्द अप्राप्त हैं। प्रभु मेरी भी निष्ठा की परीक्षा लेते रहे हैं। नेत्रज्योति क्षीण होती चली है। जो करता हूं कम्प्युटर में अक्षर जुम करके ही कर पाता हूं। उस समय क्या में आये कि मैने जो १२४ पृष्ठ (ग्रंथ रूप में आपातत: ३०० पृष्ठ) का काम कर चुकाथा। उसकी हार्डकॉपी बनाली। फिर कुछ समय पश्चात काम करने आया तो सम्पर्ण अंश गायब था। मुझसे मात्रा की अशुद्धि की संभावना है न देख पाने के कारण। अब फिर नयी फाइल बनाकर उसमें उनसप्ततितम अध्याय से काम कर रहाहूं और हार्डकॉपी भी बनाता जा रहाहूं यह मेरी आस्था है कि प्रभु मेरी भी परीक्षा ही ले रहे है। अब सो मुझे विश्वास भी हो चला है कि जिस प्राकर असहनीय कष्ट स्वीकारते, वाधकता का अतिक्रमण करते हुए महापुरुष पावन ओलाशुणी पीठ तक आए, प्रतिष्ठित हुए, उसी प्रकार हिन्दी में काव्यान्तरण भी सहजता से होगा नहीं। उस वाधा कष्ट को झोलना ही होगा जैसी करुणाबरुणशलय जगतबन्धु की इच्छा। अरजि, मरजी पूरी करो हे अरूप अनाकार ... अनुवादक)

इति

श्री मनचैतन्य संवादे

मही मण्डल गीता कथने नाम तप्ततितमोऽध्याय

— o —

एकसप्ततितम अध्याय (७१)
सिंहद्वार से प्रत्यावर्तन

अहो चैतन्य नारायण। तुमने यह कष्ट दिया पुनः।।१।
इसके बाद अब क्या करेगा। मुझे क्या सुख भोग देगा।।२।
इस प्रकार विचारे चलते। बादल घिर आए त्वरित।।३।
हवा फिर बही प्रखर तर। धूल से दिशा गयी भर।।४।
वरषने लगा घन घोर। मेघ गरजना जोर जोर।।५।
तेज पवन धकेले ले जाता। मैं खड़ा हो नहीं पाता।।६।
आगे से पीछे धकेलता रहा। मैंने सोच लिया प्राण गया।।७।
ठंड से कांपता शरीर। पानी, हवा बालू प्रखर।।८।
उस भांति पवन जो बहा। दूर धकेले ले गया।।९।
वर्षा से कुछ थमते। वट वृक्ष एक देखा भींगते।।१०।
मैं वहां संभल न पाया। वटवृक्ष को जकड़े रहा।।११।
इस प्रकार दो घड़ी होगही। पानी वर्षा भी थमगयी।।१२।
देखा मैं पास कोई गांव नहीं। शाम ढली भी उसी ठाइँ।।१३।
चल नहीं पाया उठ कर। प्रभु की सेवा है ईश्वर।।१४।
ऐसा निर्द्दय वह पुरुष। अवश्य मेरा हुआ नाश।।१५।
इस रात यदि मैं जीऊँगा। कल ही घर अवश्य लौटूंगा।।१६।
और तो चल पाऊँगा नहीं। भूख ज्वाला संही न जायी।।१७।
घर पर होने के दिनों में। क्या भोग किया नहीं मैनें।।१८।
पट्ट वस्त्र व पीतांवर। चूया चूआ चन्दन अलंकार।।१९।

शेय पलंग वे सजाते। कुङ्कुम शरीर पर मलते।।२०।
नाना पुष्प आभूषित कराते। तुरंङ्ग पर सवार कराते।।२१।
क्षीर खिचड़ी पिष्टम अन्न। खण्ड शाकर व घृतान्न।।२२।
नानादि भोग और सारे। क्या मैं कहूंगा विस्तारे।।२३।
ये सारे सुख तजे मोही। कष्ट झोले तुम्ही सेवा की।।२४।
दो साल तो घर ही पर। खाये कड़वे निरन्तर।।२५।
की सेवा सहे पीड़ा सारी। दया पर न भयी मुम्हारी।।२६।
ऐसा विचारते मैं ही। चलते चलते ही हो तो मृत्यु भयी।।२७।
रात हुर्त्त थी दो घड़ी। तब वह जगह मैने छोड़ी।।२८।
इस प्रकार दो दिनों के बाद। पहुंचे ओशोणा[1] अग्रत।।२९।
देवल में चलकर टिका। रात भर वहीं पर रुका।।३०।
रात वीती व होते भोर। पहुंचा गांव के भीतर।।३१।
मुझे देख कर एक ब्राह्मण। कहा आओ करलेना भोजन।।३२।
सत्तरह दिनों से हे सुजन। किया नहीं है मैं भाजन।।३३।
दमुझ से वह सुनकर। व्यवस्था करदी तत्काल।।३४।
चार पांच कौर ही खापाया। और मैं का नहीं पाया।।३५।
कहा मैं सुने महात्मन। मैं अब चलता हूं वहन।।३६।
इस प्रकार कुछ दूर गया। घना आम बगीचा एक आया।।३७।
सोचा मैं आम पड़े होंगे। पर देखे ये लोग मारेंगे।।३८।
इस भांति मैं डरडर कर। पहुंचा अमरायी भीतर।।३९।

१. ओशोणा - एक गांव का नाम।

देखा वह देवल पोखर। पूर्ण है सुनिर्मल नीर।।४०।
सोचा यहां मं रहूंगा। स्वस्थ लगते पर चलूंगा।।४१।
मन ही मन सोचकर। बैठा देवल के पास जाकर।।४२।
समय और दो घड़ियां है। कुछेक ब्राह्मण वहां आए।।४३।
पके हुए आम वे लाए थे। नैवेद्य वे कर रै थे।।४४।
प्रसाद वे सभी पाकर। जो बचा ले चले घर।।४५।
मैं भी तो वहां बैठे रहा। एक भी मुझे नहीं दिया।।४६।
वे थे उस भांति निर्दय। कहा यहां से तुम जाओ।।४७।
उनकी कथा मैं सुन कर। शाम को चला निकल कर।।४८।
डिया गांम के बीच में। सोगया एक बैलगाड़ी में।।४९।
रात भर उस पर सोया रहा। उसदिन अभुक्त ही रहा।।५०।
भोर भयी वहां से गया। देवल के पास बैठगया।।५१।
ऐसे दो दिनों के बाद ही। बूढ़ी ब्राह्मणी एक वहां आयी।।५२।
उसने फटे आम दोई। दे कहा खालो यह तुमही।।५३।
मैं उसकी बात सुन कर। कहा खालूंगा रखकर।।५४।
समय दोघड़ी के होए। ब्राह्म नौने को आए।।५५।
कृष्ण दास नामक ब्राह्मण आया। पुत्र को लिये बैठगया।।५६।
मेरे पास वह बैठ गया। पुत्र से गीत वह गवाया।।५७।
वुने वह मन मेरा छनछन। चौतिशा[२] कहा में बहन।।५८।
अ से क्ष वर्ण तक मया। उन्हें मैं गाकर सूनाया।।५९।

२. एक उत्कलीय रीति की पद्य रचना जो 'अ' से 'क्ष' वर्ण, बर्ण क्रम में होती है।

ब्राह्मणो ने वह सुनकर। विचारे एक एक कर।।६०।

कहा यह नहीं है पागल। आया है गुप्त रूप लेकर।।६१।

कहे उन्होंने इस प्रकार। गये वे एकएक कर।।६२।

उस दिन तो शाम ढली। संध्या पूजा जो हुर्त्र भली।।६३।

माली पूजारी जो आए। संध्या पूजा वे करने आए।।६४।

सैइ पखाल लाकर दिया। खा लेने को उसे कहा।।३५।

पत्थर बरतन में दिया। मैं उसे खा तुप्त हुआ।।६६।

खालेने के बाद पुन: बोले तुम आना तो वहन।।६७।

वे साथ मुझे ले गया। सोने को जगह कर दिये।।३८।

इस प्रकार आं दिन रहकर। वहां से चला निकल कर।।६९।

कहता अरक्षित दास। भटके मैने नाना देश।।७०।

अहो सूजन जन कहूं। खण्डगिरि में अब रहा हूं।।७१।

आप प्रभु से यह तो कहें। मुझ पर उनकी दया भये।।७२।

इति

श्री मनचैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम एकसप्ततितमोऽध्याय

— o —

द्विसप्ततितम अध्याय (७२)
कंटिलो बेलपड़ा भ्रमण

अहो चैतन्य कहूं सुनो। मो प्रभु चाहें भरमाने।।१।

तुम तो साक्षी रूप में हो। क्यों मुझे भरमाते हो।।२।

प्रकृति संङ्ग मिले मै होए। भरमा माया मत्त भये।।३।

प्रकृति गण मुझे धरे। लेती हैं त्रतउत धरे।।४।

उनके काबू में मै रहकर। भरमा नानारूप चहूं ओर।।५।

पहले जिस भांति भटका। वह सुने जो मनै कहा।।६।

कई पर्वतों पर घूमाया। खण्डगिरि में ठांह दिया।।७।

चित्त भ्रमित करके फिर। खण्डगिरि से होऊँ बाहर।।८।

सोचा में भकति साधूंगा। गहन वन प्रवेशूंगा।।९।

ऐसा मैं करके विचार। खण्डगिरि से हुआ बाहर।।१०।

जागर अमावास्या दूसरे दिन। चला आने का किया मन।११।

आते मै मन में विचारा। चलूं वस्ती को कर किनारा।।१२।

पागल नाम मुझे मारेंगे। कोई पहचान न पाऐंगे।।१३।

रौव ता मेरा कुछ नहीं हैं। माया संसार कहते हैं।।१४।

वह प्रभु घटघट विराजे हैं। भला बुरा न जानते हैं।।१५।

प्रकृति देह में भी हैं। हिंसा क्रोध में भरमाते हैं।।१६।

इससे न जाता गांव के भीतर। किनारा कर जाता बाहर बाहर।।१७।

इस प्रकार मेरे चलते चलते दो ब्राह्मण मिले आते।।१८।

कहा तुम जहां तक चलते हो। मुझे भी साथ लेते जाओ।।११।

हम कंटिलो तक जाते हैं। आओ हम सात हो लेले हैं।।२०।
नीलमाधव देवता हैं पर्वत पर विराजे हैं।।२१।
पहले आराधित थे जगन्नाथ। शबर पूजता था नित।।२२।
यहां ब्राह्मण ने दिखाया। जाकर राजा को बोल दिया।।२३।
इन्द्रद्युम्न राजे देखे। ले गये सब को निरेखे।।२४।
लेकर नीलकन्दर में। विजय कराए संवर्भ में।।२५।
ऐसा कहकर वे ब्राह्मण। बोले रहो आज इसी स्थान।।२६।
करोगे नीलमाधव दर्शन। करोगे प्रसाद सेवन।।२७।
इस प्रकार तु गये। देखोगे देवल दिखता है।।२८।
मैने वहां चल कर नहाए। और वे आगे बढ़गये।।२९।
उनकी बात माने गया। नीलमाधव दर्शन भी किया।।३०।
अति निर्मल स्थान वही। महानदी का तट वही।।३१।
नहीं तो क्यों जगन्नाथ। पहले रहेथे ये ही तो।।३२।
यह तो उन्हीका है पीठ। न तो क्यों होते प्रतिष्ठिति।।३३।
ऐ विचारे बैठे रहा। विशेष प्रसाद भी पाया।।३४।
उसी रात मैं वहीं रहा। भोर होते ही चला आया।।३५।
वहां से कुछ दूर चले। ब्राह्मणेक आकर मिले।।३६।
बोले मुझे भी साथ लेलो। कहांतक चलोगे बोलो।।३७।
बोला मणिभद्रा तक जाना है। तुम्हें किस जगह जाना है।।३८।
बोले बेलपड़ा मैं हो। बेलपड़ा में आज रहो।।३९।
मणिभद्रा कल तुम चलना। बेलपड़ा में रुक जाना।।४०।
ऐसे कुछ दूर ही चलकर। चलेंगे स्नान निवटा कर।।४१।

महानदी में स्नान किया। वहां जलपान भी किया।।४२।
ऐसे ही चलते चलते। बेलपड़ा पहुंचा अग्रते।।४३।
बोले तुम मण्डप को जाओ। कहा मैं दया रखे रहो।।४४।
बोला तुम्हारी दया तो मुझपर। आए पहुंचा मण्डप पर।।४५।
मण्डप टूटा उजड़ा है। दधिवामन विराजे हैं।।४६।
सोचा मैं प्रभु की है माया। किससे निर्द्दय किसे दया।।४७।
नीलमाधवजो हैं। कैसा नैवेद्य न मिलता है।।४८।
यहां है श्री दधिवामन। एक सेर चावल का भोजन।।४९।
वे तो पत्थर देवल में है। ये उजड़े मण्डप में हैं।।५०।
वह प्रभु द्रव्य का विधान। जिसे जो करते निदान।।५१।
किस के पट्टवस्त्र देते। किसे चिथड़े में है रखते।।५२।
किसी को षड़रस देते। किसे मोटा चावल न मिलते।।५३।
किससे सेज पलंग देते। किसे खटिया भी न देते।।५४।
इस प्रकार प्रभु की व्यवस्था। को जाने कैसे हो भी जाता।।५५।
कहता अरक्षित दास। प्रभु की महिमा अशेष।।५६।
सुने हो सुजन जन। प्रभु की माया हहै एसन।।५७।

इति
श्री मनचैतन्य संवादे
महीमण्डल गीता कथने नाम द्विसप्ततितमोऽध्याय

— o —

त्रिसप्ततितम अध्याय (७३)

मणिभद्रा में रात्रीयापन

अहो चैतन्य सुनो त्वया। ऐसी हैं तुम्हरी जो माया।।१।

मुझे घरसे जब आना हुआ। तब कष्ट जो भोग किया।।२।

उससे वह पीड़ा बढ़ गयी। कह रहाहूं सुनों तुमही।।३।

मण्डप पर जा बैठगया। प्यास तरसता रहा।।४।

समय तीन पहर हुआ। भूख ने भी तड़पाया।।५।

जल भी तो पास नहीं। किससे जल मांगू मैं ही।।६।

एक वक्त उपासी न होता। इस वन में कैसे जीता।।७।

इस देह में कोई जो है। परेाान वहकरता है।।८।

ऐसा मेरे विचार करते। एक आ पहुंचा अग्रते।।९।

पूछा किस जगह से आये। यहां आ क्यों टिक गये।।१०।

कहा खण्डगिरि से आयाहूं। रौद वीते तो चला जाऊँ।।११।

पूछा क्या कुछ तुम खाओगे। मैने कहा तुम जो देदोगे।।१२।

सुनकर वह चलागया। लघु आहार लिये आया।।१३।

वह जलपान करते मोही। आकर चार पहुंचे ही।।१४।

उन्होंने दर्शन करके कहा। रात को रुक जाना यहां।।१५।

कल साथ एक ले चलेंगे। पर्वत के पास छोड़ देंगे।।१६।

ऐसा कह कर हमसे गये। सुबह फिर एक आए।।१७।

बोले तुम आगे आगे चलो ही। राह तो मैं जानूं नहीं।।१८।

वह सुने वह चलता रहा। पीछे मैं भागता ही रहा।।१९।

उस दिन था कोहरा भी। ठंड लगने लगी मुझे भी।।२०।
सोचा माह है चैत। ठंड भी लगती बहुत।।२१।
शर्दी के समय जाड़े में। जंगल में रहपाऊँ कैसे मैं।।२२।
मांज तक कांपता मेरा ता। मानों धूप को बुलाता था।।२३।
वह सुने किया मैं विचार। यह फिर आया है क्योंकर।।२४।
यह मेरे साथ यदि नहीं होता। मैं कहीं अलग जा बैठता।।२५।
ओस के छूटे मैं चलता। इतना शीत क्यों पाता।।२६।
ऐसा सोच कर हम चले। समय एक पहर वीता भले।।२७।
कोहरा धीरे हट गया। सूर्य तेज प्रकाशित हुआ।।२८।
शरीर पर सूर्य तेज लगा। जाड़ा भी कहीं गया भागा।।२९।
चलते एक गांव में। दशपल्ला की सीमा में।।३०।
साथ में जो एक था मेरा। कहकर हमें घर ले चला।।३१।
बोला चलो चलते हैं घर। चलोगे कुछ भोजन कर।।३२।
उसकी बात सुन साथ गया। भोजन कर गांव से गया।।३३।
महानदी भीतर से गया। मणिभद्रा पर्वत को पाया।।३४।
ऊपर ताक कर के देखा। चारकोश तो ऊंचा होगा।।३५।
ऊपर पानी भी नहीं हैं। क्या पीकर रहूंगा मैं।।३६।
नीचे उतर कर पानी पीये। जाने की ताकत न होए।।३७।
बड़ा भरोसा मैं किया था। रहूंगा यहां यह सोचेथा।।३८।
व्यह सोच निष्फ, जो भयी। कहां रहूंगा फिर मै ही।।३९।
महानदी के दानों तट पर। गांव है स्थापित होकर।।४०।
नदी किनारे लता नहीं। गांव ही गांव है ही।।४१।

ऊपर पर्वतो पर मानो। जल तो न पाऊंगा जानो।।४२।

गांव के भीतर चल पाऊं नहीं। क्या करूंगा वह बुद्धि नहीं।।४३।

ऐसा विचारे चलते मोही।। शाम ढली फिर रात हुई।।४४।

रात को चलता मैं जाता। चांद ढलते रुक जाता।।४५।

महानदी के भीतर फिर। बैठे मैने किया विचार।।४६।

आज तो है रविबार। तिथि सातवीं निरधार।।४७।

रात सात घड़ी भी होयो। चांद भी तब डूब गयो।।४८।

अंधेरे में राह दिखता नहीं है। नदी के भीतर ही हूं मैं।।४९।

चलूं तो पथ न पाऊंगा। कही जल में घुस जाऊँगा।।५०।

यहां ही रात भर रहूंगा। भोर होने पर फिर चलूंगा।।५१।

ऐसा मन में सोच लिया। रेत पर ही सोगया।।५२।

कपड़ा एक ही लपेट कर। यह ती मेरी तकदीर।।४३।

हे प्रभु यह विचार तुमने किया। आज भोजन भी काट दिया।५४।

यही विचारे सोने पर ही। भूख से नींद लगे नहीं।।५५।

हे अन्तर्यामी पीतवास। मिटाओ अर्क्षित दास क्लेश।।५६।

आहो सूनें सुजन जन। यह सोचा सोये मन ही मन।।५७।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

मही मण्डल गीता कथने नाम त्रीसप्ततितमोऽध्याय

— o —

चतु:सप्ततितम अध्याय (७४)
खण्डगिरि प्रत्यावर्त्तन

अहो चैतन्य सुनो तुमही। तीन पहर रात भयी।।१।
पवन जोर बहने लगा। शीत से शरीर कांपने लगा।।२।
मानस दम्भ किया मोही। शरीर दम्भ भये नहीं।।३।
पवन और तेज वहा। और प्रखरतर हुआ।।४।
पवन बहे धीरे जोर। बहता होकर प्रखर।।५।
जलसे लगकर पवन। शीतलतर होता मानों।।६।
बताए प्रभु की माया यह। इस दिन तो शीत ज्यादा होय।।७।
अब मैं क्या बुद्धि करूंगा। क्यों किस जगह चलूंगा।।८।
नदी के भीतर मैं रहगया। रात तीन पहर भी भया।।१०।
एक कोश लौट कर चलूंगा। तब न गांव पहुंचूंगा।।११।
इतनी रात पहूंचूं तो। लोग चोर माने मारेंगे तो।।१२।
यहां रहूं तो प्राण जाए। शरीर थरथर कांपता है।।१३।
क्यों मैं खण्डगिरि तजे। आया मैं सुख ही वरजे।।१४।
आज रात यति मैं जीऊंगा। खण्डगिरि जरुर चलूंगा।।१५।
और तो भटक न पाऊँगा। कष्ट कितना मैं नहीं भोगा।।१६।
देह जो कष्ट सह न पायी। प्रभु की मुझपर माया भयी।।१७।
सात के समय निकला मोही। वन में भगति साधूंगा ही।।१८।
प्रभु की माया मुझसे हुई। सातवी बेला ता चलीगयी।।१९।
और तो बन में न जाऊँ। कष्ट सहन न कर पाऊँ।।२०।

किसी योग और साधता यदि। साधना हो गया होता अध्यावधि।।२१।

भगति योग जिसे कहें। प्रभु का योग वह कहाए।।२२।

तब न माया मेरे साथ हुई। भगति योग दिये नहीं।।२३।

हे प्रभु माया और न करो। तुरंत कष्ट से उद्धरो।।२४।

भगति योग से को काज नहीं। कष्ट से पार करो तुम ही।।२५।

भगति योग व्यतिरेक। और न साधूंगा आरेक।।२६।

अवश्य कौपीन तजूंगा। बैठा खण्डगिरि में रहूंगा।।२७।

दुम्हारी दया यदि होगी। मुझे भकति ही मिलेगी।।२८।

नहीं तो अन्य योग मोही। मरूं तो भी मैं साधूं नहीं।।२९।

हे प्रभु माया मुझसे हुई। बवहां से लौट आया मैं ही।।३०।

इस दहे में कोई जो हैं। कुछ तो झेल न पाता है।।३१।

तू नाथ माया देहे होकर। कुछ न पाते सहन कर।।३२।

अब मैं कहता हूं सुनो। खण्डगिरि को लौटूंगा पुनः।।३३।

यह दोष त्रमाकर देना। कष्ट न सहा महामना।।३४।

शीत भी बढ़ता ही गया। उस स्थान से लौट आया।।३५।

कुछ ही दूर मेरे आने से। आग दिखाई पड़ी दूरसे।।३६।

नदी के बीच आग दिखी। पिशाचन जलाई भी होगी।।३७।

अबा को गया चिता जलाकर। अब मैं चलूंगा वहां पर।।३८।

आग के पास मैं बैठूंगा। शरीर ताजा करलूंगा।।३९।

यही विचारे मैं गया। आग के पास पहूंच गया।।४०।

मनुष्यों की आवाज आयी। वोचा प्रभु की दया भयी।।४१।

नदी गर्भ में आग नहीं। प्रभु की यह तो दया भयी।।४२।
यही विचारे वहां गया। आग के पास खड़ा हुआ।।४३।
तीन लोग थे बढठे हुए। मुझे देख कर डर गये।।४४।
बोले कहा से हो आये। यह रात वेते कहां भी थे।।४५।
शीत से कांपता शरीर। आग के पास आ पधारो।।४६।
यही उन्होंने जब कहा। आग के पास बैठगया।।४७।
अग्नितेज के लगने पर। ताजा हो जाने लगा शरीर।।४८।
कहता अरक्षित दास। पाये शरीर ने नाना क्लेश।।४९।
सुने सुजन जन कहूं। खण्डगिरि वापस चलता हूँ।।५०।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम चतु:सप्ततितमोऽध्याय

— ० —

पञ्चसप्ततितम अध्याय (७५)
खण्डगिरि

अहो चैतन्य सुनो तुम ही। शत के छूटने पर मोही।।१।

खण्डगिरि से, मैंने कहा। दूर जाने को चलता रहा।।२।

राह पर रात हो आयी। चांद ढला, अंधियारी छायी।।३।

नदी के मध्य रहगय। ठंड लगी ता यहां आया।।४।

अग्नि दूर से देखकर। सुनें मैं आया चलकर।।५।

बोले नखाए रह गये। क्यों गांव को नहीं गये।।६।

गांव में यदि गये होते। व्यञ्जन तो तुम करे होते।।७।

बोला मैं पका नहीं पाता। जो देता उसके घरपर खाता।।८।

बोले हमारे ये पकवान। करलेता अर्पण भोजन।।९।

कहा मैं करूंगा अवश्य। न मानूं स्पृश्य या अस्पृश्य।।१०।

वहसुने चंचल कर रंधन। मेरे लिये भी दिये अन्न।।११।

खाते खाते होने लगा प्रात: चलने को मैं हुआ उद्यत।।१२।

वहां से मैं चलकर आया। जल देख पास बैठगया।।१३।

स्त्रियां पांच सात आयीं। दूर से मुझे देख कहीं।।१४।

बोली यह तो पागल है। यहां आ क्योंकर बैठा है।।१५।

किस भांति हम पानी ले जाएँ। चलो यहां से लौट जाएँ।।१६।

चलें तो पागल भगायेगा। और हमें लौटना ही होगा।।१७।

ऐसा कह कर लौट चलीं। यह कथा मुझे काफी खली।।१८।

देखो यह पुरुषोंकी माया। अज्ञान सब करे काया।।१९।

वे हरि हर घटों में होते। युगल रूप विहरते।।२०।
यह देह जीव व परम। विहरे रात दिवसेन।।२१।
जगमें खेल वह लगाया। स्त्र-पुरुष जाति किया।।२२।
तिजना स्त्री-पुरुष हैं। वभी लक्ष्मी नारायण हैं।।२३।
ये जितनी स्त्रियां आयी थीं। सभी हमारी पत्नियां ही।।२४।
डर कर क्यों चली गयीं। यहां से भागे किस विचारे।।२६।
मैं अबा पहचानूं नहीं। अत: भर्त्सना किया वही।।२७।
क्यों कि मैं भिन्नाभिन्न किया। अत: मैं पागल कहाया।।२९।
वह प्रभु घटघय में होई। भला बुरा तो जाने नहीं।।३०।
देह में प्रकृतियां होती। भिन्नाभिन्न करके मरतीं।।३१।
हिंसा लोभ काम माया में। चोषठी व्यधियां साथ में।।३२।
इनके साथ मैं भरम गया। दर्योइन समान हुआ।।३३।
ऐसा मअंने सोच लिया। और वहां वहां से चला आया।।३४।
रात को बेलपड़ा जानो। रात हुई मैं आया मानो।।३५।
नीलमाधव पीठ पर रहा। भोर मयी तो चला आया।।३६।
महानदी के भीतर चलकर। पर्वतेक पर ठहर कर।।३७।
सोचा यहां यदि गुफा होता। इसी जगह मैं रह जाता।।३६।
मअं ने वह विचार जो किया। गुफा तलाश कर नहीं पाया।।३९।
पर्वत घूमें मेरे आते। महादेव के पीठ देखते।।४०।
वहां मैं आकर के मिला। वहां मुझे प्रसाद मिला।।४१।
चला करके प्रसाद सेवन। वह है वैद्येश्वर धाम।।४२।

पर्वत पर हैं महादेव। रात को रहा वही ठाव।।४३।

दही पखाल वहां खाया। भोर भयी तो चलाआया।।४४।

बांकी वीमा में तुलसीपुर। वहां ठहरा सो रात्र।।४५।

रात दो वीताए आया। हतदिआ पर्वत में आया।।४६।

वहां भी स्थान मिलनहीं पाया। डमपड़ो मअं लौट अया।।४७।

रात को उसी जगह रहा। रात वीताए चला आया।।४८।

चलकर मैं खण्डगिरि आया। आकर किसीसे नहीं मिला।।४९।

बारह दिन महं छिपे रहा। पिर एक विचार भी किया।।५०।

कब तक छिप मै रहूंगा। प्राची तट घूम कर आऊं गा।।५१।

निकला अरक्षित दास। माया कर दी पीतवास।।४२।

सुनो सुजन जन कहूं। खण्डगिरि मैं छोड़ न पाऊँ ।।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम पंचसप्ततितमोऽध्याय (७६)

— o —

षष्ठसप्ततितम अध्याय (७६)
खण्डगिरि त्याग। हरिहरपुर आगमन

मैं कहूं सुनो हे चैतन्य। खण्डगिरि से कर प्रस्थान।।१।
रात को चार कोश चलकर। बालकाटि के समीप मिलकर।।२।
भोर भयी और सूरज उगा। मैं भी चंचल चलने लगा।।३।
सोचा को हमें पहचाने। अटकाएगा सनमाने।।४।
अत: चंचल लगा मैं चलने। पहुंचा आगे एक गाँव में।।५।
तब समय सात घड़ी हुआ। देवल के पास बैठ गया।।६।
देखा मंदिर-पूजारी ने। आ बुलाया परसाद पाने।।७।
पूजा करके वह जो गया। हमें कुछ दे भी न गया।।८।
वह देखे सोचे मैं मनही मन। मूर्ख अवश्य है ब्राह्मण।।९।
पूछा और ले चलागया। आशा जगाए दे न गया।।१०।
वहां मैं दोपहर वीताया। भूख ने भारी तड़पाया।।११।
जब धूप शान्त पड़ गयी। तब वहाँ से चला मोही।।१२।
चलते ढलगयी शान। आगे आ मिला एक गाँव।।१३।
वैष्णव देखे पूछ लिया। रात को उसने अन्न दिया।।१४।
चलते हुए रात भर। पहुंचा प्राची तटपर।।१५।
देखा कोई लता तक नहीं। गांव के गांव बसे हैं ही।।१६।
विचारे चलूं मैं क्यों कर। कहां जाऊँगा मैं चलकर।।१७।
उसभांति करते विचार। सोचा लौटूंगा खण्डगिरि फिर।।१८।
उसी प्रकार मैं सोच कर। कुछा दूर आया भी चलकर।।१९।
फिर मन ही मन विचारे मोही। खण्डगिरि चलूं या नहीं।।२०।
योगी गुफा चलकर रहूंगा। और भटक तो न पाऊँगा।।२१।
यहां से दूरी सो कोश। धूप दे रही बड़ा त्रास।।२२।

वैशाख माह तपति है ही। किस तरह रा चलूंगा ही।।२३।
राह पर क्या भी खाऊँगा। डरे गांव में तो न पैठूंगा।।२४।
प्राण जाये परमांगू नहीं। भूख भी सही नहीं जायी।।२५।
क्यों विधाता यह किया। सुख भोग भी छुड़ा दिया।।२६।
जलपान कुछ तो देकर। न रखा तुमने भी स्त्री भर।।२७।
षड़रस भोग तल दिया। अन्न वस्त्र भर दूर किया।।२८।
सोचा मैं भगति साधूंगा। महारण्यों में भटकूंगा।।२९।
वह आशा रखी नहीं तुमने। कष्ट जो दिये अकूलाने।।३०।
यह पूर्वार्जित पाप होगा। तब न यह कष्ट मैं भोगूंगा।।३१।
पूर्व कथा को अपनाना। क्यों कर सेवा तुम्हारी करना।।३२।
यह विचारे लौट आया। समन्दर देखे मन हुआ।।३३।
लहरो को देखता रहूंगा। इसी तट पर मैं रहूंगा।।३४।
फिर मैं सोचा यह तो जल क्षार। क्या मैं रहूंगा पीकर।।३५।
सागर पर ब्राह्मणों ने किया कोप। श्रापित कर दिया महातप।।३६।
हमारी जात तुमने ली है। तेरी जात जाए श्राप हम देते हैं।।३७।
पानी तेरा क्षार हो जाए। उसे केउ न पान करे।।३८।
शापित हो सागर क्षार हुआ। उसे कोई भी नहीं पीया।।३९।
कैसे मैं यह जल पीऊँ। सो यहां रह नही पाऊँ।।४०।
यही विचारे मैं गये। हरिपुर में पहुंच गया।।४१।
महादेव के मंदिर में। शाम को चा पहूंचा मैं।।४२।
माली पूजाहारी जो आये। दही पकाल भोग लगये।।४३।
कहा में यह दही पखाल। कुछ हमें भी देना भला।।४४।
दोदिनों से कुछ खाया नहीं। कुछ तो दिये जाओं मोही।।४५।
वह सुने कहा ब्राह्मण ने। चलकर मांगो तुम गांव में।।४६।
यही कहते लेकर गया। मन में बड़ा क्रोध हुआ।।४७।

अरे पामर मन कहे। तू क्योंकर मांगता है।।४८।
हुआ तेरा ज्ञान जब से। मांग नहीं है तू किसीसे।।४९।
तु भी किसी को क्या देता है। तुझे मांगना न आता है।।५०।
ऐसा निर्ल्लज पना किया। न मरे क्यों मांग लिया।।५१।
जब घर से दू आया था। सत्तारह दिन भूख झोला था।।४२।
तब तो न मरा रे मन। न खाए न मरता दो दिन।।५३।
दोदिन भूख सहा नहीं। न मरे रहे हो क्यों ही।।५४।
चित्रकूट में करके विचार। तजूंगा आहार सोच कर।।५५।
इक्की स दिन विनखाल रहा। पानी पीकर ही वक्त वीताया।।५३।
मन तब भी दु:खी न हुआ। सब के कहने पर खाया।।५७।
दो दि सहन कर न पाए। घिनोनी बुद्धि अपनाए।।४८।
ऐसे में मन को समझा कर। महादेव को किया गोचर।।५९।
हे महादेव तुमहीं सुनो। क्षुधातुर हे मेरा मन।।६०।
दोदिनों से उपासी हूं। कुछ खाने दो कहता हूं।।६१।
नहीं ता तुम्हारे पीठ पर।। अभुक्त रहूं निरन्तर।।६२।
यही मैं कह कर सोया। भोर भयी कि उंठ आया।।६३।
कहा मैं यह पत्थर है। महादेव कदापि नहीं हैं।।६४।
यदि देवता हुए होते। अवश्य भोजन ता देते।।६५।
कहता अरक्षित दास। मनही मन करे रोष।।६६।
आहो सुजन जन सुनो। यह मन चाण्डाल है जानो।।६७।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम षष्ठसप्ततितमोऽधाय

— ० —

सप्तसप्ततितम अध्याय (७७)
झंकड होते हु, पाराद्वीप

हे चैतन्य तब उठकर। महादेव पीठ से चलकर।।१।
चलते एक से भेंट हुई। महादेव की बात कहीं।।२।
वह सुने मुझे वह ला गया। चंचल लाकर अन्न दिया।।३।
उसदिन वहां रहगया। भोर होते वहां वे गया।।४।
चलकर झङ्कड़ में उसदिन। किया शारदा मा का दर्शन।।५।
हे देवी करूं मैं गुहार। खाने को देना प्रतिबार।।६।
तुम ही दोगी तो मानों। कोई न देगा यह जानो।।७।
ब्राह्मण निरपेक्ष कहें। मुझे न पूछेंगे कीन्हें।।८।
मैं तो न मांगूगा जानों। मेरा मन क्या तुम न जानो।।९।
एक प्रु के भरसो में। भटकूं देश अरण्यों में।।१०।
भक्ति मांगू तो देते नहीं। भरमाए मारते हैं वे ही।।११।
प्रभु से मेरा लिये कहो। जताओ दया करें वे ही।।१२।
वचन तुम्हारे वे रखते। जानू मैं मना नहीं करते।।१३।
तुम तो दया करो माता। प्रभु से कहो जगन्माता।।१४।
तुम्हारी कथा वे मानेंगे। मुझे भगति योग देंगे।।१५।
भगति योग विन अन्य। मरूं। साधूं भिन्न ज्ञान।।१६।
इस प्रकार शारदा के आगे। मरा दुःख कहा अनुरागे।।१७।
घड़ी दोपहरी की हुई। धूप पूजा भी हो गयी।।१८।
तब आ ब्राह्मण ने बुलाया। मुझे यत्न से भोग दिया।।१९।
ये सिद्ध वाग्देवी तो हैं। मैने जो कहा जानती हैं।।२०।
ब्राहतम चित्त में समये। बुलाकार परसाद दिये।।२१।

नहीं तो ब्राह्मभण क्यों देते। क्यों कर ये भी बुलाते।।२२।
इनकी दया से शूद्रमुनि। हैं महाभारत वखानी।।२३।
शारला हृदय गता भयीं। महाभारत की रचना हुई।।२४।
नहीं तो वे कैसे जानते। इनकी कृपा जो रही चित्ते।।२४।
ऐसा विचार करे आया। सिंहद्वार पर बैठ गया।।२६।
एक को देखे की कामना। कुजङ्ग राह तो बताना।।२७।
पूछा क्योंकर जाओगे। राजा की भेंट न पाओगें।।२८।
पाराद्वीप में रहते जानो। ये राह चलो कहा मानो।।२९।
उनकी कहा मैं मानकर। पारद्वीप को निकल कर।।३०।
चलते सूर्यास्त जो हुआ। एक गांव में रहगया।।३१।
वहां वैष्ठव मठ देखकर। गया टिकने रातभर।।३२।
वैष्णव ने मुझे देख लिया। चलो यहां से बोलदिया।।३३।
सोचा मठ में न चलकर। वट तले सोऊंगा रुक कर।।३४।
रा के वीत जानेपर। क्यों कुपित हो मुझपर।।३५।
खाने को मैं तो मांगू नहीं। रात को जीए चलूंगा ही।।३६।
एषसा कहकर मेरे आने। रात को आया वह बुलाने।।३७।
मेरे लिये ला दिया भोजन। रात वीतते जाना सुन।।३८।
इस प्रकार कुछ दूर चलते। समय ग्यारह घड़ी होते।।३९।
वट तले मैं रहगया। थकान मारे सो भी गया।।४०।
एक ब्राह्मण ने देख लिया। घर बुलाए अन्न दिया।।४१।
खाकर वहां से चला आया। एक गांव के छोर पर बैठगया।।४२।
ऐसे में सूर्यास्त जो हुआ। वहां के लोग देखे कहा।।४३।
इस गांव में स्थान नहीं। आगे गां को चलो तुमही।।४४।
आगे गांव में मठ भी है। आज भागवत उद्यापन होता है।।४५।
उसी जगह को तुम जाओ। प्रसाद देंगे वे निश्चय।।४६।

एक को संग करदिया। मठ वह पहुंचाएगा कहा।।४७।
उसी के साथ मैं गया। मठ देखकर रहगया।।४८।
वे लोग हमें देखकर। चिवड़ा दही खिलाए सत्वर।।४९।
प्रसाद पाए रात भर रहा। रात वीते मैं चलाआया।।५०।
दो नदियां पार किया। आद्यघाट पर पहुंच गया।।५१।
कहते अरक्षित दास। आद्यघाट में हो प्रवेश।।५२।

(कहचुकाहूं कि महापुरुष संत अरक्षित दास भक्तियोग के परमसिद्ध पुरुष है। किन्तु उन योगियों में परितोष नहीं होता, संशय होता है जिससे प्रभु से भगति की कामना निरन्तर करते रहते है। और प्रभु भगति की कामना निरन्तर करते रहते है। और प्रभु भक्त का मन जानकर कामना परिपूर्ण कर देते है। भागवत में तो प्रभु ने अपने को ' भक्तदास' तक कहा है। यह मेरा अर्न्तबोद है। माता शारदा सरस्वती प्रभु की मुख्य पत्रिका हैं। उन्हीं के तो अलग अलग रूप है धनदात्री महालक्ष्मी, अन्नविधायिनी अन्नपूर्णा, मङ्गलविधायिका मङ्गला आदि जो एक और अभिन्न हैं। महापुरुष के झङ्कड़ पहुंच कर माता के दर्शन के समय जो सब कहा है वह एक तरह से एक पुत्र का प्रतिवेदन था, अभियोग, मांग तो है। और ततपश्चात एक माता की भांति वह भी अकुलाने लगेगी और पुत्र की चाह पूरी करती रहेगी। माता से निवेदन के पश्चात वही हुआ है परमसिद्ध भक्तयोगी महापुरुष अरक्षित दास के जीवन में और आगे चलकर अन्न वाधा ही रही नहीं। - अनुवादक)

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम सप्तसप्ततितमोऽध्याय

— ० —

अष्टसप्ततितम अध्याय (७८)
पाराद्वीप गढ़-प्रवेश

हे चैतन्य करें गोचर। रहकर आद्य घाट पर ।।१।
घाट बाले ने मुझे रोक कर। पूछे कहा जाते हो क्यों कर।।२।
कहू में पाराद्वीप जाकर। रहूंगा राजासे कहकर।।३।
कहा वह गोचर करए ही। तुम्हें मैं छोड़ वकूंगा ही।।४।
कहा मैं तुम चंचल जाओ। गोचर कराए ही आओ।।५।
नहीं तो मैं लौट ही चलूंगा। बैठे रह नहीं पाऊँगा।।६।
मुझसे वह यह सुनें। कहा दूसरे घाट को चलो चलें।।७।
वे लेग गोचर कराऊँगे। तुम्हें ततकाल ले चलेंगे।।८।
यही कह कर लेकर गये। अन्य घाट पर छोड़ आए।।९।
वह हमें जो देख कर। कुछ ही करें इन्तजार।।१०।
राजा को जताएँगे चलकर। आज्ञा हो तो छोड़ आऊँगा सत्वर।।११।
वह सुने मैंने कहा फिर। जाओ आज्ञा ले आना जरुर।।१२।
नहीं तो मैं लौट चलूंगा। नाहक बैठा क्यों रहूंगा।।१३।
यह सुने वह चलागया। आऊँगा शीघ्र कहके गया।।१४।
यही कहके वहा गया। वहां बैठे विचारता रहा।।१५।
द्वापर युग की कथा सुन। जरासन्ध नामक राजन।।१६।
छयानब्बे सहस्र राजाओं को। वन्दी बनाकर लायाथा उनको।।१७।
विचार करता मन में। खड्ग से काटूंगा अन्त मैं।।१८।
बली चढ़ाए देवा आगे। कायूंगा देवी तोष होंगे।।१९।
मनुष्य बली वे खाकर। वन्ताष होंगी ही मुझपर।।२०।
इस प्रकार विचार जो भये। सभी राजागण ज्ञात हुए।।२१।
जब उसने क्षोर करवाया। भव्य वस्त्र भी पहनाया।।२२।
बोले अब नाम चिन्तन करो ही। हमारी नियत बेला आयी।।२३।
हमे बली बनाए लेगा। देवी के आगे चढ़ाएगा।।२४।

हमे प्रस्तुत सो करता है। सभी प्रभु के नाम लो है।।२५।
कोई और बचा न पाएँगे। रखें तो प्रभु ही रखेंगे।।२६।
वे ही आरतत्राण भये। गुहार सुना करते हैं।।२७।
नहीं तो सब का होगा नाश। रक्षा करो है पीतवास।।२८।
रोजाओं की पुकार सुनकर। पहुंचे जरासन्ध पुर।।२९।
तीन ब्राह्मणो के रूप में। कृष्ण अर्जुन भीम बने।।३०।
पहुंचे प्रथम द्वार पर। भीम से कहा शत्रुनाश कर।।३१।
आद्य द्वार को जीत कर। पहूंचे दूसरे द्वार पर।।३२।
अर्जुन ने द्वार जीत लिया। तब तीसरा द्वार आया।।३३।
स्वयं वहां श्री त्रिलोकीनाथ आये। गद्हे के पैर थाम लिये।।३४।
भक्तों के लिये द्वार जीत कर। युद्ध की मांग की तत्पर।।३५।
राजा को सत्य जा कराए। भी के हाथों मरवाए।।३६।
तब राजाओं से कहे। राज्यों को चलो अब मुक्त हुए।।३७।
भगत जनों को मुक्त किये। अपने धाम विराजित हुए।।३८।
कार्य के लिये गद्हा पद। धरे निवारे वे प्रसाद।।३९।
मैं तो इस जगह रहूंगा। कार्य के लिये बैठना होगा।।४०।
नहीं तो मैं क्योकर बैठता। पावन्दी माने क्यों रहता।।४१।
रहूंगा राजा से कहकर। लौट चलूंगा मैं क्योंकर।।४२।
कहां चलूंगा लौटकर। रह पाऊंगा नहीं भटक कर।।४३।
मेरे विचारते वह आया। मुझे उसने तब जाने दिया।।४४।
उसके कहने पर मैं गया। पाराद्वीप गढ़ में दाखिल हुआ।।४५।
कहता अरक्षित दास। करता हूं गढ़ में प्रवेश।।४६।
सुनो हे सुजन जन। इस प्रकार करता भ्रमण।।४७।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम अष्टसप्ततितमोऽध्याय:

— ० —

एकोनाशीतम अध्याय (७९)
पाराद्वीप वर्जन

हे चैतन्य सुने जो मैं कहूं। आगे की कथा बखानताहूं।।१।
लोकनाथ मंदिर में रहकर। रात वीतायी मैं वहांपर।।२।
उन्होंने जो प्रसाद दिया। उसे मैंने ही नहीं खाया।।३।
अन्न तो रंगमय दिखता था। पतला क्षीर-सा लगता था।।४।
व्यंजन कुछ भी न देकर। पाने को कह गये रखकर।।५।
वह देखे मैने शीघ्र किया। सब कुछ को फेंक दिया।।७।
जो जैसा दे वही खाए। अज्ञान देवता ही है।।८।
भक्त जो नैवेद्य चढ़ाते। क्या उसे देवता खा लेते।।९।
सामने रखकर दिखाए। उसे ले आते है उठाए।।१०।
अपनी मरजी से ले जाते। देवता क्या भी हैं खाते।।११।
जो दिकाए वही खाए। वही देवता कहलाएँ।।१२।
यह तो जान नहीं पाते। मिथ्या देव पूजते रहते।।१३।
स्वयं तो ये ब्रह्मा हैं। देखे सुने भोजन करते हैं।।१४।
चलते बैठते सोते हैं। समस्त भोग करते हैं।।१४।
चलते बैठते सोते हैं। समस्त भोग करते हैं।।१५।
इन्हें चीह्ने जो तर जाए। नहीं तो गीत ही कहां है।।१६।
जब मै करता था विचार। एक ब्राह्मण ने देखा आकर।।१७।
मठ को मुझे लेकर गया। महन्त देखे प्रश्न किया।।१८।
कहां से तुम्हरा आना हुआ। और किस कारण आना हुआ।।१९।
कहा खण्डगिरि से हूं आया। तज कर यहां चला आया।।२०।
एकान्त स्थान यद्यपि मिलेगा। कुछ दिन मैं वीताऊँगा।।२१।

उन्होंने कहा पारेश्वर में। एकान्त प्राप्त होगा तुम्हे।।२२।
तो मैं पारेश्वर आया। खूली कोठरी थी रहगया।।२३।
देवल परिछा से कहकर। व्यवस्थित होगा लघु आहार।।२४।
चार महीना तुम सुनो। चलालूंगा यह तुम जानो।।२५।
कहकर उसने किया कुछ नहीं। मूर्ख स्वभाव ब्राह्मण है वही।।२६।
सेवक मुझे भोग देते। मुझे चिन्तित कर देते।।२७।
मोटा अन्न वे मुझे देते। बारीक वे ही खाते।।२८।
कभी दोपहर को मिलता। को दिन नहीं भी मिलता।।२९।
किस दिन रात ढल जाता। किस दिन शाम को मिलता।।३०।
उस भांति वहां वाईस दिन। यिक कर चिन्तित था मन।।३१।
विचारे महाराजा नल। र्थ शनिशप्ता के कवल।।३२।
राज्य संपदा चलागया। बन्धु परिजन छूटगया।।३३।
अन्न वस्त्र भी न होते प्राप्त। अस्तावल में समव व्यतीत।।३४।
इस प्रकार राजा भोग किया। दशाने योजनों भरमाया।।३५।
मैं भी क्या वही दशा भोगूं। राज्य सम्पदा तजे भागूं।।३६।
बवन पथ भटकता हूं। स्थिर कहीं न रहता हूं।।३७।
अन्न वस्त्र भी नहीं। उजड़ी कोठरी में रहता।।३८।
जो करे तुम्हारा भरोसा। उसे सता न पाए दशा।।३९।
मैं भी तो भरोसा किये हूं। फिर भी दशा भोगता हूं।।४०।
दशा जब मैं भोगूंगा ही। क्यों कर तुम्हें देवूंगा ही।।४१।
दशा करता तुमही हो। तुमही व्यवस्था करते हो।।४२।
सब को सब जाने देते। जिसे जो देना है वह देते।।४३।
मैं तुमसे क्या दोष किया। किस पाप से यह का माया।।४४।
अत। की यह अन्न व्यवस्था। क्या तब यह कष्य देता।।४५।

क्यों मअं वहां ही रहता। क्यों भी वह अन्न खाता।।४६।
तुम्हारा यह विचार हुआ। कष्ट इतना जो तुमने दिया।।४७।
करके यहां की मैं आशा। आया चलकर मैं भरोवा।४८।
यहां से कहां मैं चलूंगा। जा कर कहां मैं रहूंगा।।४९।
राजा ने देख पूछलिया। कोई जुगाड़ नहीं किया।।५०।
मेरे कहते सब मना किये। दूर चलने मुझे कहे।।५१।
इस गांव मैं लोग जितने है। सब मुर्ख मूढ़ मति जो हैं।।४२।
यह राजा मूरख ही है। स्वभाव बैल भाव है ही।।५३।
गोरु क्या जानता है ज्ञान। हमारी क्यों करे पहचान।।५४।
यह जगह तजूंगा छोडकर। कनिका राजा से कहूंगा जाकर।।५५।
उस राजा में भगति हैं। हो सके हमें जान पाए।।५६।
यहां से कहां मैं चलूंगा। किससे बह भी पूछूंगा।।५७।
मैंने वह विचार जो किया। पाराद्वीप को छोड़ आया।।५८।
बाईस दिन वहां रहकर। वह स्थान आया छोड़ कर।।५९।
अरक्षित दास जो कहे। पाराद्वीप को न जाना है।।६०।
सुनो है सर्व सुजन जन। पाराद्वीप को न करना गमन।।६१।
वहां तो दया धर्म नहीं। उसी से कहूं जाना नहीं।।६२।

इति
मन चैतन्य संवादे
महीमण्डल गीता कथने एकोनाशीतमोंध्याय

— o —

अशीतितम अध्याय (८०)

कन्दरापुर यात्रा

है चैतन्य सुने जो कहता हूं। पाराद्वीप झोड़ कर आया हूं।।१।
आकर मैं करता हूं विचार जान। विचारता कैसा निस्पृह है यह स्थान।।२।
देवता वहां जितने। सबके सबअज्ञान ही हैं।।३।
एक दिन मै एकान्त में आया। पारेश्वर को मैने कहा।।४।
राजा से मुझे रखो कहे। मैने काफी है कष्ट वहे।।५।
यह वाणी सुनता ही नहीं। पाषाण मूरत अज्ञान ही।।६।
सोचा इसने तो सुना नहीं। लोकनाथ से कहूं मोही।।७।
हे लोकनाथ मुझ को रखने। राजा से कहे रखें सुने।।८।
उन्होंने राजा से कहे रखवाएँ। भटकते दुःख सहे सुनें।।९।
उन्होंने सुना नहीं जाने। अज्ञान मूर्त्ति पाषाण हैं।।१०।
मिथ्या ये होते हैं पूजित। यही विचारे मेरा चित्त।।११।
आते हुए विचारता आया। एक गांव में पहुंच गया।।१२।
सीरे पर एक है वटवृक्ष भया। वहां बैठे धूप सेंकता रहा।।१३।
वेले दस घड़ी भयी। हमें एक भी पूछे नहीं।।१४।
भूख प्यास ने जोर धरा। शरीर अकुलित होने लगा।।१५।
विजारू किसने मांगू नहीं। एसे सोच एक को देख लिया।।१६।
बोला इन गांव में सुनो। दया धमे नहीं है जानो।।१७।
इस गांव में जितने जन हैं। सब के सब निस्पृह ही हैं।।१८।
भुखे सूखूखे को देखकर। चले जाते राह दल कर।।१९।
एसी होते देखता हूं। अन्या होते सेखता हूं।।२०।

क्यों भी भगत आएंगे। न पाए कोप ही करेंगें।।२१।
तब सोचो क्या करना हैं। भक्त वचन मिथ्या न होता है।।२२।
धन वस्त्र वह न मांगते। गुप्त वचन मिथ्या न होता है।।२२।
धन वसत्र वह न मांगते। गुप्त भट के मांगे खाते।।२३।
जिस गांव मिले नहीं जानों। वहां से चले जाते सुनो।।२४।
निराश होए लौट जाते। तब प्रभु ही तो कोषते।।२५।
एसा ही पुराणों में जो हैं। तुमने क्या वह सुना नहीं है।।२६।
एसे कह कर उसे वहां। यदुपुर में टिका रहा।।२७।
कल कन्दरा पार होने। कितना करोड़ सब कहना।।२८।
पूछा कितना दूर होगा यदुपुर। यहां दसदह होगा कोश भर।।२९।
कन्दर पार यदुपुर। पांच कोशेक होगी दूर।।३०।
यहां आज रात एक जाओ। कल सुबह यदुपुर जाओ।।३१।
उसके कहे से रुग गया। फिर भोर होते चला आया।।३२।
बेला दो घड़ियां हुई। मेरी याथा आ रोष हुई।।३३।
कहता अरक्षित दास। यदुपुर में प्रवेश।।३४।
सुजन जन सुने यह कहा। यदुपुर में रहगया।।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

मी मण्डल गीता कथने नाम अशीततमोऽध्याय

— ० —

एकशीतितम अध्याय (८१)

हे चैतन्य सुने मैने कहा। यदुपुर में मैने रहा।।१।
बाईस दिन वहें मैं था। नितान्त सुख ही से ही था।।२।
बाईस दिन यहां रहा। वह स्थान छोड़कर आया।।३।
मैं तब कन्तरापारि आया। वहां पर चार माह रहा।।४।
आए हम वहां से नांव पर। सब नाव पर हो सवार।।५।
भाद्रव माह चतुर्द्दशी। मङ्गल बार था विशेष।।६।
पश्चिम की यात्रा आज शुभ नहीं। इस भांति मन में शंका भंयी।।७
पश्चिम की यात्रा आज शुभ नहीं। इस भांति मन में शंका भंयी।।८।
देखो इन्दर का रोष घोर। विन थमें को बरसे घनघोर।।९।
मेरे बारे में सोचे अनुक्षण। उससे क्या है मेरी लेनदेन।।१०।
अन्दर बाहर विचारता हूं। शोचना करता नहीं हूं।।११।
एक प्रभु की दया होए। किसी का भय ही न होए।।१२।
तेतीस करोड़ देव सारे। किसी से चित्त नहीं डरे।।१३।
एक प्रभु का है भरोसा। और किसी से न डरूं न आसा।।१४।
वे होते निर्द्दय जिस पर। ठांव नहीं ब्रह्माण्ड में कहीं पर।।१५।
मैं प्रभु पर ही भरोसा करता। किसी और से नहीं डरता।।१६।
यह विचार कर लिया। भींगता चलूंगा तय किया।।१७।
मैने चलूंगा सोच लिया। फिर खिवैया को बुलाया।।१८।
फुर्ति से नांव खेते चल। कहीं न हो जाए सकाल।।१९।
तो सत्य मेरो झूठ होगा। यदि उदय हो जाएगा।।२०।
यह सुन कर केवट। नांव चलाया झटपट।।२१।
नांव वहां से आ रहीथी। उधर वर्षा भी हो रही थी।।२२।
राह पर ही भोर भयी। नंव भी चलती ही रही।।२३।

हो गया छ:घडी समय। नांव रुकी पर्वत समीप।।२४।
बोला मैं नांव यही पर। रोको चलेंगे त्यैयार होकर।।२५।
यहां सीधे उठ चलेंगे। गुफा में प्रसाद पाएंगे।।२६।
सभी भोजन तो करों। गुफा के चलने तत्पर।।२७।
मुझसे यही सुनकर। भोजन करे वह त्यैयार।।२८।
भाद्रव माह भोग हुआ। अश्विन एक दिन हुआ।।२९।
उस दिन था गुरुबार। आए पर्वत चढकर।।३०।
हे ओलाशुणी गिरिवर। दया धरना मुझपर।।३१।
दया तुम्हारी होने पर। रहूंगा यहां त्तिककर।।३२।
मेरा अन्याय सारे सहना। कोप कदापि न करना।।३३।
मैं रहूंगा गुफा में जाकर। दया रखना मुझपर।।३४।
मै बहोत भटकता फिरा। आया हूं तुझपर आसरा।।३५।
और भटक न पाऊँगा। दया करना मैं रहूंगा।।३६।
प्रभु निर्द्दय है मुझपर। भक्ति न देता मायाकर।।३७।
उसीसे भटका फिरताहूँ। कै स्थिर न हा पाता हूं।।३८।
अब तुम्हारे पास आया हूँ। अब निकट ही चलता हूं।।३९।
तुम भी प्रभु से कहना। मुझपर दा धरे रहना।।४०।
तुझ पर होगा मेरा वास। कहता अरक्षित दास।।४१।
ऐसे मैं पर्वत से कहकर। आ मिला गुफे में आकर।।४२।
अब प्रभु की इच्छा जो है। मरजी पुरी करते रहें।।४३।
न भरमाओ पुन: पुन:। यहीं रखो है नारायण।।४४।
भगतियोग देते नहीं। घुमाते फिराते हो मोही।।४५।
यद्यनि मुझ पर दया है। भक्ति दो मांगता हूं है।।४६।
नहीं तो यह देह तजे जाओ। क्यों भटकूंगा तुमही कहो।।४७।
हे प्रभु मायाधर तुमही। करते मुझसे माया ही।।४८।

तू माया करे तो को जाए तर। ब्रह्मादि देवासुर नर।।४९।
मैं तो भरोसा किये ही हूं। दया की आशा रखता हूं।।५०।
जिसप्रार कहूं सुनते नहीं। निराश करते हो मोही।।५१।
दया सागर तुम हो जाना। सो मैने भरोसा है कीन्हा।।५२।
निर्दय कठोर तुम्हारी देह। तो दयासागर क्यों कहलाओ।।५३।
हे प्रभु भव में क्यों रहूंगा। यदि सेवा कर न पाऊंगा।।५४।
दया तुम्हारी नहीं मुझमर। क्या करूंगा जग में रहकर।।५५।
हे प्रभु किया तुमने नाश। मेरा कुछ भी नहीं दोष।।५६।
यदि तुम्हारी दया होती। यह आत्मा क्यों भरमती। फिरती।।५७।
तुम्हारी दया नहीं मुझ से। क्या होष हुआ है मुझसे।।५८।
उसी से माया मुझसे की है। नाना कर्मों में फिराये हैं।।५९।
मैं तो हूं सदा दोषकारी। क्यों देव वारेक क्षमा न करी।।६०।
हे देव देव हृषिकेश। दोष मुंचो हे पीतवास।।६१।
हे देवदेव नारायण। दोष न धरना हे पुनः।६२।
हे देवदेव चक्रधर। दोष वारेक क्षमाकरो।।६३।
हे देव देव भावग्राही। बातेक मुझा याद आयी।।६६।
दया यद्यपि होगी मुझपर। कहोगे मुझे खुलकर।।६७।
निर्दय यदि हो मुझ पर। क्यों भी कहोगे खुलकर।।६८।
महीमण्डल सारे प्रसङ्ग। कहे हो कुझ तो चुनकर।।६९।
जिस का मैने है प्रश्न किया। वही कहे हो चुनचुन कर।।७०।
एक किन्तु गुप्त ही रखे हो। क्यों कर माया करते हो।।७१।
कहता अरक्षित दास दया तुम करो पीतवास।।७२।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम एकौशीतितमोऽध्याय

— ० —

द्वाशीतितम अध्याय (८२)
अक्षर महिमा वर्णन

हे चैतन्य मायाधर। बातेक करूं मैं गुहार।।१।

अक्षर महिमा वखान। दया होगी तो करो मन।।२।

अक्षर महिमा सुनूंगा। तब मन शंकामुक्त होगा।।३।

यद्यपि दया है मुझपर। माया न करे कहो खुलकर।।४।

जो सब मैने प्रश्न किया। सब विस्तार करे कहा।।५।

पृथ्वी की महिमा वखान। किया है संशय मोचन।।६।

जल की महिमा सुन मया। विस्मत चकित हो गया।।७।

अग्नि की महिमा आपने। गुप्त ही भो देव वखाने।।८।

पवन कथा मैने सुनी। अत्यन्त असम्भव वाणी।।९।

आकाश कथा कर वकान। किया है गुप्त समाधान।।१०।

पञ्चभूतों की कथा सारे। गुप्त ही वखाने विस्तारे।।११।

विभूति महिमा पूछी है मोही। विस्तारे भो देव है कही।।१२।

आप की कथा कर वखान। किया है संशय मोचन।१३।

नाम की कथा कर वखान। किया है शंका समाधान।।१४।

आज्ञा की महिमा जो सुनी। अत्यन्त गुप्त है यह वाणी।।१५।

भक्ति की महिमा देव ने गुप्त ही देव। ने वखाने।।१६।

महाशून्य की कथा कर वखान। किया है संदेह मोचन।।१७।

ॐकार महिमा जो सुनी मया। विस्मित चकित हो गया।।१८

चन्द्र सूर्य के सारे गुण। गुक्त है जो किया वर्णन।।१९।

पर पुरुष कथा कर वखान। किया है शंका समाधान।।२०।

सुखदुःख की कथा कर वखान। किया है संदेह भञ्जन।।२१।

यह देह दश अवतार। बताए देव सारसार।।२२।

आचार अनाचार सारे। गुप्त ही वखाने विस्तारे।।२३।

जीव परम कथा कर वखान। किया है संशय भञ्जन।।२४।

ब्रह्मा की कथा कर वखान। किया है शङ्का समाधान।।२५।

अब अक्षर भेद समस्त। बताओ देव मेरे अग्रत।।२६।

अक्षर महिमा सुनूंगा। तो मन शङ्कमुक्त होगा।।२७।

हे देव माया तू न कर। वखाने अक्षर विचार।।२८।

जिस अक्षर का जो है गुण। बताए देना मुझे पुनः।।२९।

हे देव दोष क्षमा कर। वखानों अक्षर विचार।।३०।

यद्यपि दया होगी मुझपर। अक्षर भेद बताया कर।।३१।

निर्दय न होने मुझसे। बताना दया करे मुझसे।।३२।

मै आया तुम्हारी शरण। माया न करे कहो पुनः।।३३।

मन के मुख से यह सुनी। अति गुप्त है वह फुनि।।३४।

मन में भय ही न किया। अक्षर महमिा पूछ लिया।।३५।

अक्षर महमिा भयी। मैं क्या बताऊंगा तोही।।३६।

ब्रह्मा विष्णु शिव जानें नहीं। और क्या बताएगा कोई।।३७।

उनसे कोई बड़ा हैं क्या। जो महिमा बताएगा।।२८।

अक्षर महिमा अपार। मैं क्या करूंगा गोचर।।३९।

कहो तो अन्त नाही होए। तू वह क्यों पूछता है।।४०।
मन कहता प्रभु सुनो। कुच तो उसपर वखानों।।४१।
किया है भरोसा तुमसे। माया तुम करते मुझसे।।४२।
माया यद्यपि करते हो। तो यह देह तजे जाओ।।४३।
जग में रहूंगा मैं क्यों कर। तुम्हरी सेवा न करूं अगर।।४४।
हे प्रभु करो त्राहीत्राही। माया न करो देव मोही।।४५।
अक्षर महिमा सुनूंगा। तब न भव से तरूंगा।।४६।
नहीं तो तर न पाऊँगा। जग में क्यों कर रहूंगा।।४७।
अक्षर महिमा बताना। अर्क्षित दास को तारना।।४८।
नहीं तो शीघ्र देना मार। जग में रहेगा क्यों कर।।४९।
कहता अरक्षित दास। माया ने किया मेरा नाश।।५०।
सुजन जन सब सुनों। प्रभु निर्दय मुझपर जानों।।५१।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम द्वाशीतितमोऽध्याय

— ० —

त्र्यशीतितम अध्याय (८३)
अक्षर महिमा

हे मन सुने अब तोही। तो सङ्ग मेरी माया नाही।।१।
पूछा है तुमने अति गुप्त। कुछ तो मैं करूंगा ही व्यक्त।।२।
अक्षर महमिा मैं तुम ही। जिसका जो गुण कहूंगा ही।।३।
अब कहूंगा सुनो तुम्ही। प्रश्न जा किया है तुम ही।।४।
सि-इ अक्षर शून्य में रहकर। हे ब्रह्माण्ड घेरकर।।५।
द्धि-इ धीर हो है। देखो वह ब्रह्माण्ड घेरा है।।६।
र-अ अक्षर नाद करें। देखो यह ब्रह्माण्ड है घेरे।।७।
र-आ अक्षर राज गुण। सब जात करता है जानो।।८।
स्तु-उ अक्षर जो कहे। उदय अस्त वह कराए।।९।
अ-अ अक्षर नित्य होए। तद्‌गर्भ से सब जात होए।।१०।
अ-अ अक्षर यद्यपि न लगे। शब्द कभी मीठा न लागे।।११।
अ-अ अक्षर परिपूर्ण है। लीला ही मधुर नाही लागे।।१३।
अ-अक्षर के लिए मानो। अन्य अक्षर चलते है जानो।।१४।
नहीं तो कभी न चलेंगे। जग में क्या लीला रचेंगे।।१५।
अ-अ अक्षर हेतु मानों। समस्त समेटे है जानो।।१६।
अ-अ का यह है व्याहार। उससी से टिका है संसार।।१७।
नहीं ता शून्य हो जाएगा। पृथ्वी पर कोई द रहेगा।।१८।
अ-अ अक्षर हेतु मानों। सभी हैं आतजात जानो।।१९।
ब्रह्मादि सेवासुर। नरे। उनको लिये लाला करे।।२०।
छप्पन कोटि होए। हैं समस्त उसी के ही लिए।।२१।
नहीं तो सबका नाश होगा। केऊ बचा न रह पाएगा।।२२।
अ-अ की एषसी है महिमा। केउन जाने उसकी सीमा।।२३।

आ-आ अक्षर आकर। हैं ब्रह्माण्ड घेर कर।।२४।
इ-ई अक्षर हैं ईश्वर। परिपूर्ण है यह संसार।।२५।
उ-ऊ अक्षर उदित है। परिपूर्ण यह ब्रह्माण्ड है।।२६।
ऋ-ऋ क्षर रूप मानो - घेरे हैं ब्रह्माण्ड को जानो।।२७।
लृ-ऊ अक्षर छिपकर है। देखो यह ब्रह्माण्ड घेरे हैं।।२८।
ए-ए अक्षर एक ब्रह्मा। एक कर विचारो रे मन।।२९।
ऐ-ई अक्षर महाशून्य। घेरकर ब्रह्माण्ड है जानो।।३०।
ओ अक्षर शरीर है। ब्रह्माण्ड में परिपूर्ण है।।३१।
औ-उ अक्षर जो सम्भूत। ब्रह्माण्ड में है पूरित।।३२।
अं अक्षर है ॐकार। भरा है संसार सागर।।३३।
अङ्ग अक्षर है ॐकार। भरा है संसार सागर।।३३।
अङ्ग अक्षर यह शरीर। व्याप्त होगर है चराचर।।३४।
हे मन ये षोलह अक्षर मैं कहूं सदा स्मरण करो।।३५।
मेरी माया तुम सङ्ग है नाही। सो मैने खुल कर है कही।।३६।
इस षोलह अक्षरो के गुष। सुने मुश्चित हुआ क्या भ्रम।।३७।
मन ने कहा त्राही त्राही। मन से भ्रान्ति दूर भयी।।३८।
क्यो कि तुम्हरी दया है मुझपर। वखाने मुझसे खुलकर।।३९।
इस षोलह अक्षर महिमा कृपाकर। क्यो कि वखाने तुम्ही। खुलकर।।४०।
कैता अरक्षित दास। मुझे तुम्हरे चरणो की आश।।४१।
सुनो हे सज्जन सुजन। इन षोलह अक्षरों के गुण।।४२।

इति
श्री मन चैतन्य संवादे
महीमण्डल गीता कथने नाम त्र्यशीतितमोऽध्याय

— o —

चतुरशीतितम अध्याय (८४)

अक्षर गुण कथन

हे चैतन्य सुनो तुमही। क्यों माया रचते हो मोही।।१।

क-अ से क्ष य के पर्यन्त मोरे। कहो है प्रभु कृपा करे।।२।

तो मैं संशय तजूंगा। न्त्यि तोरे नाम जगता रहूंगा।।३।

कहो हे प्रभु नारायण। किस अक्षर का क्या है गुण।।४।

मन मुख से यह सुने। सुनो जो पूछा है तुमने।।५।

तुम और मैं तो एक देही। तुझे अवश्य कहूंगा ही।।६।

नहीं तो कभी कहता नहीं। सुनो अनेकाग्र होना नहीं।।७।

क-अ अक्षर कहता है। संसार खेल लगाता है।।८।

ख-अ अक्षर ह्टकर। रहे ब्रह्माण्ड लीला कर।।९।

ग-अ अक्षर द्रवित होकर। गुप्त में ब्रह्माण्डे भरकर।।१०।

घ-अ अक्षर घिरे हुए। मन सुनो मअं बताऊं जो है।।११।

ङ-अ अक्षर उदित है। संसार भर पूर्ण है।।१२।

च-अ अक्षर चले सुन। रे मन चेतो तुम वहन।।१३।

छ-अक्षर बांधे धरे हुए। है ब्रह्माण्ड फांसे हुए।।१४।

ज-अ अक्षर जले मानो। ब्रह्माण्ड पालता है जानो।।१५।

झ-अ अक्षर झरता है। उसी स ब्रह्माण्ड टिका है।।१६।

ञ-अ अक्षर नित्य में है रहे। रे मन तुम्हें चेतना है।।१७।

ट-अ अक्षर टलता है। टिके ब्रह्माण्डे खेलता है।।१८।

ठ-अ अक्षर सर्वत्र है। वह तो महाशून्य ही है।।१९।

ड-अ अक्षर पुकारता है। ब्रह्माण्डे सुनाई देता है।।२०।

ढ-अ अक्षर उँडेलता है। ब्रह्माण्ड घेरे खेलता है।।२१।

ण-अ अक्षर महाशून्य। तुम उसे हेतु करे जानो।।२२।

त-अ अक्षर तत्व जो है। उसे तत्वत: विचारना है।।२३।

थ-अ अक्षर स्थिर ही हैं। देखो यह ब्रह्माण्ड भरा है।।२४।

द-अ अक्षर दाह करे। देखो यह ब्रह्माण्ड है भरे।।२५।

ध-अ अक्षर पकड कर है। ब्रह्माण्ड में परिपूर्ण है।।२६।

न-अ अक्षर महाशून्य। उसी से सब हैं उत्पन्न।।२७।

प-अ अक्षर परिपूर्ण। परापर कुछ नहीं अभिन्न।।२८।

फ-अ अक्षर फलता है। देखे ब्रह्माण्ड में खिला है।।२९।

ब-अ अक्षर बहता हैं। ब्रह्माण्ड भर विहरता है।।३०।

भ-अ अक्षर सन्तरित है। ब्रह्माण्ड भर विचारता है।।३१।

म-अ अक्षर सन्तरित है। ब्रह्माण्ड भर विचारता है।।३२।

उसी से सब जनमते। मिलकर ब्रह्माण्डे खेलते।।३३।

म-अ-अक्षर पुरुष जो हैं। तुम्हें चिन्तन करने है।।३४।

य-अ-अक्षर जाता हैं। देखो ब्रह्माण्ड नाशता है।।३५।

ल-अक्षर लीला करे। मनरे सुनों कहूं तोरे।।३६।

श्री-अ अीर शून्य में है।। शिशुवेद वह कहलाए।।३७।

श-अ अक्षर यह शरीर। घेरा है संसार सागर।।३८।

ष-अ अक्षर सचराचर। घेरे हुए है पर-अपर।।३९।

ह-अ अक्षर हरता है जानो।। पूर्ण है ब्रह्माण्ड भर सुनो।।४०।

क्ष-अ अक्षर होते क्षरित। उसी से ब्रह्माण्ड नाशित।।४१।

तुमने जो प्रश्न किया मन। किस अक्षर का क्या है गुण।।४२।
कहा कि तुमही याद करो। अक्षर से से भरा है संसार।।४३।
अक्षर तो मूल कहलाए। ाख पत्ते की मात्रा होए।।४४।
डाल पत्ते न हों तो मानो। ठूंठ तरु की क्या शोभा जानो।।४५।
मात्रा मण्डित संसार है। चराचर व्याप्त हो कर है।।४६।
है मन अक्षरों के गुण। कहो न होए समापन।।४७।
उनकी महिमा इस पृथ्वी पर। को कह पाएगा शरीर।।४८।
ब्रह्मा शिी को अगोचर। और किसे हो सकता गोचर।।४९।
तुमने जो प्रश्न किया मन। कुछ तो कहाहूं उनके गुण।।५०।
और कहूंगा में जो भी। अन्यान्य गुण फिर कभी।।५१।
अगले अध्याय में बताऊं। तेरा संशय मिटाऊंगा।।४२।
कहता अरक्षित दास। हे प्रभु माया करो नाश।।५३।
सुनो है सज्जन सुजन। जिस अक्षर का जो है गुण।।५४।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीं मण्डल गीता कथने नाम चतुरशीतितमोऽध्याय

— o —

पञ्चशीतितम अध्याय (८५)
कौन वर्ण क्या धारण करता है

चैतन्य कहे सुनो मन मोर। अक्षरो को मैं लेकर।।१।

उसी से इस देह में हूं रहा। अक्षरों का आसरा किया।।२।

तुमने भी अक्षरों को लिया। सो इस देह में भाव किया।।३।

अक्षर न अपनाने से जानो। कैसे बच पाओगे ध्यनो।।४।

किससे लिए खाओगे साओगे। किसके तिलए चल पाओगे।।५।

अक्षर न जानों तो जानो। शब्दजात होगा कैसे ध्यानो।।६।

अक्षर के लिये देह है। नहीं तो कुछभी नही है।।७।

अक्षर यदि लगा नहीं। यह देह कैसे जात होई।।८।

अक्षर हेतु दहे जात। हे मन कहता हूं सत्य।।९।

अक्षर के कारण ही। यह देह है जाना तुमही।।१०।

रक्त मांस व हाड़ चर्म। यह भी जाने अक्षर कारण।।११।

अन्त: पित व यकृत। यह जाने अक्षर हेतु सत।।१२।

नयन नासा मुख कर्ण ये हैं। अक्षर हेतु ज्ञात हुए।।१३।

इन्द्री गुह्यादि नवद्वार। अक्षर के कारण गोचर।।१४।

अक्षर न लगे तो यही। मुख वचन कहे नहीं।।१५।

अक्षर न लगे तो यही। नासा पवन बहे नहीं।।१६।

अक्षर यदि लगे नहीं। चक्षु कदापि देखे नहीं।।१७।

अक्षर यदि लगे नहीं। कर्ण कदापि सुने नहीं।।१८।

अक्षर यदि लगे नहीं। मलमूत्र भी त्यजे नहीं।।१९।

यद्यपि अक्षर लगे नहीं। हाथ पैर भी चले नहीं।।२०।

अक्षर देह को धरे है। अक्षर सब करते हैं।।२१।

अक्षर नाम सब का है। सुनो नाना रूप जो दिये हैं।।२२।

पञ्चमन जो विदित है। अक्षर है सो जानता है।।२३।

पच्चीस पकृतियाँ जाे हैं। नाम अक्षर ने दिया है।।२४।

एकदास इन्द्रियां जो है। अक्षर नामित किया है।।२५।

षड्‌रिपु वह जानो तुमही। अक्षर नामित हैं ही।।२६।

सात सौ बहततर नाड़ियां हैं। अक्षर के द्वार नामित हैं।।२७।

चोषठ व्यधियां त्रिगुण ही। अक्षर-द्वारा नामित ही।।२८।

यस देह का जो जातायात। अक्षर नामित है सत्य।।२९।

जहां अक्षर लगे नहीं। वह नाम है नहीं कहीं।।३०।

अक्षर शरीर में पूर्ण है। उसीके लिए शरीर है।।३१।

अक्षर जब शरीर से छूटता है। शरीर निस्तरब्ध हो जाता है।।३२।

निशब्द हो जाने पर सुनों। यह देह नाश जाए जानों।।३३।

सब्द यदि देह में है। अक्षर के कारण ही है।।३४।

निशबद में कार्य नहीं। शबद लीला करता है।।३५।

अक्षर यदि न लगेगा। महाशून्य वह कहाएगा।।३६।

यदि अक्षर चलता रहे। यह देह कदापि न जीए।।३७।

अक्षर शून्य कहूं मोही। लीला के हेतु चले वही।।३८।

अक्षर से शरीर जन्मा है। अक्षर ब्रह्माण्ड व्याप्त है।।३९।

अक्षर माया कोको ज्ञात। सुनो मैं कर रहूं विदित।।४०।
अक्षर मुख से कहता है। पोथी में कुछ भी न होता है।।४१।
जलाका प्राय होकर वह ही। कहती कुछ अनदेखे हैं।।४२।
मुख से वह क्षर कहे। वही वर्ण लिखित होता है।।४३।
क्यों उसे दिखा नहीं जानों। मुख से कहता हूं सुनों।।४४।
यदि पाठ उसने पढ़ा होता। तो उसे पोथी में दिखता।।४५।
नहीं तो उसे दृश्य होए नहीं। अक्षर ज्ञान भये नहीं।।४६।
मुख से अक्षर बोलता होता है। पर अक्षर दृश्य हो, नहीं।।४७।
ऐसी है अक्षर की माया। बोले पर नदनवाए काया।।४८।
माया से मोहित संसार। यह समझे तू हेतु कर।।४९।
कहता अरक्षित दास। बोध देना हे पीतवास।।५०।
हे सुजन जन सुनों। अक्षर सोचे देना ध्यान।।५१।

इति
श्री मन चैतन्य संवादे
महीमण्डल गीता कथने पञ्चशीतितमोऽध्याय

— ० —

षड़शीतितम अध्याय (८६)

अक्षर तत्व

अहो चैतन्य दया करो। बताओ अक्षर वेभार।।१।

अक्षत इस भाँति मोहित करता है। सुन कर मन में कुछ स्फूरित न होता है।।२।

तुम्हरे मुख से सुन कर। सोचूहूं अवाक हो कर।।३।

हे प्रभु हेतु बोध का ज्ञान देना। भो प्रभु दया यह करना।।४।

मन से यह सुनकर। सदा दया मेरी है तुझ मर।।५।

सब विस्तारित मैं कहूंगा। तू ज्ञान कर मैं बोलूंगा।।६।

अक्षर-महिमा तुम सुनो। उसी से सर्वजात जानो।।७।

अक्षर यद्यपि न होय। जीवित न रह पाए कोय।।८।

अक्षर हेतु सभी तो हैं। जग में लीला रचते हैं।।९।

वचन स सभ जातायत। अक्षर हेतु हैं समस्त।।१०।

वचन न बोले तो मानो। कैसे बच पाएगा वह जानो।।११।

शब्द अक्षर अपनाया। अत: वह सर्व जात किया।।१२।

यदि अक्षर न अपनाए। कहां से शब्द जात होए।।१३।

अक्षर हेतु नाम है। न लगे तो नाम नहीं है।।१४।

अक्षर ने मंत्र यंत्र किया। नाना नाम कहलाया।।१५।

नाना ध्यान व सूत्र होए। सब में अक्षर भये।।१६।

नाना माला तिलक बन कर। अक्षर करे सब प्रसार।।१७।

नाना भजन व आसन। सभी हैं अक्षर कारण।।१८।

नाना योग जो होता है। अक्षर सब करता है।।१९।

नागान्त अक्षर से जात। वेदान्द अक्षर-उदभूत।।२०।

सिद्धान्त अक्षर से जात। योगान्त अक्षर सम्भूत।।२१।
नाना औषधियां जा हैं। अक्षर के कारण ही हैं।।२२।
नानान बूटियाँ दवाई जो हैं। सब अक्षर के कारण हैं।।२३।
अमृत अक्षर से जात। विष भी अक्षर सम्भूत।।२४।
अक्षर न लगे तो मानो। कोई जात न भये जानों।।२५।
अक्षर तारता मारता है। अक्षर सब करता है।।२६।
जिसमें अक्षर लगे नहीं। ऐसा पदार्थ है ही नहीं।।२७।
अक्षर लगे नहीं जानो। लोहा कहांसे जात पुनः।।२८।
अक्षर के लगने से ही तो। लोहा है अक्षर से जात।।२९।
लोहा न होता तो नरगण। कैसे जी पाते करो ज्ञान।।३०।
लाहा है तभी भवन प्रासाद। अट्टाली, प्राचीर अप्रमाद।।३१।
कूंआ पोखर, देवल ही। लोहा है रचना भी होई।।३२।
अक्षर हेतु लोहा जात। तब न मानव जीवित।।३३।
खेती, व्योपार जो उपाय। लोहा न हो तो कुछ न होय।।३४।
नाना शस्त्र औजार जो है। लाहे का करण बने हैं।।३५।
तांवा, नीतल, शीशा हैं। अक्षर से ही बने हैं।।३६।
चांदी, कांसा व हर धातु। अक्षर से ही हुए जात।।३७।
खर्पर मिले अष्ट धातु जात। सुनो सुमन हो एकाग्र चित्त।।३८।
अष्ट धातु से नाना द्रव्य भये। अक्षर हेतु सब हु,।।४०।
अक्षर होता नहीं तो मानो। ये जात होते कैसे जानो।।४१।
अक्षर लेका शबद। जाता करता सारे भेद।।४२।
अक्षर न धरे ता मानों। शब्द न जात होए जानो।।४३।
जब शब्द ही फूटे नहीं। ये जात भी होंगे नहीं।।४४।
शब्द अक्षर अपनाया। लीला का प्रारंभ भी हुआ।।४५।

लीला में अक्षर शबद। रात्र दिवस नहीं भेद।।४६।
अक्षर शब्द मिलकर। रखे हैं देह टिकाकार।।४७।
जब वह देह छूट जाए। अक्षर शब्द भी छिप जाए।।४८।
इस प्रकार देह होए नाश। बखाने अरक्षित दास।।४९।
सुनो है सुजन सज्जन। अक्षर महिमा एसन।।५०।

इति
श्री मनचैतन्य संवादे
महीमण्डल गीता कथने नाम षड़शीतितमोऽध्याय

— o —

सप्तशीतितम अध्याय (८७)
अक्षर महिमा

हे मन सुनों मो वचन। अक्षर हेतु जो हैं करूं वखान।।१।

अक्षर के कारण जा हुआ। रात्र दिवस ज्ञात हआ।।२।

षोलह घड़ियां जो हैं। अक्षर के लिए ज्ञात हुए।।३।

सातों बार जो हैं। अक्षर हेतु ज्ञाज हुए।।४।

बाहर माह जो भये। अक्षर हेतु ज्ञाज हुए।।५।

पन्द्रह तिथियां जो होती हैं। अक्षर हेतु जानी जाती है।।६।

ग्यारह करण जो भये। अक्षर हेतु जाने गये।।७।

बारह चन्द्र भो भये। अक्षर हेतु जाने गये।।८।

नवग्रह जो भये। अक्षर हेतु जाने गये।।९।

षड्रिपु जो भये। अक्षर हेतु जाने गये।।१०।

दशरङ्ग व षड़रस। अक्षर करता प्रकाश।।११।

अक्षर ने दिये नाम सबको। अब वह में बताऊँ तुमको।।१२।

देव गण जो कहते। उसका नाम अक्षर ही देते।।१३।

जिस जो नाम है उचित। सभी है अक्षर प्रदत्त।।१४।

नरगण सारे जो हैं। उन्हें नाम अीण ने दिये हैं।।१५।

राक्षस गण नाग गण। अक्षरने दिये सबको नाम।।१६।

भूत गण और यम गण। अक्षर ने दिये सबको नाम।।१७।

रुद्र गण और पितृ गण। अक्षर से दिये सबको नाम।।१८।

उपलोक व देव लोक। अक्षर नामित प्रत्येक।।१९।

इहलोक और मरलोक। अक्षर नामित प्रत्येक।।२१।

नाना रस हैं वह मानो। अक्षर ने दिये नाम जानों।।२२।

चार युग जो विदित हैं। सबके नाम अक्षर ने दिये।।२३।

सभा माय कितनी समाएँ है। सभी नाम अक्षर के दिये हैं।।२४।

अक्षर न लगेगा जहां। कुछ कहां न जा पाएगा वहाँ।।२५।

जो सारे ग्रंथ है मानों। सभी अक्षर के कहे जानो।।२६।

पुराण बारह ष्कन्ध जो हैं। सभी हैं अक्षर के कहे।।२७।

अठारह पर्व भारत है। सभी ह अक्षर के कहे।।२८।

सप्त काण्ड जो रामायण। सब है अक्षर कथन।।२९।

षड़खण्ड जो हरीवंश। सब हैं अक्षर प्रकाश।।३०।

भीष्प केशरी जो पुराण। वह है अक्षर अखन।।३१।

नाना पुराण जितने है।। सब है अक्षर के कहे।।३२।

सब अक्षर कहता है। तब वह पुराण होता है।।३३।

नाना गीताएँ जितनी हैं। सब हैं अक्षर के कहे।।३४।

नाना दि शास्त्र तिने हैं। सब है अक्षर के कहे।।३५।

नाना विद्या पञ्जकाएँ जो हैं। सब है अक्षय के कहे।।३६।

नाना तीरथ जो हैं मान। सब हैं अक्षर कथन।।३७।

नाना देवताएँ जो हैं। सभी अक्षर नामित हैं।।३८।

नानादि यात्रा उपवास। सब है अक्षर-प्रकाश।।३९।

नानादि ग्राम जितने हैं। सब के नाम अक्षर के दिये।।३९।

नानादि ग्राम जो हुए। अक्षर ने सबके नाम दिये।।४०।

नाना कूट कपट हुए। अक्षर ने नाम दे अपनाए।।४१।

नाना उपाय जो होते है। अक्षर सब करते हैं।।४२।

छल भला बुरा मानों। सब अक्षर करते हैं जानो।।४३।

निमाया माया जो जग में हैं। सब अक्षर करते हैं।।४४।

धर्म अधर्म जो हैं मानो। अक्षर सब करते हैं जानों।।४५।

अक्षर हेतु ही मरता है। अक्षर हेतु ही तरता है।।४६।

अक्षर हेतु जन्म होए। अक्षर हेतु मरण गये।।४७।

विचित्र माया कूट करे। जकड़े अक्षर ही मारे।।४८।

अक्षर सर्ब जात करे। अक्षर सर्व वंहार करे।।४९।

अक्षर-तेज बल से जानों। सब का होता हैं दहन।।५०।

अक्षर जो शीतल हैं। हिम से सब मरते हैं।।४१।

अक्षर के गुण हैं इस प्रकार। हे मन सुनों सावधान होकर।।४२।

सुन कर मन बोले डर कर। हे प्रभु कर दया मुझ पर।।५३।

तुमसे मैं सब सुनकर। मन होए डर से कातर।।५४।

अक्षर की गरिमा इस प्रकार। हे प्रभु मुझे करो पार।।५५।

हे प्रभु भय करो नास। गुहारे अरक्षित दास।।४६।

हे सुजन जन हें विदित। अक्षर प्रति हैं समर्पित।।६७।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम सप्तशीतितमोऽध्याय

— o —

अष्टाशीतितम अध्याय (८८)
अक्षर महिमा

आहे चैतन्य करो दया। अवश्य तजूंगा यह काया।।१।

इस शरीर मैं भटक मैं भ्रमित हुआ। अपार कष्ट भी भोग किया।।२।

यह कष्ट सहा न जाए मोही। इस देह से पार करो तुमही।।३।

मन के मुख से सुनकर। कहे चैतन्य भय न कर।।४।

तुझे भयमुकत मैं करूंगां। संशय मोचन करूंगा।।५।

अब तुम सुनो मन देकर। मैं अक्षर महिमा करूंगा गोचर।।६।

महाशून्य जो कहलाए। अक्षर ने ही वह कहा है।।७।

उसीसे आकाश जनम। अक्षय दिया वह नाम।।८।

अक्षर है तब वह हुआ। आकाश नाम जो दिया।।९।

आकाश से पवन जन्मत। अक्षर ने किया हअ नामित।।१०।

अक्षर यदि नहीं होता। पवन नाम को जानता।।११।

पवन से अग्नि का जनम। अक्षर दिया वह नाम।।१२।

अक्षर यदि नहीं होता। अग्नि का नाम को जानता।।१३।

अग्नि से जल जात होए। अक्षर से वह नाम दिये।।१४।

अक्षर यदि नहीं होता। जल का नाम को जानता।।१५।

जल से पृथिवी का गन्म। अक्षर ने दिया है नाम।।१६।

अक्षर यदि नहीं होता। पृथ्वी का नाम को जानता।।१७।

अीण से पञ्चभूत जात। लीला के हेतु सर्व जात।।१८।

पञ्चभूत इस जगत में। अक्षर लिए लीला करें।।१९।

यदि अक्षर नहीं लगता। आकाश कैसे जात होता।।२०।

अक्षर यदि लहीं लगता। पवन कभी न बहता।।२१।

यदि अक्षय नहीं लगता। अग्नि का जन्म नहीं होता।।२२।

अक्षर यदि नहीं होता। जल का जात नहीं होता।।२३।

अक्षर यदि लगे नहीं। पृथ्वी का जात होए नहीं।।२४।

पृथीवी अक्षर है अपनायी। मर्द्दल रूप पडी रही।।२५।

उस परवह लीला करे। सकल भार वही धरे।।२६।

वासुकी अक्षर ने धरा। पृथ्वी को माथे पर संभाला।।२७।

जो अक्षर आशित हुआ। तल के समान सब उठे लिया।।२८।

ऐसी है अक्षर की महिमा। को न जाने उसकी सीमा।।२९।

आकाश अक्षर आश्रित। सब है गर्भ में समाहित।।३०।

जल पवन अग्नि मानों। अक्षर ले परव्यािप्त जानो।।३१।

ये तीन आकाश गर्भ में। निरन्तर हैं। खेल खेल में।।३२।

अक्षर आश्रित यदि न हों। यह भ्रमण भी कैसे हो।।३३।

स्वर्गमञ्च पाताल जो हैं। ये सारे अक्षर जात हैं।।३४।

यदि अक्षर नहीं होता। मञ्च का नाम को जानता।।३५।

यदि अक्षर नहीं होता। पाताल नाम को जानता।।३६।

यदि अक्षर नहीं होता। स्वर्ग का नाम को जानता।।३७।

अक्षर यदि नहीं होता। इन्द्र को भी को जानता।।३८।

इन्द्र ने अक्षर अपनाया। स्वर्ग का अधिपति हुआ।।३९।

शची ने अक्षर अपनाय। नव यौवना बनी हुई।।४०।

यदि अक्षर नहीं होता। शची का नाक को जानता।।४१।

यदि अक्षर नहीं होता। रंभा मेनका को जानता।।४२।

यदि अक्षर नहीं होता। अपसरावृन्द को जानता।।४३।

यदि अक्षर नहीं होता। ऐरावत को को जानता।।४४।

अक्षर यदि नहीं होता। यम को भी को जानता।।४५।

यदि अक्षर नहीं होता। मृत्यु को भी को जानता।।४६।

अक्षर यदि नहीं होता। काल तक को जानता।।४७।

अक्षर यदि नहीं होता। चित्रगुप्त को को जानता।।४८।

अक्षर यदि होता नहीं। कुवेर को को जानता नहीं।।४९।

अक्षर यदि नहीं होता। वृहस्पति को को जानता।।५०।

वृहस्पति अक्षर यिदा है। वेदगुरु कहलाया है।।५१।

अक्षर यदि नहीं होता। किसे देख प्रज्ञाङ्ग कहता।।४२।

अक्षर को जो अपनाया। सब उसी को दृश्य हुआ।।५३।

अक्षर यदि नहीं होता। वह कैसे वेत वखानता।।५४।

एसे हैं अक्षर के गुण। यही तुम चेत कर जान।।५५।

प्रणम्य अरक्षित दास। तुम्हरे मैं हूं चरण दास।।५६।

जानों है सुजन जन। अक्षर भावे देना मन।।५७।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम अष्टाशीतितमोऽध्याय

— ० —

एकोनयतितम अध्याय (८९)
अक्षर महिमा

हे प्रभु अक्षर के गुण। सुनूंगा वखानों वह्न।।१।

मन के मुख से वह सन। कहे चैतन्य मृदुल वचन।।२।

मै तुम्हें अक्षर महिमा-गुण। करूंगा गुपत वखान।।३।

अक्षर ने सब ही को नाम। दिये हैं यह तु जान।।४।

अक्षर न होता तो कोई। वरुण को जानता भी नहीं।।५।

अक्षर न होता तो कोई। चन्द्र को भी जानता नहीं।।६।

नहोता अक्षर तो कोई। सूर्य को भी जानता नहीं।।७।

यदि अक्षर नहीं होता। नक्षत्र का को होते पता।।८।

उनके नाम जो हैं तोया। अक्षर ने सब है दिया।।९।

यनि अक्षर नहीं होता। आदिशक्ति को जो जानता।।१०।

यदि अक्षर नहीं होता। अनादी को भी को जानता।।११।

अक्षर यनि नहीं होता। निराकार को को जानता।।१२।

अक्षर यदि नहीं होता। ब्रह्मा को भी को जानता।।१३।

अक्षर यदि होता नहीं। ब्रह्मा को कोई जानता नहीं।।१४।

ब्रह्मा ने ली अक्षर शरण। की है सर्जना रचन।।१५।

अक्षर यदि होता नहीं। कोई विष्णु के जानता नहीं।।१६।

विष्णु अक्षर के सहारे। सकल सर्जना सँभाले।।१७।

अक्षर नहोता तो कोई। शिव को को भी जानता नहीं।।१८।

ईश्वर अक्षर सहारे। सकल संहार भी करे।।१९।

ऐसी है अक्षर महिमा। उनके आश्रित सब हैं न?।।२०।

सब ही अक्षर धारण। कर लीला करते तू जान।।२१।

अक्षर आश्रित जो न हुआ। लीला सफल हो न पाया।।२२।

मेघ ने अक्षर अपनाया। पृथ्वी पर जल बरषाया।।२३।

अक्षर लगे तो मानों। कहां से जल बरषे जानो।।२४।

बादल यदि बरषे नहीं। कोई जीवित रह पाए नहीं।।२५।

अक्षर हेतु वृष्टि पात। पृथ्वी पर जल का संपात।।२६।

अक्षर जल का धारण। करे विहरे सभी स्थान।।२७।

अक्षर यदि लगे नहीं।। जल कदापि वहे नहीं।।२८।

अक्षर सर्व भाव करे। उसे को न जाने संसारे।।२९।

अक्षर यदि होए नहीं। चार मेघों को जाने नहीं।।३०।

आवर्त्त महा जो है हुआ। अक्षर ने वह नाम दिया।।३१।

पुष्करमेघ जो है। अक्षर ने वह नाम दिये।।३२।

संवर्त्त मेघ जो है मानो। अक्षर ने नाम दिये जानो।।३३।

द्रोक्ष मेउ जो है मानो। अक्षर ने नाम नाम दिये जाने।।३४।

इस प्रकार चार मेघ हैं। सब के नाम अक्षर ने दिये।।३५।

अक्षर यदि नहीं लगा। मेघ कहां से गरजता।।३६।

अक्षर लगा तब होए। तू गरजना सुनपाए।।३७।

अक्षर यदि न लगेगा। शब्द कहांसे जात होगा।।३८।

अक्षर यदि न लगेगा। वेद की कभी न आएगा।।३९।

अक्षर यदि नहीं होता। चारों वेद कौन कहता।।४०।

ऋक्वेद जो कहलाया। अक्षर ने वह नाम दिया।।४१।
साम वेद जो है कहलाया। अक्षर ने वह नाम दिया।।४२।
अथर्व वेद जो कहलाया। अक्षर ने वह नाम दिया।।४३।
यजुर्वत जो कहलाया। अक्षर न वह नाम दिया।।४४।
इस प्रकार चार वेद जो जो हैं। अक्षर हेतु मुखर हैं।।४५।
शिशु वेद जो शून्य होए। इस प्रकार पा र्वद हुए।।४६।
इस प्रकार अक्षर की क्षमता। वही बुलाकर नाम दाता।।४७।
इस प्रकार अक्षर की माया। छिपे विहरे सभी काया।।४८।
मन सुन कर आनन्दित होए। सन्तुष्ट हो त्राहित्राहि कें।।४९।
मैं तुम्हरे चरण शरण। उद्धरो मुघे भगवान।।५०।
कहता अरक्षित दास। तुम्हरे चरणों में मेरी आश।।५१।
हे सुजन जन जाने। मुझ पर दया हो मनमें।।५२।

इति

श्री मन चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम एकोनवतितमोऽध्याय

— ० —

नवतितम अध्याय (९०)
अक्षर महिमा

हे मन अब सुनो तुम ही। अक्षर लीला करता है।।१।
सप्त समुद्र जो है। अक्षर ने नाम जो दिया है।।२।
अक्षर समुद्र संवारे है। लहरी आती है जाती है।।३।
अक्षर के लिये गरजता। नहीं तो कैसे वह चलता।।४।
अक्षर धकेले लाता है। अक्षर धकेले लेता है।।५।
अक्षर लहरी मारकर। क्षर विश्राम न पाकर।।६।
हे मन सुनो अब तुम हे। अक्षर इस प्रकार जो है।।७।
अक्षर वब को चलाता। भ्रमे आच्छादे दिग पालता।।८।
अक्षर ने नाम दिया सबको। सुनो मैं बरखारूं तुमको।।९।
मीन रूप जो विदित है। अक्षर ने ही नाम दिया है।।१०।
कूर्म रूप जो विदित है। अक्षर ने नाम ही दिया है।।११।
वाराह रूप जो है। अक्षर ने नाम जो दिया है।।१२।
जो रूप नरसिंह है। अक्षर ने ही नाम दिया है।।१३।
वामन रूप कहागया। अक्षर ने ही नाम दिया।।१४।
परशु रूप कहागया। अक्षर ने ही नाम दिया।।१५।
राम रूप जो कहागया। अक्षर ने ही नाम दिया।।१६।
बलराम रूप सुनो। अक्षर ने नाम दिया जानो।।१७।
बुद्धरूप जो कहागया। अक्षर ने है नाम दिया।।१८।
कलकी रूप तुम सुनो। नाम अक्षर ने दिया है जानो।।१९।
कलकी रूप तुम सुनो। नाम अक्षर ने दिया है जानो।।१९।
एसे हैं दस अवतार। अक्षर ने नाम दिया सार।।२०।

और जो अवतार भी हैं। सभी अक्षर नामित नाम हैं।।२१।
नवखण्ड जो पृथिवी है। अक्षर से नाम जो दिया है।।२२।
नवद्वीप जो कहते हैं। अक्षर ने नाम ही दिया है।।२३।
चौदह ब्रह्माण्ड जो हैं। अक्षर ने नाम भी दिये हैं।।२४।
वप्त पाताल जो कहता हैं। अक्षर ने नाम भी दिये हैं।।२५।
ब्रह्माण्ड में जो जन्म हुए। अक्षर से सब नाम दिये।।२६।
अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड ही। अक्षर नाम देता है ही।।।२७।
चार दीशाएँ जो हैं। अक्षर ने नाम जो दिये है।।२८।
स्थावर सारे जितने हैं। अक्षर ने नाम जो दिये हैं।।२९।
जङ्गम सारे जितने हैं। अक्षर ने नाम जो दिये हैं।।३०।
कीड़े मकौड़े जितने हैं। अक्षर ने नाम जो दिये हैं।।३१।
सारे पतङ्ग जितने हैं। अक्षर ने नाम भी दिये हैं।।३२।
चलन्त चौदह करोड़ जो हैं। अक्षर ने नाम भी दिये है।।३३।
निश्चल चौदह करोड़ है। अक्षर ने नाम भी दिये हैं।।३४।
उड़न्त चौदह करोड़ जो हैं। अक्षर ने नाम भी दिये हैं।।३५।
डूबन्त चौदह करोड़ जो हैं। अक्षर ने नाम भी दिये हैं।।३६।
चाण्डाल ब्रह्मा परियन्त। सब हैं अक्षर आश्रित।।३७।
मेरु से जितने परवत। अक्षर आश्रित हैं सत्य।।३८।
इन्द्र से जितने हैं देव। अक्षर आश्रित हैं सर्व।।३९।
काक से गरुड़ तक मानो। अक्षर आश्रित हैं जानो।।४०।
अश्वत्थ से ले वृक्ष सारे। सब हैं अक्षर सहारे।।४१।
सिंह से तुच्छ कीट तक सारे। सब हैं अक्षर सहारे।।४२।
छप्पन करोड़ जी मानों। अक्षर कराए लीला जानो।।४३।
अक्षर आतजात करे। अक्षर सबको संहारे।।४४।

अक्षर न होगा तो कोई। एक भी जी पाएगा नहीं।।४५।
उनकोटि वाद्य जो हैं। अक्षर ने नाम भी दिये हैं।।४६।
अक्षर न लगागे तो कोई। एक वाद्य भी बजेगा नहीं।।४७।
उनकोटि वाद्य जो होते हैं। अक्षर हेतु ही बजते हैं।।४८।
अक्षर जब लगेगा नहीं। कोई शब्द निकलेगा नहीं।।४९।
अक्षर शबद ओढ़ाए। रखा है सब के छिपाए।।५०।
अक्षर चले तो बजेगा। शब्द से जग कंपाएगा।।५१।
अक्षर शब्द धातसे। पृथ्वी कंपाए तीव्र से।।५२।
अक्षर भारी है जिस प्रकार। उश्वास भी है उस प्रकार।।५३।
उसे अक्षर के गुण हैं। यह कोइ जानते नहीं हैं।।५४।
दया जो हैं मेरी तुझपर। करता तुम्हें हूं गोचर।।५५।
अति गुप्त है यह वारी। कोइ न जानते हैं फुनि।।५६।
तू मुझे पूछा आतः। मैं तुमहें बताया गुपत।।५७।
मेरी दया रही है तुमपर। सो कहा मैंने समझाकर।।५८।
हे मन अक्षराश्रित होता। किस को भी नहीं डरना।।५९।
हे मन अक्षर जापो होए तोष। कहता अरक्षित दास।।६०।
हे सजन जन सुने। अक्षर भाव हो अपनाने।।६१।

इति
श्र मन चैतन्य संवादे
महीमण्डल गीता कथने नाम नवतिमाऽध्याय

— o —

एकनवतितम अध्याय (९१)
अक्षर धारण कथन

मन कहता प्रभु मोर। अक्षर अपनाऊँ किस प्रकार।।१।
मुझपर तुम सुदया बहो। कैसे में अपनाऊँ वह कहो।।२।
विन फांस के तुम बाँधना। वि ही अक्षर अपनाना।।३।
नहीं तो वह रहगे नहीं। तो अपनाओ जानो तुमही।।४।
नही तो वह रहेगा नाहीं। हे मन विचारे रखे तुमही।।५।
जब अक्षर तू सोचेगा। जो सोचेगा वह करेगा।।६।
अक्षर लाकर तुम्हें देगा। चरणदास बनाएगा।।७।
अक्षर ने रखा है कब्जे में। मन सुनो बता रहा हूँ मैं।।८।
जिस नाम ले पुकारेगा। उसे तू अवश्य देखेगा।।९।
अक्षा धरे ले आएगा। उसका को चारा नहीं होगा।।१०।
विन फां का वह होता हैं। पर बाँधे ले आता है।।११।
अक्षर मंछ हुआ है। बाँधकर सबको रखा है।।१२।
ब्रह्मादि देवासुर नर। बंधे हैं अक्षर भीतर।।१३।
जिसका रूप वर्ण नहीं। बाँध रखा अक्षरने वही।।१४।
जिस देवता का नाम लेकर। मंत्र से पुकारेगा फढकर।।१५।
अक्षर बाँधे ले आएगा। तुम्हरे आगे खड़ा कर देगा।।१६।
जो मन में मांग करे। मांगे तू उसे प्राप्त करे।।१७।
आज्ञा देकर वह चलेंगे। उसका भोग कराऐंगे।।१८।
उसे अन्यता नहीं करे। आज्ञा का पालन ही करे।।१९।

आज्ञा कह जो कहते हैं। वही तो अक्षर ही हैं।।२०।
मुख से जो कहे वचन। वही आज्ञा है प्रमाण।।२१।
वचन अक्षर ही है। शुद्ध अशुद्ध कराता है।।२२।
को वचन है शुद्ध जानो। को अशुद्ध है वखान।।२३।
अक्षर सब करता है। शुद्ध अशुद्द जो होता है।।२४।
किस वचन से नाश जाएँ। किस वचन से बचे रहें।।२५।
अमर में है क्या वचन। कहूं सुनो मैं सावधान।।२६।
शची ईश्वर विभीषण। अमर होकर हैं सुन।।२७।
वचन से आज्ञा मिली जानो। अक्षर ने आज्ञा पाली जानो।।२८।
उसी से वे अमर हो रहकर। अक्षर ने रखा है मातर।।२९।
किस वचन से नाश जाए। सुनो सुमन चित्त दिये।।३०।
कंसासुर भस्मासुर ही। रावण कुम्भकर्ण होही।।३१।
ये सारे वचन से मरे। आज्ञा अक्षर धरे मारे।।३२।
इस प्रकार कितने नाशा गये। कितने है भी देह लिये।।३३।
अक्षर तारता मारता। अक्षर है सब करता।।३४।
जग में जितने देव हुए। अक्षर हेतु जात भये।।३५।
अक्षर जब शुद्ध करे। देवता कहते संसारे।।३६।
अक्षर मंत्र न्यास करे। अत: पूजे हैं भाव धरे।।३७।
नाना वस्त्र में पुष्प लाकर। शुद्ध कराते हैं तत्पर।।३८।
जब अक्षर शुद्ध करे। चढ़ाते उसे देव शिरे।।३९।
नाना पदार्थ नैवेद्य लाते। देवता को समर्पण करते।।४०।
मंत्र के लिए भोग पाते। अक्षर सब करदेते।।४१।

कूप पोखर आदि मानो। अक्षर शुद्ध करते है जानो।।४२।

अक्षर मंत्र के लगेतो। वे उस से शुद्ध हो जाते।।४३।

मनुष्य गण जितने है। एकाग्र हो सानों कहते हैं।।४४।

जब तक कर्ण मंत्र देते नहीं। यह पिण्ड शुद्ध होता नहीं।।४५।

पृथ्वी जल अग्नि पवन। मंत्र के लिए शुद्ध नो।।४६।

एसी है अक्षर महिमा। हे मन तुम विचारना।।४७।

मन कहता प्रभु सानों। मैं तो हूं मूढ़ जन।।४८।

मै महापापी यह संसारे। अक्षर दया करें मोरे।।४९।

अक्षर दया करे करे मुझे। मैं जापता होऊंगा तुझे।।५०।

नहीं तो सोच न पाऊंगा। जो मन करे झोल लूंगा।।५१।

अक्षर माया करे मुझपर। भरमा रहे निरन्तर।।४२।

तुम्हे रख कर गोपन में। गुप्त में भरमा रहा है सब में।।५३।

कहता अरक्षित दास। अक्षर करते निराश।।५४।

सुने सुजन जन कही। अक्षर की दया मुझपे नहीं।।५५।

इति

श्री मद चैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम एकनवतितमोऽध्याय

— ० —

द्विनववतितम अध्याय (९२)
अक्षर महिमा

हे मन सुनो अब तुमही। तुम पर अक्षर की दया भयी।।१।

अक्षर की दया तुझ पर हैं। सो तू पूछा करता है।।२।

नहीं तो क्यों तू पूछता। हमें भी क्योंकर देखता।।३।

यह तुम्हारा अहोभाग्य। अक्षर ने की अनुराग।।४।

यदि उनकी दया नहीं होती। तेरी वाणी ही न निकलती।।५।

अक्षर के कहे जान। इन पदों का हुआ है स्फूरण।।६।

तुम्हरे पद जितने भये। तुम सुने अक्षर के कहे।।७।

अक्षर न लगे तो जान। तूने पूछा मैं किया वखान।।८।

अक्षर की दया है सब पर। उन्हे न पहचाने मूढनर।।११।

हेतु देह भर पाए हैं। उन्हें न जाने मरते हैं।।१२।

सारे छप्पन करोड़ जीव। होते हैं जात ये सरव।।१३।

इसमें मनुष्य है सार। अक्षर किया है विचार।।१४।

वेद विद्या ज्योतिष जाने। पाप पुष्य भी वह वखाने।।१५।

अक्षर घट घट में होकर। दया होती है मनुष्य पर।।१६।

उसी से सब भोग करे। अक्षर दया जिसे करे।।१७।

ये यदि अक्षर अपनाते। क्यों मरण प्राप्त होते।।१८।

अपनाए नहीं अक्षर तो। अक्षर न माया की अतः।।१९।

सर्व गतिपति हैं अक्षर। मनरे तूही चिन्ता कर।।२०।

अक्षर की चिन्ता जब करेगा। मरण कदापि नहीं होगा।।२१।

अक्षर की दया होगी सुन। हर बात को तू जान।।२२।
अक्षर प्रति घटों से होकर। दया करेंगे वे तुझ पर।।२३।
हर जीव जन्तुओं के वचन। अक्षर से करेगा वखान।।२४।
जो जो भी वचन बोलते। अक्षर हेतु वे कहते।।२५।
अगर अक्षर लगे नहीं। शबद निकलेगा नहीं।।२६।
सेवा अक्षर की करने पर। जान पाओगे भाषा हर।।२७।
यदि सब भाषाएँ जानेगा। भक्ति प्रापत तुझे होगा।।२८।
अक्षर घटघट में होए। परापर भाव उसमें न होए।।२९।
ब्रह्मा जिस अक्षर को लेकर। करते हर सर्जना विचार।।३०।
प्रति घट में वह अक्षर। करता अभेद विहार।।३१।
ब्रह्माने अक्षर पहचाना। की सृष्टि की सुसर्जना।।३२।
ये सारे अक्षर न चीन्हें। अक्षर भरमाया उन्हें।।३३।
अक्षर जो पहचान लेगा। ब्रह्मा से भी वह बड़ा होगा।।३४।
उसे जग में बड़ा कहते हैं। नहीं तो सुन हम कहते हैं।।३५।
जब अक्षर दया करदेगा। ब्रह्माण्ड भर घूमाएगा।।३६।
अक्षर उड़ा कर भी लेगा। दिखाए लौटा कर लाएगा।।३८।
एसे अक्षर के गुण। हे मन अब उन्हें गुन।।३९।
यदि अक्षर सोचो होगा। सभी देवताओं से मिलेगा।।४०।
जो नाम लेकर पुकारेगा। वह तेरे समक्ष आऐगा।।४१।
अक्षर पकड़े लाएगा। लागर भेंट कराएगा।।४२।
अक्षर से सब बँदे हुए। हैं मन सुनों कहूं तोहे।।४३।
यह न जाने मूढ़ नर। जग में निन्ते अक्षर।।४४।

अक्षर की जो निन्दा करे। वे छार पापिष्ठ पामरे।।४५।
वह नर जीते जी मरता। अक्षर की जो निन्दा करता।।४६।
अक्षर की निन्दा जो करता है। उससे पापी को नहीं है।।४७।
अक्षर को जो न देखते। उससे मूढ़ को न होते।।४८।
गीता पुराण शास्त्र वही। मूर्ख है सो बोले नहीं।।४९।
वह मूर्ख अशुद्ध होता है। उससे पापी को न होता है।।५०।
अक्षर मुख से तो कहे। पर कुछ जानता नहीं हैं।।५१
वह नर अन्धा है जानकर। उसे फिर मारता अक्षर।।४२।
जो नर करे अक्षर पहचान। मुख से करता गायन।।५३।
उसीके सभी वा होते। अक्षर अमृत जो पीते।।५७।
हे मन अक्षर-चिन्तन कर। मेरी दया बनी रहेगी तोपर।।५८।
हे मन कर अक्षर चिन्तन। नित्य तू करेगा गायन।।५९।
अक्षर ब्रह्मा है सो ही। नित्य चिन्तन कर तोही।।६०।
अक्षर ब्रह्मा है यह जान। नित्य कर उनका चिन्तन।।६१।
अक्षर ब्रह्म सर्वदेव जान। नित्य कर उनका चिन्तन।।६२।
अक्षर ब्रह्मा रूप धरे। शून्य में विराजे हैं भरे।।६३।
अक्षा जीव रूप लिये। संसार में है भरे हुए।।६४।
मैं ही अक्षर रूप धरा। शरीर रखा हूं तोहरा।६५।
मैं ही अक्षर जीव होए। सभी घटों में विराजे हैं।।६६।
मैं ही अक्षर ब्रह्मा होए। महाशून्य जो कहलाए।।३७।
अक्षर स्त्री-पुरुष होए। सब का जात करता है।।६८।
यदि अक्षर लगे नहीं। स्त्री-पुरुष की भेंट होई।७०।

नाना कौतूक रस केलि। करते अक्षर ही मिली।।७१।
नाना कौतुक सर्व घट। रति करते हो उच्चाट।।७२।
अनुक्षण रति वे करते। उसी से सभी जात होते।।७३।
अक्षर जब लगे नहीं। रति वे करेंग कैसे ही।।७४।
संसार शून्य हो जाएगा। जात ही किस प्रकार होगा।।७५।
अक्षर जीव परम ही। सब जात करते हैं वही।।७६।
स्त्री है जीव यह जान। पुरुष परम प्रमाण।।७७।
किस अक्षर को स्त्री कहें। को अक्षर पुरुष जो भये।।६८।
ये दोनो मिल रति करते। तभी समस्त जात होते।।७९।
नहीं तो एक अङ्ग मानो। भिन्न नहीं है यह जानो।।८०।
लीला के हेतु भिन्न हुए। जग में खेल हैं लगाए।।८१।
यद्यपि न होते युगल। किसभांति हो सकता है मेल।।८२।
युगल अक्षर होने पर। जात होते हैं चराचर।।८३।
अक्षर स्त्री-पुरुष ही। मनरे तू क्यों चेते नहीं।।८४।
अक्षर घटघट में होकर। लीला करता निरन्तर।।८५।
अत: तू समान देखना। भिन्न कभी भी न मानना।।८६।
अत: तू अक्षर को तोष। नमता अरक्षित दास।।८७।
सुनो हे सुजन सज्जन। अक्षर का रहे सदा ध्यान।।८८।

इति
श्री मनचैतन्य संवादे
महीमण्डल गीता कथने नाम द्विनवतितमोऽध्याय

— o —

एकनवतितम अध्याय (९३)

अक्षर महिमा

अहो चैतन्य ब्रह्मा त्यया। कभी दोष न धरना मया।।१।
मैं तो माया शरीर में हूं ही। मैं दोष की क्षमा मांगू ही।।२।
हे देव दोष जो मुझसे भये। कृपया क्षमा करदेना हे।३।
हे ब्रह्म क्षमाशील तुम हो। दया बरतते सदा रहो।४।
हे ब्रह्म सर्वक्षर भये। ब्रह्माण्ड भर व्यप्त रहे।।५।
हे ब्रह्म तुम विन भी कौन। सभी अक्षर होगा पुनः।।६।
हे ब्रह्म सि अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।७।
हे ब्रह्म द्धि अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।८।
हे ब्रह्म र अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।९।
हे ब्रह्म स्तु अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।१०।
हे ब्रह्म अ अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।११।
हे ब्रह्म आ अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।१२।
हे ब्रह्म इ अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।१३।
हे ब्रह्म उ अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।१४।
हे ब्रह्म ऋ अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।१५।
हे ब्रह्म लृ अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।१६।
हे ब्रह्म ए अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।१७।
हे ब्रह्म ऐ अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।१८।
हे ब्रह्म ओ अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।१९।
हे ब्रह्म औ अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।२०।
हे ब्रह्म अं अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।२१।
हे ब्रह्मतम अः अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।२२।

हे ब्रह्म ये षोलह अक्षर। तुमही भये हो प्रभु मोर।।२३।
हे ब्रह्म क अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।२४।
हे ब्रह्म ख अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।२५।
हे ब्रह्म ग अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।२६।
हे ब्रह्म घ अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।२७।
हे ब्रह्म ङ अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।२८।
हे ब्रह्म च अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।२९।
हे ब्रह्म छ अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।३०।
हे ब्रह्म ज अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।३१।
हे ब्रह्म झ अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।३२।
हे ब्रह्म ञ अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।३३।
हे ब्रह्म ट अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।३४।
हे ब्रह्म ठ अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।३५।
हे ब्रह्म ड अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।३६।
हे ब्रह्म ढ अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।३७।
हे ब्रह्म ण अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।३८।
हे ब्रह्म त अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।३९।
हे ब्रह्म थ अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।४०।
हे ब्रह्म द अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।४१।
हे ब्रह्म ध अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।४२।
हे ब्रह्म न अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।४३।
हे ब्रह्म प अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।४४।
हे ब्रह्म फ अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।४५।
हे ब्रह्म ब अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।४६।
हे ब्रह्म भ अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।४७

हे ब्रह्म म अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।४८
हे ब्रह्म य अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।४९
हे ब्रह्म ल अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।५०
हे ब्रह्म श अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।५१
हे ब्रह्म ष अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।५२
हे ब्रह्म स अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।५३
हे ब्रह्म ह अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।५४
हे ब्रह्म क्ष अक्षर तुमही। दया करना सदा मोही।।५५
हे ब्रह्म मात्रागण सुने। सदा मुझपर दया करें।।५६।
हे ब्रह्म हे सर्व अक्षर। दया करके शीघ्र तारे।।५७।
हे ब्रह्म सुनो सर्वाक्षर। व्याप्त हो सारे ब्रह्मण्ड पर।।५८।
हे ब्रह्म अक्षर संसार। व्यापे हुए हो चराचर।।५९।
हे ब्रह्म जीव अजीव में। व्यापे हुए हो तुम सब में।।६०।
हे ब्रह्म जल स्थलनल। अक्षर भरा है कल।।६१।
हे ब्रह्म अक्षर सुन हूं। दया करो तो तर जाऊँ।।६२।
हे ब्रह्म मुझे सर्वाक्षर। दया करके शीघ्र तारो।।६३।
हे ब्रह्म तुम हो सर्वाक्षर। दया कर तारो है सत्वर।।६४।
नमो नमस्ते सर्वाक्षर। तुम मेरे दोष नाही धरो।।६५।
नमस्ते तुम अक्षर ब्रह्म। दया करे हे अप्रतिम।।६६।
नमस्ते तुम अक्षर जीव। दया करो मुझपर हे देव।।६७।
नमस्ते ओीण परम। दया करो है अनुपम।।३८।
नमो नमस्ते तुम तुम हो सर्व। दया करो हे मुझपर अब।।६९।
यदि तुम्हारी दया नाहीं। नाश करना शीघ्र मोही।।७०।
जब तुम्हारी दया होई। तुरंत हे देव तारे मोही।।७१।
मैं तो कुछ मांगू नहीं। सेवा करूंगा तुम्हारी ही।।७२।

नमो नमस्ते दया कर। मैं हीन पापीष्ठ पामर।।७३।
नमो नमस्ते सर्वाक्षर। स्तुति मैं करता तुम्हार।।७४।
अडतालिस अक्षर तुम भये। सूचित करूं सबको मैं।।७५।
यह तुम्हारी मैं मुखसे। सदा गायन करता रहूंगा सुखसे।।७६।
यह दया बरते रहना। कभी भी माया न करना।।७७।
तू यदि मुझसे माया करे। क्यों मैं रहूंगा देह धरे।।७८।
तुम्हारी माया मुझसे न हो। मुखमें स्तुति निरत हो।।७९।
यही गुहार करता हूं। त्राही कर हे महाबाहु।।८०।
हे ब्रह्म अक्षर तुम भये। दोष न धरना कभी हे।।८१।
यह ब्रह्मा अक्षर की स्तुति। तो इसे पढ़ता हो निति।।८२।
वह नर त्रिभुवन में धन्य। धन्य जीवन धन्य धन्य।।८३।
वह नर सजीव होता है। उसका भय न होता है।।८४।
अक्षर दया ही करेंगे। विपदा भञ्जन करेंगे।।८५।
जहां चलता होगा वह। निगरानी करते होंगे वह।।८६।
अक्षर सर्व घटोमें होए। उसकी विपत्ति कैसे भये।।८७।
अक्षर दया जो करेंगे। जो मांग करे वही देंगे।।८८।
अमर पद जो मांगेगा। उसे भी वही प्राप्त होगा।।८९।
सिद्धान्त पद मांगे यदि। उसकी भी उसे प्राप्ति होगी।।९०।
योगान्त पद मांगे यदि। उसकी भी उसे प्राप्ति होगी।।९१।
नागान्त पद मांगे यदि। उसकी भी उसे प्राप्ति होगी।।९२।
यदि वह मांगेगा वेदान्त। वह भी उसे होगा प्राप्त।।९३।
इन्द्रादि ब्रह्मपद सोही। मांगे तो उसे मिलेगा ही।।९४।
नवधाभक्ति यदि मांगे। वह भी उसे प्राप्त होंगे।।९५।
निष्काम भक्ति यदि मांगे। वह भी उसे प्राप्त होंगे।।९६।
कामना भक्ति जो मांगे जोही। उसकी प्राप्ति भी होगी ही।।९७।

धन या पुत्र की कामना। पूरी हो जाएगी भावना।।९८।
पृथ्वी में जितने भोग होंगे। मांगे तो वह भी प्राप्त होंगे।।९९।
अक्षर सर्व घटों में होंगे। मांगे तो उसे प्राप्त होंगे।।१००।
अक्षर सबको समेटे हुए है। अपने करायत रखते हैं।।१०१।
तब ही सब दे सकते। मूढ़ नर जो न भजने।।१०२।
ऐसी है अक्षर की महिमा। क्या मैं बखानू उसकी सीमा।।१०३।
अक्षर ने यह कृपा है की। तब मैने कुछ ही बातें कही।।१०४।
कहता अरक्षित दास। महीमण्डल गीता रस।।१०५।
हे सुजन जन कहूं। ओलाशुणी पर्वत पर रहूं।।१०६।
अक्षर महमिा है कही। दोष क्षमा करदेना तुमही।।१०७।
यह मही मण्डल जो गीता। अति गुप्त है उसकी कथा।।१०८।
यह मही पृथ्वी के गुण। विचारो कर के स्मरण।।१०९।
अक्षर दया ही करेंगे। विचारे तारण करेंगे।।११०।
नतो अक्षर करेगा वारण। सुनो है सुजन सज्जन।।१११।

इति

श्री मनचैतन्य संवादे

महीमण्डल गीता कथने नाम त्रिनवितितमोऽध्याय

मीमस्याऽपि रणे भङ्गो मुनेरपि मति भ्रमः यदि शुद्ध अशुद्धं बा नम दोषो न विद्यते।

— ० —

कवि कुटीर, बलाङ्गीर
हिन्दी काव्यान्तरण समापित
दिनाङ्क २१, अक्तूवर २०२०

जो मैं सविनय कहना चाहता हूँ ...

परमप्रिय भाई, निरहंकार, मिष्टभाषी, स्नेही, स्थितप्रज्ञ, सत्सारस्वत पुरुष
सदवक्ता, उदार साधु
शेख मतलूव अल्ली
सच तो यह है कि आपका कोई तथाकथित धर्म नहीं था
न आप हिन्दू थे न मुसलमान
आप सबका मालिक एक के समीप दिव्यधाम से जगकल्याण हेतु
प्रभु प्रेरित एक मानववादी प्रशान्त हृदय के सिद्ध योगी थे।
यह काव्यान्तरण उनकी परम पावन स्मृति के प्रति
परम श्रद्धासे समर्पित करता हूँ।

मुझमें खेद और सदा के लिए अपरितोष रह ही गया कि महापुरुष अरक्षित दास की रचना महीमण्डल गीता आपके आगे प्रस्तुत कर नहीं पाया न आप उसे ग्रंथरूप में देख सके, जबकि काव्यान्तरण के लिए प्रमुख आनुप्रेरक तो आप ही थे। मेरी नेत्रज्योति काल समर्पित होने लगी है, यवकाँच के सहारे वर्ण पहचानता हूँ काम्प्यूटर में अक्षर जूम करके जो स्मरण-संचित है उसीके आधार पर टाइप कर लेता हूँ। अनुभव करने लगा हूँ कि छयाशी की उम्र में जो स्मरण-सा लगता हैं उससे कहीं अधिक भूल भी गयाहूँ, वह विस्मरण भी अभी कभार कौन्ध कर स्मृति जागरित कर देती है क्षणिक और फिर ओझल हो जाती है। किन्तु, आपने मेरी एक भी नहीं सुनी। मुझे वाध्य करने से कहा - ‘भाइना, बावजूद इसके आपही को करदेना होगा क्यों कि यह काम किसी और के द्वारा हो नहीं पाएगा। जो समय आप लेना चाहते हैं लें। करेंगे तो आपही करेंगे। जिस समय

गणकवि वैष्णव पाणि की आत्म जीवनी, जो दूसरों के द्वारा सम्भव नहीं था, एक तरह से अबोध्य था, आपही ने करके हमें विस्मित कर दिया था कि न केवल गद्यभाग उसमें सन्निवेशित गीतो को भी भाव, छन्द ध्वनि गेयता बरतते हुए काव्यान्तरित किया था। मात्र, प्रभु ने यह नहीं चाहा। मेरा इस वीच हर्णिया ऑपरेशन हो गया है। लगभग उसी सिलसिले में मैं प्राय एक महीने से हूँ। अब ठीक हूँ। मात्र उम्र के लिहाज से समीचीन आहार से अपने को पुष्ट करना तथा एक देढ़ महीने विश्राम की हिदायत से बंधे हुए कोविड़ पावन्दियों को मानते हुए बाहर बरामदे तक परभी पैर नहीं धरता।

जगतकर्ता पालक पुरुषोत्तम श्यामसखा की अपार करुणा, भक्ति के तल्लीन योगी महापुरुष संथ अरक्षित दास की सन्निधि सख्य से काव्यान्तरण पूरा तो हो गया है परन्तु मूल की रचना शैली, अनेकत्र अर्थहीन शब्द प्रयोग उपधा, असमापिका वाक्य विन्यास आदि के पदों का अर्थान्वियन के पश्चात ही मैं अभिव्यक्त कर पाया हूँ। यथा सम्भव कविता के रूप प्रदान करने हेतु मुझे कोसलि वर्ग के अवधि, व्रज, राजस्तानी, संस्कृत के कतिपय शब्दों का सहारा लेना पड़ा है। क्यों कि हिन्दी के विशाल प्रबुद्ध पाठको के समक्ष हमे महीमण्डल गीता के अन्तर्निहित तत्व दर्शन प्रस्तुत करना है, जो जरुरी है।

विद्वान आलोचक समीक्षकों से निवेदन है कि मूल महीमण्डल गीता को हिन्दी काव्यान्तरण के साथ मिलाते हुए ही वह महत् कार्य करे, तब यह भी देखेंगे कि अनेकत्र अर्थ हीन, भावहीन पद हैं तथा द्विरुक्तियों से बोझिल भाराक्रान्त है। मैं अपनी अबोध अक्षमता और वाध्यता स्पष्ट कर

देना चाहता हूँ। विशेषकर विभक्ति की धारा, संयोगी अव्यय तथा लिंग प्रयोग के क्षेत्रों में मुझे समझोता करना पडा है। उसपर अज्ञात प्रमाद, जिसके लिए मैं सविनय क्षमाप्रार्थी हूँ।...'

पद्म श्री सम्मानालङ्कृत
डॉक्टर श्रीनिवास उद्गाता, विद्यावाचस्पति

ओलाशुणी गुम्फा (पीठ) प्रचार प्रसार कमिटि

भक्तियोग के सिद्धयोगी महापुरुष संत अरक्षित दास की प्रशस्ति सर्वभारतीय हो, इस अभिलाषा महीमण्डल गीता को बृहत्तम सारस्वत मञ्च प्रदान करने हेतु राष्ट्रभाषा हिन्दी में काव्यान्तरित करके अब प्रचार प्रसार कमिटि की ओर से प्रत्येक उपादेय सूचना सन्निवेशित करना आवश्यक मान कर मर्मज्ञ विद्वान बोधदर्शी प्राध्यापक श्री विश्वजित केशरी विश्वाल भी की भूमिका के आश्रित होना एक प्रकार अनिवार्य था। उनके प्रति अशेष अशेष आभार मानता हूँ। प्रभु उन्हें सुखी, यशश्वी करे, प्रार्थना करता हूँ। यह कोई व्यापारिक कर्म नहीं है, उपासना है। मैंने इस के काव्यान्तरण के समय अनेक बार महापुरुष की सख्य सन्निधि पायी है, रोमांचित हुआ हूँ। काव्यान्तरण के मध्य अनेकत्र भाव पल्लवन के विचार से व्याख्यायित करदेने की चेष्टा की है। आशा करता हूँ अन्वषी पाठक-पाठिकाएँ लाभान्वित होंगे।

अनुवादक

भक्तियोग के सिद्धयोगी महापुरुष संत अरक्षित दास की प्रशस्ति सर्वभारतीय हो, इस अभिलाषा महीमण्डल गीता को बृहत्तम सारस्वत मञ्च

प्रदान करने हेतु राष्ट्रभाषा हिन्दी में काव्यान्तरित करके अब प्रचार प्रसार कमिटि की और से प्रत्येक उपादेय सूचना सन्निवेशित करना आवश्यक मान कर मर्मज्ञ विद्वान बोधदर्शी प्राध्यापक श्री विश्वजित केशरी विश्वाल भी की भूमिका के आश्रित होना एक प्रकार अनिवार्य था। उनके प्रति अशेष अशेष आभार मानता हूँ। प्रभु उन्हें सुखी, यशश्वी करे, प्रार्थना करता हूँ। यह कोई व्यापारिक कर्म नहीं है, उपासना है। मैंने इस के काव्यान्तरण के समय अनेक बार महापुरुष की सख्य सन्निधि पायी है, रोमांचित हुआ हूँ। काव्यान्तरण के मध्य अनेकत्र भाव पल्लवन के विचार से व्याख्यायित करदेने की चेष्टा की है। आशा करता हूँ अन्वषी पाठक-पाठिकाएँ लाभान्वित होंगे।

अनुवादक

महापुरुष अरक्षित दास के जन्मस्थान विजयनगर गड़ ख्रीष्टाब्द १७७२
(अधुना घोडाहाड ड्याम में विलुप्त) जगन्नाथ मंन्दिर साल २०१०।

महापुरुष अरक्षित दास ने सन्यास जीवन के लिए त्याग किया था
दिगपहण्डि स्थित राज प्रासाद, ये राज प्रासाद का मुख्य द्वार है ।

आराध्य देवी मा ओलाशुणि

महापुरुष अरक्षित दास के साधना पीठ, अनंत गुफा

महापुरुष अरक्षित दास के समाधि पीठ

प्रथम मुद्रण – महापुरुष के २६० जन्म वार्षिक उत्सब सुनाबेस एकादशी २०२१ अबसर में।

www.olasuni.com Olasuni App
Mahapurusa Arakhita Das's - Olasuni Gumpha YouTube
E-mail - nabakishoresamal9@gmail.com